

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_I 186669

UNIVERSAL
LIBRARY

भारतीय ग्रन्थमाला—संख्या १

भारतीय शासन

लेखक

देशी राज्य शासन, साम्राज्य और उनका पतन,
नागरिक शिक्षा, और भारतीय जागृति,
आदि के रचयिता

भगवानदास केला



प्रकाशक

भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग

मुद्रक

गयाप्रसाद तिवारी बी० काम०, नारायण प्रेस, प्रयाग

दसवाँ संस्करण] सन् १९४६ ई०

[मूल्य, तीन रुपए

Checked 1969

‘भारतीय शासन’ के संस्करण

पहला संस्करण	१०००	प्रतिवाँ	सन् १९१५
दूसरा ”	१०००	”	” १९१६
तीसरा ”	१०००	”	” १९२२
चौथा ”	१०००	”	” १९२५
पाँचवा ”	१२००	”	” १९२७
छठा ”	१२५०	”	” १९२६
सातवाँ ”	१२५०	”	” १९३६
आठवाँ ”	१२५०	”	” १९३८
नवौं ”	१०००	”	” १९४४
दसवाँ ”	१०००	”	” १९४६

निवेदन

बहुत समय से हम यह सोचते रहे हैं कि भारत स्वतंत्र हो, और हमें इस पुस्तक में स्वतंत्र भारत की शासनपद्धति लिखने का सुअवसर मिले। यह पुस्तक पहली बार प्रथम महायुद्ध के समय में प्रकाशित हुई थी। हमने छोटे राष्ट्रों की स्वाधीनता और स्वभाग्य-निर्णय की बहुत बात सुनी, पर उस महायुद्ध के बाद भी हमारा इतना बड़ा राष्ट्र पराधीन ही रहा। संसार में दूसरा महायुद्ध आया तब भी हमारी स्वतंत्रता की बात स्पष्ट नहीं हुई। परन्तु हम अपने देश के भविष्य के विषय में निराशावादी नहीं हुए। आखिर, अनेक पुरुषों और महिलाओं की कुर्बानी तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण भारत स्वतंत्र होकर रहा।

भारत अब अँगरेजों की दासता से मुक्त हो गया है, उसे अपना विकास और उन्नति करने का अवसर मिल गया है। उसने अपना नया विधान बनाने का कार्य प्रायः पूरा कर लिया है, जिसके अनुसार वह पूर्ण सत्ताधारी स्वतंत्र जनतंत्र राज्य होगा। इस पुस्तक में बताया गया है कि अँगरेजों के शासन-काल में यहाँ किस प्रकार की शासनपद्धति प्रचलित रही, उसमें समय-समय पर क्या परिवर्तन हुए, और १५ अगस्त १९४७ से भारतीय स्वतंत्रता विधान के अनुसार यहाँ किस प्रकार शासन होता है। यह शासनपद्धति नया विधान अमल में आने तक जारी रहेगी। उसके बाद शासन का जो स्वरूप होगा, उसका भी यथा-सम्भव परिचय दे दिया गया है।

भारत के स्वतंत्र होने से खास परिवर्तन उन प्रदेशों की शासन-पद्धति में हुआ है, जिन्हें रियासतें या देशी राज्य कहा जाता रहा है। अब सब रियासतें भारतीय संघ का अंग बन गईं और प्रान्तों के स्तर पर

आ रही हैं, यहाँ तक कि नए विधान में प्रान्त और रियासत का भेद न रहकर सब को राज्य ही कहा जायगा। पुस्तक में इस विषय पर यथेष्ट प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। पंचायत-राज-कानून द्वारा गांवों के पुनरुद्धार का उद्योग हो रहा है, इससे यथेष्ट लोकहित होगा। इसकी भी पुस्तक में खुलासा चर्चा की गई है।

पुस्तक बहुत बड़ी न हो, और साथ ही कोई महत्व की बात न छूट जाय, इसका हमने भरसक ध्यान रखा है। तथापि पुस्तक केवल वर्णनात्मक ही नहीं है। इस पुस्तक के पहले संस्करण के समय (सन् १९१५) से ही हमारा विचार यह रहा है कि पाठकों को यह भी पता होना चाहिए कि शासन पद्धति की कौनसी बात अनुचित या हानिकारक है, जिसका सुधार करना आवश्यक है। जब तक भारत पराधीन रहा, शासनपद्धति में त्रुटियों का होना स्वाभाविक हो था। परन्तु अब भारत के स्वतन्त्र होने पर भी हमारी शासनपद्धति में कुछ विकार हैं। इसलिए पुस्तक में यथा-स्थान उनका उल्लेख किया गया है। दो परिच्छेद—‘शासन के गुण-दोष’ और ‘उपसंहार’—इस दृष्टि से खास विचारणीय हैं।

इस पुस्तक का बहुत सा काम हमारी बीमारी की अवस्था में हुआ है। तथापि इसे अधिक-से-अधिक उपयोगी बनाने में हमने कोई कसर उठा नहीं रखी। वास्तव में इस काम के कारण हमें अपनी बीमारी बहुत कष्टदायक नहीं मालूम हुई। इस संस्करण के सम्वन्ध में विचार-विनिमय करने में मित्रवर श्री० शंकरदयालु श्रीवास्तव से बहुत सहायता मिली है, पुस्तक का तीसरा खंड बहुत-कुछ आपके ही सहयोग का फल है। हम आपके बहुत कृतज्ञ हैं।

विनीत

विषय सूची

पहला खंड ; अंगरेजों के शासन-काल में

(१) विषय प्रवेश

इस पुस्तक का विषय—शासनपद्धति—सरकार के कार्य; (१) व्यवस्थापन या कानून-निर्माण—(२) शासन कार्य (३) न्याय कार्य—सरकार के तीनों अंगों का आपसी सम्बन्ध—भारतीय संघ; लंका, बर्मा और पाकिस्तान रहित—पाकिस्तान का परिचय—भारतीय संघ का क्षेत्रफल और जनसंख्या—भारत के स्वतन्त्र राज्य; नेपाल और भूटान—फ्रांसीसी और पुर्तगीज़ राज्य । पृष्ठ १—११

(२) कम्पनी का समय

कम्पनी की राजनैतिक सत्ता का बढ़ना—प्रान्तों की रचना—कम्पनी का प्रबन्ध—पार्लिमेंट का हस्तक्षेप—रेग्युलेटिंग एक्ट और पिट का कानून—अन्य चार्टर एक्ट—सन् १८५७ का संग्राम; कम्पनी का अन्त—विशेष वक्तव्य । पृष्ठ ११—१७

(३) पार्लिमेंट का समय (क) सन् १८५८-१९१८

पार्लिमेंट का समय—सन् १८५८ का कानून—महारानी विक्टोरिया की घोषणा; सरकारी नीति—भारत-मंत्री—इंडिया कौंसिल—केन्द्रीय सरकार की अधिकार वृद्धि—कौंसिल-कानून—बंग विच्छेद और राष्ट्रीय आन्दोलन—सरकार का व्यवहार और आतङ्कवाद—मार्ले-मिन्टो सुधार और साम्प्रदायिक निर्वाचन—मुस्लिम लीग—होमरूल आन्दोलन—शासन-कार्य में भारतीयों का सहयोग—सन् १९१७ की घोषणा—मांट-फोर्ड रिपोर्ट और लिबरल दल—विशेष वक्तव्य ।

पृष्ठ १७—२६

(४) पार्लिमेंट का समय; (ख) सन् १९१८-४६

सन् १९१६ का शासन-सुधार—सत्याग्रह और असहयोग—स्वराज्य-दल का कार्य—मुडीमेन कमेटी—सन् १९३५ के विधान की रचना—इस विधान की मुख्य बातें—संघ-शासन-योजना—संघ-विधान स्थगित हो गया—विधान के प्रान्तो सम्बन्धी भाग का प्रयोग—पद-ग्रहण का परिणाम—कांग्रेस सरकारों का पदत्याग—क्रिप्स-योजना अस्वीकृत—सन् १९४२ की जन-क्रान्ति—क्रान्ति के बाद ; वेवल योजना—विशेष वक्तव्य ।

पृष्ठ २७—४३

(५) पार्लिमेंट का समय; (ग) सन् १९४६-४७

ब्रिटिश मंत्रिमिशन का आगमन—राष्ट्रीय सरकार और मुस्लिम लीग—भावी विधान-योजना—विधान-योजना में परिवर्तन; भारतीय संघ और पाकिस्तान—भारतीय लोकमत—भारतीय स्वतंत्रता विधान, सन् १९४७—विधान को अमल में लाने का कार्य—विशेष वक्तव्य—भारत का शासन-तंत्र; १५ अगस्त १९४७ से पहले (नक्शा) ।

पृष्ठ ४३—५३

दूसरा खण्ड; स्वतंत्र होने पर

(६) प्रस्तावना

वर्तमान व्यवस्था अस्थायी है—इसका मूल आधार सन् १९३५ का विधान है—राष्ट्रमंडल और भारत—भारत के अंग—वैधानिक परिवर्तन—१५ अगस्त के बाद स्वतंत्र भारत का शासन तंत्र (नक्शा) ।

पृष्ठ ५४—५७

(७) भारत सरकार

गवर्नर-जनरल का पद—गवर्नर-जनरल की नियुक्ति—गवर्नर-जनरल का वेतन—गवर्नर-जनरल के अधिकार—मंत्रिमंडल—एडवोकेट-जनरल—सेक्रेटरी तथा अन्य पदाधिकारी—भारत-सरकार के अधिकार—भारत-सरकार का उत्तरदायित्व—भारत-सरकार की गृह-नीति—विदेश-नीति ।

पृष्ठ ५८—६८

(८) भारतीय पार्लिमेंट

भारतीय पार्लिमेंट का उद्देश्य—पार्लिमेंट का संगठन—सदस्यों का चुनाव—पार्लिमेंट के नियम और कार्य-पद्धति—पार्लिमेंट के कार्य—प्रश्न—प्रस्ताव—कानून-निर्माण; पार्लिमेंट की सर्वोच्च सत्ता—कानून-निर्माण का क्षेत्र—गवर्नर-जनरल के कानून निर्माण सम्बन्धी अधिकार—भारतीय आय-व्यय का विचार—पार्लिमेंट और न्यायालयों का सम्बन्ध । पृष्ठ ६८—७८

(९) केन्द्र का प्रान्तों और रियासतों से सम्बन्ध

केन्द्र और प्रान्तों के सम्बन्ध का विकास—केन्द्रीय सरकार और रियासतों का सम्बन्ध—कार्य-विभाजन—संघ और संघान्तरित अंगों का शासन-सम्बन्ध—आर्थिक व्यवस्था—विशेष वक्तव्य । पृष्ठ ७८—८३

(१०) संघ न्यायालय

संघ न्यायालय की आवश्यकता—संघ-न्यायालय का कार्य—भारतीय संघ-न्यायालय का संगठन—इसका अधिकार-क्षेत्र—विधान सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण निर्णय । पृष्ठ ८४—८८

(११) प्रान्तीय सरकार

प्रान्तों का निर्माण और सोमा-परिवर्तन—चीफ कमिश्नरों के प्रान्त—गवर्नरों के प्रान्त—गवर्नर को नियुक्ति और वेतन—गवर्नर के कार्य—मंत्रिमण्डल का निर्माण—सम्मिलित या गंगा-जमुनी मंत्रिमंडल—मंत्रिमंडल से किसी मंत्री का पृथक्करण—मंत्रियों का वेतन—मंत्रिमंडल का उत्तरदायित्व और कार्य-पद्धति—पार्लिमेटरी सेक्रेटरी—एडवोकेट-जनरल—विशेष वक्तव्य । पृष्ठ ८९—९६

(१२) प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल

प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डलों को सभाएँ और उनकी अवधि—भारतीय स्वतंत्रता विधान और व्यवस्थापक मंडल—प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाएँ (नक्शा)—प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदे (नक्शा)—निर्वाचकों की

योग्यताएँ—सदस्य—सदस्यों के रियायती अधिकार—व्यवस्थापक मंडल का अधिवेशन—सभापति और उपसभापति—सभाओं में मत-प्रदान—सदस्यों सम्बन्धी नियम—व्यवस्थापक मण्डल की कार्यपद्धति—संयुक्त अधिवेशन—व्यवस्थापक मंडल का कार्यक्षेत्र—प्रश्न और प्रस्ताव—प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल के कानूनों का क्षेत्र—कानून कैसे बनते हैं—व्यवस्थापक सभा भंग होने पर कानूनों सम्बन्धी कार्यवाई—गवर्नर के आर्डिनेन्स—प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों का अधिकार—आय-व्यय के विषयों सम्बन्धी कार्य-पद्धति—व्यय का पूरक नक्शा—कर-निर्धारण सम्बन्धी विशेष नियम—बजट अधिवेशन—विशेष वक्तव्य ।

पृष्ठ ६६—११४

(१३) देशी रियासतें

(१) भारत के स्वतंत्र होने से पहले

रियासतों का साधारण परिचय—शासन प्रबन्ध—आय व्यय—राजाओं का सम्मान—देशी रियासतों के अधिकार—भारत सरकार का नियंत्रण—जाँच-कमीशन—नरेंद्र मण्डल—संघ-विधान और देशी राज्य—नई योजना ।

(२) भारत के स्वतंत्र होने पर

रियासतों का भारतीय संघ में प्रवेश—रियासतें और राष्ट्रीय एकता—रियासती विभाग का महत्वपूर्ण कार्य—प्रान्तों में विलीन रियासतें—शासन की दृष्टि से रियासतों के भेद—केन्द्र द्वारा शासित क्षेत्र—रियासती संघ—पृथक्-पृथक् रियासतें—राजाओं का निजी खर्च—केन्द्र का रियासतों से सम्बन्ध—रियासतों को प्रान्तों के दर्जे पर लाने का विचार—आर्थिक व्यवस्था—रियासती सेना—रियासतें और जनसत्तात्मक शासन—रियासतों और रियासती संघों का विधान—विशेष वक्तव्य ।

पृष्ठ—११५—१३७

(१४) ज़िले का शासन

प्रान्त और रियासतें—प्रान्तों के भाग; ज़िले का महत्व—रियासतों

के ज़िले—ज़िले का शासन; जिलाधीश—उसके अधिकार—जिलाधीश का प्रभाव—ज़िले के अन्य कार्यकर्ता—ज़िले के भाग और उनके अधिकारी—गाँवों के अधिकारी । पृष्ठ १३७—१४४

(१५) न्याय कार्य

हाईकोर्ट—जजों की संख्या और नियुक्ति—जजों का वेतनादि—हाईकोर्टों का अधिकार-क्षेत्र—रेवन्यू कोर्ट—दीवानी अदालतें—कौज-दारी अदालतें—अपील पद्धति—पंचायतें—संयुक्तप्रान्त का उदाहरण—पंचमंडल तथा बेच का निर्माण—पंचायती अदालत के अधिकार—विशेष वक्तव्य । पृष्ठ १४४—१५२

(१६) स्थानीय संस्थाएँ

‘स्थानीय स्वराज्य’—स्थानीय संस्थाओं का महत्व—प्राचीन व्यवस्था—अंगरेजों के शासन-काल में—वर्तमान स्थानीय संस्थाएँ ।

(१) पंचायतें और जिला-बोर्ड आदि

स्वतंत्र भारत और पंचायत-राज—संयुक्तप्रान्त का उदाहरण—ग्राम-सभा—गाँव-पंचायत की स्थापना और संगठन—निर्वाचन कार्य-क्रम—पंचायत के कर्मचारी—पंचायतों के कर्तव्य—पंचायत के अधिकार; जन-मागों आदि के सम्बन्ध में—सफ़ाई सम्बन्धी सुधार—कुछ प्रफ़सरो के दुराचार की रिपोर्ट—पंचायतों के ऐच्छिक कार्य—गाँव-होष—पंचायतों की आर्थिक स्थिति—गाँव वालों का उत्तरदायित्व—जिला-बोर्ड आदि का संगठन—बोर्डों के कार्य—कुछ कार्यकर्ता, वेतन और भत्ता—बोर्डों की आय के साधन—विशेष वक्तव्य ।

(२) म्युनिसिपैलिटियाँ आदि

शहरों की समस्याएँ—म्युनिसिपैलिटियाँ—उनके कार्य—कार्य-पद्धति—आमदनी के साधन—कारपोरेशन—नोटीफाइड एरिया—हम्प्रवुमेंट ट्रस्ट—पोर्ट ट्रस्ट—विशेष वक्तव्य । पृष्ठ १५२—१७८

(१७) सरकारी नौकरियाँ

अंगरेजों के समय में सरकारी नौकर—इण्डियन सिविल सर्विस की

प्रभुता—सन् १९३५ का विधान और नौकरियाँ—वर्तमान व्यवस्था—
पब्लिक सर्विस कमोशन—सरकारी नौकरों का वेतन—सुधार की
आवश्यकता । पृष्ठ १७८—१८५

(१८) शासन के गुण-दोष

गुण-दोषों के विचार की आवश्यकता—राम-राज्य की आशा—
शासन की कठिनाइयाँ—सरकार की अद्भुत कुशलता—विदेशों में
भारत की प्रतिष्ठा—शासन के दोष—कांग्रेस-जनो का अनुचित हस्त-
क्षेप—कुछ उदाहरण; श्री कुमारप्पा के विचार—स्वार्थपरता और
भ्रष्टाचार—ईर्ष्या, फूट और गुटबन्दी—वर्तमान शासन और म०
गाँधी—विदेशियों की दृष्टि की बात—विशेष वक्तव्य । पृष्ठ १८५—१९५

तीसरा खण्ड; नया विधान

(१९) प्रस्तावना

विधान-सभा—विधान-सभा का संगठन और उद्घाटन—उपसमि-
तियों की नियुक्ति—स्वतंत्र भारत के विधान का मसविदा—विशेष
वक्तव्य । पृष्ठ १९६—१९९

(२०) विधान-सभा का उद्देश्य-प्रस्ताव

प्रस्ताव के सम्बन्ध में नेहरू जी के विचार—प्रस्ताव; भारतीय
स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र—पूर्ण सत्ताधारी, स्वतंत्र जनतंत्र—भारत एक
संघ-राज्य होगा—जनता को समान अधिकार—विश्व-शान्ति और
मानवकल्याण—विशेष वक्तव्य । पृष्ठ २००—२०५

(२१) मूल अधिकार

मूल अधिकार किसे कहते हैं ?—समानता का अधिकार—
अस्पृश्यता का अंत—भाषण आदि की स्वतंत्रता—धर्म सम्बन्धी अधि-
कार—साम्प्रतिक अधिकार—शिक्षा और संस्कृति सम्बन्धी अधिकार—
अधिकारों को अमल में लाने की व्यवस्था—नीति-निर्देशक सिद्धान्त ।

पृष्ठ २०६—२११

(२२) संघ शासन

राष्ट्रपति; उसका चुनाव और वेतन—उपराष्ट्रपति—मंत्रिमंडल—शपथ-ग्रहण—सामूहिक जिम्मेदारी—प्रधान मंत्री का कर्तव्य—मंत्रियों सम्बन्धी अन्य बातें—राष्ट्रपति के अधिकार—मंत्रियों का वेतन—एटार्नी जनरल ।

पृष्ठ २१२—२१७

(२३) संघ पार्लिमेंट

राजपरिषद्—लोकसभा—कार्यकाल और अधिवेशन—सभापति और उपसभापति—सदस्यों सम्बन्धी कुछ नियम—सदस्यों की अयोग्यता—सदस्यों के अधिकार और वेतन—कानून बनाने की प्रणाली—संयुक्त अधिवेशन—धन सम्बन्धी मसविदे की विशेष कार्य-प्रणाली—राष्ट्रपति की स्वीकृति—आय-व्यय पत्रक—पार्लिमेंट की भाषा ।

पृष्ठ २१८—२२६

(२४) सर्वोच्च न्यायालय

सर्वोच्च न्यायालय का संगठन—न्यायाधीशों के लिए आवश्यक योग्यता—न्यायाधीशों का वेतन और भत्ता—न्यायाधीशों की शपथ—न्यायाधीशों का कार्य-काल—न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र—अधिकार-क्षेत्र की वृद्धि—न्यायालय का खर्च और उसके अधिकारियों का वेतन आदि ।

पृष्ठ २२७—२३०

(२५) राज्य-शासन

गवर्नर; उसको नियुक्ति—कार्यकाल और वेतन आदि—शपथ—अभियोग लगाकर गवर्नर का हटाया जाना—गवर्नर के अधिकार—मंत्रिमंडल का संगठन—मंत्रियों का शपथ-ग्रहण—वेतन और भत्ता—सामूहिक जिम्मेदारी—एडवोकेट-जनरल—शासन-कार्य का संचालन ।

(२) रियासती संघों का विधान

सर्वोच्च सत्ता जनता के हाथ में—प्रबन्धकारी शक्ति—वेतन और भत्ते—न्याय विभाग—विधान में संशोधन—विशेष वक्तव्य ।

(३) रियासतों पर केन्द्र का नियन्त्रण

(४) राजाश्रों का निजी खर्च और सम्पत्ति

राजाश्रों का निजी खर्च—राजाश्रों की सम्पत्ति—विचारणीय बात ।

पृष्ठ २६१—२४३

(२६) राज्य व्यवस्थापक मंडल

व्यवस्थापक मंडल की सभाएँ और उनकी अवधि—व्यवस्थापक सभा का संगठन—व्यवस्थापक परिषद् का संगठन—सदस्यों की शपथ, अयोग्यता और अधिकार—सभाश्रों के अधिवेशन और कानून-निर्माण ।

(२) रियासतों के व्यवस्थापक मण्डल

पृष्ठ २४४-२४८

(२७) उपसंहार

हमारा स्वप्न पूरा हो रहा है—विधान की आलोचना की आवश्यकता—विधान राष्ट्रभाषा में नहीं बना—संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली—गालिग मताधिकार—प्रभावशाली राष्ट्रपति—शक्तिशाली मंत्रिमण्डल—सर्वोच्च सत्ताधारी पार्लिमेंट—सामन्तशाही का अन्त—प्रजातन्त्र की स्थापना शेष है—महान भारतीय संघ—अखरने वाली बात; वेतन की असमानता—हमारा उत्तरदायित्व—विशेष वक्तव्य—भारत का शासन-तंत्र ; नए विधान के अनुसार (नक्शा) ।

पृष्ठ २४८—२५७

परिशिष्ट

कुछ मुख्य-मुख्य तिथियाँ ।

पृष्ठ २५८—२६०

पहला खण्ड अँगरेजों के शासन-काल में

पहला परिच्छेद विषय-प्रवेश

इस पुस्तक का विषय—१५ अगस्त १९४७ से भारत अँगरेजों की अधीनता से मुक्त है, वह स्वाधीन है। साथ ही उसका कुछ हिस्सा पाकिस्तान के नाम से एक अलग राज्य बना दिया गया। शेष भारत अब इंडियन यूनियन कहलाता है। इसकी ही शासनपद्धति का वर्णन इस पुस्तक में किया जायगा। इसका नया विधान देहली में विधान-सभा बना रही है, उसके सन् १९४६ में बन जाने की आशा है। वह इस देश के नागरिकों के द्वारा बनाया हुआ पहला राष्ट्रीय विधान होगा। परन्तु उसके अमल में आने में—नया चुनाव होने, प्रान्तीय तथा केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल और मन्त्रिमण्डल आदि बनने में अभी एक वर्ष से भी अधिक समय लग सकता है। उस समय तक यहाँ के शासन का मूल आधार ब्रिटिश पार्लिमेंट द्वारा पास किया हुआ सन् १९३५ का विधान है, जो भारतीय स्वतन्त्रता एक्ट सन् १९४७ के अनुसार गवर्नर-जनरल के आर्डरों द्वारा घटाया बढ़ाया और संशोधित किया गया है। काम चलाने के लिए यह अस्थायी योजना बना ली गई है।

नये विधान की कितनी ही बातें सन् १९४७ के भारतीय स्वतन्त्रता

कानून के आधार पर हैं, और भारतीय स्वतन्त्रता कानून अपने से पहले के शासन-विधानों का उत्तरोत्तर विकसित और संशोधित स्वरूप है। इस प्रकार नये विधान के समझने के लिए हमें उस शासनपद्धति को जान लेना आवश्यक है, जो सन् १९४७ के भारतीय स्वतन्त्रता कानून के आधार पर प्रचलित हुई और इस स्वतन्त्रता कानून को समझाने के लिए हमें उससे पहले की शासनपद्धति की जानकारी से बहुत सहायत मिल सकती है, जो उससे पहले जारी थी। बात यह है कि यहाँ शासन पद्धति का क्रमशः विकास हुआ है। किसी भी समय की शासन पद्धति जानने के लिए उससे पहले की शासन-पद्धति जान लेना उपयोगी है।

इस प्रकार हम इस पुस्तक के विषय को तीन खण्डों में बाँट सकते हैं :—

(१) अँगरेजों के शासन-काल में अर्थात् सन् १७५७ से १५ अगस्त १९४७ तक।

(२) स्वाधीन होने अर्थात् १५ अगस्त १९४७ से नये विधान के अमल में आने तक।

(३) नया शासन विधान।

भारत की शासनपद्धति का विचार आरम्भ करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि शासनपद्धति का आशय क्या है, सरकार क्या-क्या कार्य करती है, और देश के विविध भागों का क्षेत्रफल और जनसंख्या क्या है।

शासनपद्धति—उन्नत समाजवाले देशों में एक ऐसी संस्था होती है, जो वहाँ के निवासियों की सामूहिक उन्नति का ध्यान रखते हुए आवश्यक नियम बनाए और उन नियमों का पालन कराए, देश के भीतर शान्ति रखे, तथा विदेशियों के आक्रमण से उसकी रक्षा करे। इस संस्था को सरकार (गवर्मेंट) कहते हैं। सरकार कुछ ऐसे कार्यों का भी सम्पादन करती है, जिनको आदमी अलग-अलग न कर सके, या

जिन के लिए बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता हो ।

उपर्युक्त विविध कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए तीन प्रकार के अधिकारियों की आवश्यकता होती है :—(१) व्यवस्थापन अर्थात् कानून-निर्माण करनेवाले, (२) शासक, अर्थात् कानूनों पर अमल कराने, उनका अच्छे तरह पालन करानेवाले और (३) न्यायाधीश, अर्थात् कानूनी अधिकारों की रक्षा कराने और कानून-भंग के अपराधियों को दण्ड देनेवाले । कहीं तो ये तीन प्रकार के अधिकारी बिल्कुल पृथक्-पृथक् होते हैं, और कहीं, इनमें से दो या तीनों के कार्य एक ही प्रकार के अधिकारियों के सुपुर्द होते हैं । अस्तु; इन तीन प्रकार के अधिकारियों के सङ्गठन और कार्य-प्रणाली आदि के कानून या नियम-संग्रह को शासनपद्धति कहते हैं ।

सरकार के कार्य; (१) व्यवस्थापन या कानून-निर्माण

—सरकार, बड़े-बड़े राज्यों में, दो भागों में विभक्त होती है, केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकार । उन्नत राज्यों में इनके कार्यों का सञ्चालन करने के लिए क्रमशः केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाएँ कानून बनाती हैं । प्रायः केन्द्रीय विषयों के कानून-निर्माण के लिए दो-दो सभाएँ होती हैं । प्रान्तीय कानून के लिए प्रत्येक प्रान्त में प्रायः एक ही सभा होती है, परन्तु कहीं-कहीं दो-दो सभाएँ भी होती हैं । यदि एक ही सभा हो तो उसे व्यवस्थापक सभा कहते हैं । यदि सभाएँ दो होती हैं तो उन्हें संयुक्त रूप में व्यवस्थापक मंडल कहा जाता है । दो सभाओं में से जिनमें जनसाधारण के प्रतिनिधि होते हैं, उसे छोटी सभा या, निचली सभा ('लोअर हाउस') कहते हैं । दूसरी सभा को जिसमें धनी-मानी या प्रतिष्ठित सदस्य होते हैं, बड़ी सभा या, ऊपरली सभा ('अपर हाउस') कहते हैं । स्मरण रहे कि निचली सभा में सदस्यों की संख्या बहुत अधिक होती है, तथा इस सभा के अधिकार भी ऊपरली सभा की अपेक्षा अधिक ही होते हैं । किसी व्यवस्थापक सभा में लोगों का प्रतिनिधि-रूप से भाग लेना, एक महत्वपूर्ण कार्य है ।

इसके लिए सुयोग्य व्यक्तियों का ही निर्वाचन होना चाहिए और जो व्यक्ति निर्वाचित हों, उन्हें बड़े परिश्रम तथा ईमानदारी से अपने महान कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

शासन कार्य—भिन्न-भिन्न विषयों के कानून बना देने से ही सरकार का कार्य पूरा नहीं हो जाता। इन कानूनों के अनुसार व्यवहार करना होता है। कानून को अमल में लाने, और शान्ति सुव्यवस्था रखने का कार्य करनेवालों को शासक कहा जाता है। सर्वोच्च शासक को कहीं तो व्यवस्थापक मण्डल अथवा मतदाता निर्वाचित करते हैं, और कहीं वह पुरतैनी होता है, अर्थात् पिता के बाद उसका बड़ा लड़का राज्य का अधिकारी हो जाता है। पहली दशा में वह राष्ट्रपति या प्रेसिडेंट कहलाता है, और दूसरी दशा में राजा या बादशाह आदि। सर्वोच्च शासक की सहायता के लिए एक सभा होती है। इसे प्रबन्ध-कारिणी सभा अथवा कहीं-कहीं मन्त्रिमण्डल कहते हैं। प्रबन्धकारिणी सभा राज्य के विविध कर्मचारियों को नियुक्त करती है। सेना तथा पुलिस पर इसका अधिकार होता है। यही सभा राज्य के भिन्न-भिन्न विभागों के वार्षिक आय-व्यय का चिट्ठा अर्थात् बजट बना कर उसे व्यवस्थापक सभा में पेश करती है, और उसकी स्वीकृति के अनुसार सर्वसाधारण से विविध कर आदि द्वारा आय प्राप्त करता है तथा प्राप्त आय को खर्च करती है। किसी क्षेत्र के प्रबन्ध-कार्य की गुरुता को देखकर यह निश्चय किया जाता है कि उसकी प्रबन्धकारिणी के कुल कितने सदस्य हों, अथवा एक-एक सदस्य के सुपुर्द क्या-क्या कार्य या विभाग रहें। इसमें समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है।

शासकों का सङ्गठन केन्द्र, प्रान्त तथा जिला वार होता है। अपने-अपने क्षेत्र में निर्धारित अधिकार रखते हुए, जिलों के शासक तो प्रान्तीय शासक के अधीन होते हैं, और प्रान्तीय शासक देश काल के अनुसार, कुछ बातों में केन्द्रीय शासकों के अधीन होते हैं।

उन्नत और विकसित राज्यों में राजा, बादशाह या अध्यक्ष (राष्ट्रपति)

सब कार्य प्रधान मंत्री की सलाह से करता है, जो व्यवस्थापक सभाओं के प्रति उत्तरदायी होता है। अन्य शासक पूर्णतया व्यवस्थापक सभाओं के प्रति उत्तरदायी होते हैं; इनका वेतन निश्चय करने का अधिकार व्यवस्थापक सभा को होता है। जिस समय यह जान पड़े कि शासक अपना कर्तव्य ठीक पालन नहीं करते, व्यवस्थापकों को अधिकार है कि उन्हें उनके पद से हटाने का प्रयत्न करें। बहुत से अनुभवों से, शासकों (या मंत्रिमंडल) को उनके पद से हटाने के लिए एक शिष्टाचार-मूलक पद्धति का आविष्कार हो गया है। दैध राजतंत्र या लोकतंत्र राज्यों में व्यवस्थापक सभा को असन्तुष्ट देखकर, या उसके उन पर अविश्वास प्रकट करने पर वे त्यागपत्र दे देते हैं।

(३) न्याय कार्य—किसी देश के सुप्रबन्ध के लिए समय-समय पर यह भी विचार करना आवश्यक होता है कि किसी स्थान में किसी व्यक्ति-समूह ने कानून का उल्लङ्घन तो नहीं किया है। कानून जैसे नागरिकों के लिए होता है, वैसे ही शासकों अर्थात् सरकारों कर्म-चारियों के वास्ते भी होता है। अपनी रक्षा और उन्नति के लिए नागरिक अपने कुछ अधिकार शासकों को दे देते हैं, तथापि उन्हें भी यथेष्ट अधिकार रहते हैं। यदि कितना समय नागरिकों और शासकों में किसी विषय पर मतभेद हो तो उसका निपटारा कराने के लिए न्यायालय होते हैं। वे यह भी विचार करते हैं कि यदि दो या अधिक नागरिकों का पारस्परिक झगड़ा है तो कानून की दृष्टि से किसका पक्ष उचित है, और किसका अनुचित। ऐसे विचार या निर्णय को 'न्याय' कहते हैं, और इस कार्य को करनेवाले न्यायाधीश, जज, या मुन्सिफ आदि कहलाते हैं। न्याय का उद्देश्य तभी सफल हो सकता है, जब वह सस्ता और निष्पक्ष हो। उसमें जाति, रंग, धनी और निर्धन, या राजकर्मचारी और नागरिक आदि का लिहाज़ न होना चाहिए। विशेषतया पराधीन देशों में राजनैतिक विषयों में बहुधा अन्याय होने, शासकों के त्रुटि-युक्त पक्ष का भी समर्थन होने, और शासक जाति के आदमियों से अनुचित

रियायत होने की सम्भावना रहती है। इस ओर न्यायाधीशों का विशेष ध्यान रहना चाहिए।

इस प्रसंग में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति, उनके पद या वेतन की वृद्धि, तथा उन्हें हटाने का अधिकार शासकों के अधीन न होकर, व्यवस्थापक सभाओं के अधीन रहना चाहिए; किसी भी दशा में न्याय-कार्य शासकों के सुपुर्द न होना चाहिए। पुनः विशेषतया फौजदारी मामलों में यह सर्वथा सम्भव है कि न्यायाधीश अभियोग को समुचित रीति से न समझे, अथवा उसका निर्णय एकांगी हो। इसलिए उन्नत राज्यों में अभियुक्त की जाति तथा देश के कुछ सुयोग्य सज्जनों की 'जूरी' यह विचार करती है कि अभियोग सम्बन्धी वास्तविक घटनाएँ क्या हैं। उसके आधार पर, जज तत्सम्बन्धी कानूनी निर्णय सूचित करता है।

सरकार के तीनों अंगों का आपसी सम्बन्ध—इस प्रकार सरकार के तीन कार्य होते हैं—व्यवस्थापन, शासन, और न्याय। इन्हें क्रमशः व्यवस्थापक मंडल, शासक मंडल और न्याय विभाग करते हैं। ये सरकार के तीन अंग हैं। इन अंगों का कार्य पृथक्-पृथक् है, तथापि इनमें से प्रत्येक का दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है; कोई सर्वथा स्वतंत्र नहीं है। व्यवस्थापक मंडल कानून बनाता है, तो उन पर अमल शासक-मंडल करवाता है, और, उन कानूनों की अवहेलना करनेवालों को दंड देने का विचार न्याय-विभाग करता है। कानून बनने का महत्व तभी है, जब जनता उसका पालन करे; और, सर्वसाधारण कानूनों का पालन तभी करते हैं, जब उन्हें भली भाँति मालूम हो कि ऐसा न करने से उन्हें दण्ड दिया जायगा। दंड का निश्चय न्याय-विभाग करता है और वह दंड जेल के अधिकारियों द्वारा दिया जाता है; जो शासक मंडल के अधीन होते हैं। यदि शासक मंडल यह कार्य न करे तो न्याय-विभाग के कार्य का कुछ महत्व नहीं रहता। इसी प्रकार, यदि न्याय-विभाग न हो तो व्यवस्थापक मंडल के बनाए कानूनों का ठीक अर्थ

लगाना, नागरिकों-नागरिकों के, तथा नागरिकों और शासकों के भगड़े या मतभेद का निपटारा होना कठिन है। इस प्रकार न्याय-विभाग व्यवस्थापक मंडल की महत्वपूर्ण सहायता करता है।

सरकार के तीनों अंग अपने-अपने स्थान पर उच्च हैं। प्रत्येक के अपना-अपना कर्तव्य भली भाँति पूरा करने से ही राज्य की, और उसके नागरिकों की, उन्नति होती है।

भारतीय संघ; लंका, बर्मा और पाकिस्तान रहित—

जब हम भारतीय संघ के आकार-प्रकार पर विचार करते हैं तो पहली बात यही सामने आती है कि यह उतना विशाल भारत नहीं है, जिसकी सांस्कृतिक दृष्टि से हम चिरकाल से कल्पना और आराधना करते रहे हैं। विभाजित करके शासन करने की नीति वाले अंगरेजों ने उन्नीसवीं सदी के आरम्भ (सन् १८०२) में ही लंका को भारत से जुदा करके यहाँ के चाय और रबड़ आदि से मनचाहा लाभ उठाना आरम्भ कर दिया था। पोछे भारत में स्वतंत्रता-आन्दोलन को अधिकाधिक जोर पकड़ते देखकर उनके मन में यह आशंका हुई कि भारत के साथ बर्मा भी स्वतंत्र हो जायगा, तो उसके चावल और मिट्टी के तेल आदि उपयोगी पदार्थों से वंचित होना पड़ेगा। इसके अलावा सिंगापुर में जल-सेना का केन्द्र बनने से बर्मा का महत्व और भी बढ़ा हुआ था। अस्तु, अंगरेजों ने भारत तथा बर्मा के जनमत की उपेक्षा कर सन् १९३५ में बर्मा को भारत से अलग करके उसके वास्ते पृथक् शासनपद्धति का निर्माण कर दिया।

हम इन दो प्रहारों को भूले न थे कि अंगरेजों ने यहाँ से जाते-जाते, यहाँ के साम्प्रदायिक नेताओं की दुर्भावनाओं से लाभ उठा कर अगस्त १९४७ में पाकिस्तान को भी भारत से पृथक् कर डाला। अंगरेज भारत से चले गए, पर उनकी कूटनीति के फलस्वरूप आज दिन लंका, बर्मा और पाकिस्तान से भारत वंचित है। उनकी अपनी अलग-अलग सरकारें हैं; यद्यपि उनके निवासी भारतवासियों से भिन्न नहीं हैं,

सबकी नसों में एक ही खून की धारा है; सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से सब का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

पाकिस्तान का परिचय—पाकिस्तान भारत के किसी भाग का पुराना नाम नहीं है । यह तो कुछ प्रदेशों को मिलाकर उन्हें दिया हुआ एक नया नाम है । इसके दो भाग हैं—पूर्वी और पश्चिमी । पूर्वी पाकिस्तान में पूर्वी बंगाल का प्रान्त और सिलहट का जिला है । मुख्य पाकिस्तान पश्चिम में है । इसमें पश्चिमी पंजाब, सिन्ध बिलोचिस्तान और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त तथा इस ओर की रियासते हैं । कुल पाकिस्तान का क्षेत्रफल ३ लाख ६१ हजार वर्ग मील है । पाकिस्तान बनने के समय, (सन १९४१ की गणना के अनुसार) इस राज्य की कुल आबादी लगभग सात करोड़ थी, पर पाकिस्तान में हिन्दुओं और खासकर सिक्खों के प्रति बहुत दुर्व्यवहार हुआ और भारतीय संघ के कुछ मुसलमानों में साम्प्रदायिक भावना ने उग्र रूप धारण किया । इस से इन दोनों राज्यों के लाखों आदमों एक राज्य से दूसरे राज्य में गए । पर पाकिस्तान जाने वालों की अपेक्षा वहाँ से आने वालों की संख्या अधिक रही । फिर, जो मुसलमान यहाँ से पाकिस्तान गए थे, उनमें से कितने ही यहाँ लौट आए । इस प्रकार पाकिस्तान की आबादी लगभग साढ़े छः करोड़ होने का अनुमान है ।

इस राज्य का विधान कराची में विधान-सभा बना रही है । उसमें उपस्थित किए गए उद्देश्य-प्रस्ताव में कहा गया था कि 'पाकिस्तान एक स्वतंत्र सार्वभौम संघीय राज्य बनेगा । इसमें जन-प्रतिनिधियों की इच्छा ही अधिकार और शक्ति का निर्णय करेगा तथा इस्लाम के आधार पर जनतंत्र, स्वातंत्र्य, समानता, सहिष्णुता और सामाजिक समता पूर्ण रूप से मानी जायगी । यहाँ प्रत्येक मुसलमान व्यक्तिगत तथा सामाजिक रूप में अपने धर्म और मान्यताओं का पालन करेगा तथा यहाँ अल्पसंख्यकों को भी अपने धर्मों और मान्यताओं को निभाने का अवसर दिया जायगा । इससे स्पष्ट है कि यह राज्य इस्लाम पर आधारित होगा ।

भारतीय संघ का क्षेत्रफल और जनसंख्या—पाकिस्तान का अलग राज्य बन जाने पर अब भारतीय संघ का क्षेत्रफल १२,२०,०६६ वर्गमील रह गया है। सन् १९४७ में यहाँ देशी रियासतों की संख्या लगभग ५५० थी, इनमें से दो सौ से अधिक छोटी-छोटी रियासतें अपने पास के प्रान्तों में मिल गई हैं। इनका क्षेत्रफल लगभग ८५ हजार वर्गमील है। अब भारतीय संघ में पाँच लाख वर्गमील क्षेत्रफल देशी रियासतों का है। भारतीय सङ्घ की जनसंख्या, सन् १९४१ की गणना के आधार पर, लगभग बत्तीस करोड़ है, जिसमें से साढ़े सात करोड़ आदमी रियासतों में रहते हैं।

भारत के स्वतन्त्र राज्य; नेपाल और भूटान—भारत में स्वतन्त्र राज्य नेपाल और भूटान हैं। नेपाल राज्य हिमालय के दक्षिण में, अधिकांश में पहाड़ी राज्य है। इसकी लम्बाई पाँच छः मील से अधिक और चौड़ाई एक सौ चालीस मील है। पिछली मनुष्य-गणना के अनुसार, यहाँ का क्षेत्रफल चब्बन हजार वर्गमील और जनसंख्या साठ लाख है। नेपाल के छोटे-बड़े कुल २२ भाग हैं। यहाँ का प्रधान शासक 'महाराजाधिराज श्री पाँच सरकार' कहलाता है। वस्तुतः शासन-कार्य का सम्पादन प्रधान मंत्री करता है, यह 'महाराज तीन सरकार' कहलाता है। इससे नीचे जंगी लाट होता है, वह इसके देहान्त के बाद इसके पद का अधिकारी हो जाता है। यहाँ के कायदे कानून प्राचीन हिन्दू शास्त्रों के अनुसार हैं। शासन में कठोरता है, चोरी डाके, आदि को रोकने का कड़ा प्रबन्ध है। भारत सरकार इस राज्य को प्रतिवर्ष दस लाख रुपए भेंट करती है। इसकी सीमा पर भारत-सरकार का रेज़िडेन्ट रहता है, उसे इसके आन्तरिक राज-प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने का कुछ अधिकार नहीं होता।

भूटान का क्षेत्रफल बीस हजार वर्गमील और जनसंख्या लगभग दस लाख है। इसे भारत-सरकार से एक लाख रुपए सालाना मिलता है। यहाँ की सरकार बाहरी मामलों में उसकी सलाह से काम करती है,

भीतरी मामलों में स्वतंत्र है। प्रधान शासक महाराजा कहलाता है। हाल में भारत-भूटान संधि हुई है। भूटान के 'पश्चिमी द्वार' का इलाका लौटाने की माँग पर, जो हिन्दुस्तान को ठेके पर मिला हुआ था, या तो भारत सरकार अधिक रुपया देना स्वीकार कर लेगी या फिर इस इलाके का कुछ भाग उसे वापस लौटा देगी। इस संधि के अनुसार भूटान को पूरी आंतरिक आजादी होगी। लेकिन जहाँ तक विदेशी-नीति का ताल्लुक है, यदि दक्षिणी चीन पर कम्यूनिस्टों का अधिकार हो गया तो भारत-सरकार भूटान की सीमा पर होनेवाली कम्यूनिस्टों की कार्यवाही पर पूरी निगरानी रखेगी। इसके अलावा वह यहाँ की आंतरिक शासन-व्यवस्था भी विछिन्न नहीं होने देगी जिससे हिन्दुस्तान की आन्तरिक या बाह्य सुरक्षा को किसी किस्म का खतरा पहुँचे।

फ्राँसीसी और पुर्तगीज राज्य—भारत से आँगरेजी सत्ता हट गयी, पर कुछ भागों में अन्य योरोपीय शक्तियों का प्रभुत्व है। यनाम, माहो, कारीकल, पाँडेचेरी, और चन्द्रनगर फ्राँस के अधीन हैं। इनका क्षेत्रफल दो सौ वर्ग मील और जनसंख्या तीन लाख से कुछ कम है। इन स्थानों में पाँडेचेरी मुख्य है। यही सत्र की राजधानी है, यहाँ इनका प्रबन्ध करने के लिए एक गवर्नर तथा उसकी सहायतार्थ एक मन्त्री, विविध विभागों के सेक्रेटरी और एक न्यायाध्यक्ष रहते हैं।

गोवा, डामन, और ड्यू पुर्तगाल के अधीन हैं। इन तीनों स्थानों का क्षेत्रफल साढ़े चौदह सौ वर्गमील और जनसंख्या लगभग छः लाख है। इन स्थानों के लिए एक गवर्नर-जनरल, गोवा (राजधानी) में रहता है। उसकी प्रायः पाँच साल में बदली होती है। उसकी प्रबन्धकारिणी और व्यवस्थापक दोनों प्रकार की सभाएँ हैं।

भारत के स्वाधीन होते ही इन प्रदेशों की जनता भी स्वतन्त्र होने के लिए लालायित हो गई। यहाँ की विदेशी सरकारों ने जनआन्दोलन

का दमन किया, तथापि आन्दोलन बन्द नहीं हुआ। फ्राँसीसी वस्तियों में जनमत लिया जाने वाला है। यह कार्य निस्पक्षता और स्वतन्त्रता-पूर्वक हो या न हो, और इसका फल चाहे जो हो, यह निश्चित है कि स्वाधीन भारत अपने किसी प्रदेश पर विदेशी सत्ता का रहना सहन नहीं करेगा।



दूसरा परिच्छेद कम्पनी का समय

भारतीय शासन का जो स्वरूप इस समय है वह किसी खास एक दिन निर्धारित नहीं हुआ। विविध परिवर्तनों के बाद, कई एक मंजिलें तय करने पर उसे यह रूप मिला है। इसलिए इस देश की वर्तमान शासन-पद्धति को अच्छी तरह समझने के लिए इसके पूर्व इतिहास की मुख्य-मुख्य बातें जान लेना आवश्यक है। भारतवर्ष की शासनपद्धति के वैदिक काल से लेकर अब तक अनेक रूप रहे हैं, पर हमें बहुत पुरानी बातों का विचार न कर केवल अंगरेजों के समय में होनेवाले परिवर्तनों का ही विचार करना है।

कम्पनी की राजनैतिक सत्ता का बढ़ना—स्थूल रूप से यह कहा जा सकता है कि अंगरेजों का आगमन यहाँ सन् १६०० में हुआ। तब से १७५७ तक, लगभग डेढ़ सौ वर्ष यहाँ ईस्ट इंडिया कम्पनी के व्यापार की वृद्धि होती रही। धीरे-धीरे उसके डच, पुर्तगीज़ और फ्राँसीसी प्रतिद्वन्दियों का हास होता गया। भारत की राजनैतिक दुरवस्था से लाभ उठाकर वह अपनी सत्ता बढ़ाने लगी। बात यह थी कि सम्राट् औरंगजेब की मृत्यु (सन् १७०७) के बाद यहाँ केन्द्रीय शासन कमजोर हो गया। प्रान्तों के सूबेदार और नवाब खुदमुखतार हो चले। उधर औरंगजेब के समय की साम्प्रदायिक नीति ने भी अपना कुफल

दिखाया। जगह-जगह केन्द्रीय शक्ति की अवहेलना होने लगी। कितने ही स्थानीय शासकों ने अपनी व्यक्तिगत भावनाओं या स्वार्थवश कम्पनी को सहायता दी। ऐसी परिस्थिति में कम्पनी अधिकाधिक शक्तिवान होती गई। सन् १७५७ में उसका बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला से संघर्ष हुआ। नवाब के लोभी सेनापति मीरजाफर ने उसे ऐन समय पर धोखा दिया तथा अंगरेज सेनापति क्लाइव और वाटसन ने बड़ी चालाकी और मक्कारी से काम लिया। कूटनीति के बल पर सन् १७५७ की प्लासी की लड़ाई में कम्पनी ने विजय प्राप्त की। उसने मीर जाफर को बंगाल का नवाब बना दिया। पर मीरजाफर तो नाम मात्र का नवाब था; असली शक्ति कम्पनी के हाथ में थी।

सन् १७६५ में बादशाह ने सन्धि के रूप में कम्पनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी अर्थात् मालगुजारी वसूल करने का अधिकार दे दिया। इससे कम्पनी को इन स्थानों में कानूनी हक मिल गया। कम्पनी केवल व्यापार करनेवाली संस्था न रही, वह राज्य भी करने लगी। वह मालगुजारी वसूल करती, अपनी सेना रखती, और अपनी रक्षा करने के अलावा अधिक भूमि प्राप्त करने के वास्ते दूसरों पर आक्रमण भी कर सकती थी। अब उसके लिए भारत में राज्य-स्थापन का मार्ग साफ हो गया। उत्तर भारत में एक स्थान के बाद दूसरे स्थान पर अधिकार प्राप्त करने के लिए उसके पास यथेष्ट धन-जन हो गया।

प्रान्तों की रचना—पहले कम्पनी का प्रबन्ध एक 'कोर्ट-ऑफ-डायरेक्टर्स' (डायरेक्टरों की सभा) करती थी। इसमें २४ डायरेक्टर और एक गवर्नर होता था। सतरहवीं सदी के अन्त में कलकत्ता, बम्बई और मदरास में एक अलग-अलग प्रबन्धकर्ता गवर्नर या प्रेसीडेन्ट रहने लगा; प्रत्येक का शासनाधीन प्रदेश प्रेसीडेन्सी कहा जाता था। हरेक प्रेसीडेन्सी सीधे डायरेक्टरों के अधीन थी। गवर्नर अपनी प्रेसीडेन्सी का प्रबन्ध एक कौंसिल द्वारा करता था। धीरे-धीरे कम्पनी के अधिकार में

अधिक भूमि आती गई, और वह इसे ऊपर बताए हुए तीन प्रेसीडेंसियों में से किसी-न-किसी में शामिल करती गई। इस प्रकार प्रेसीडेसी का अर्थ बढ़ा प्रान्त हो गया। जब इन प्रेसीडेसियों की सीमा बहुत अधिक बढ़ गई और शासन की दृष्टि से असुविधा मालूम होने लगी तो क्रमशः नए प्रान्त बनाए गए।

कम्पनी का प्रबन्ध—कम्पनी को भारत से अधिक-से-अधिक धन संग्रह करने की इच्छा थी। उसने गरीब किसानों से खूब कसकर मालगुजारी वसूल की। दूसरे कर प्राप्त करने के लिए भी उसने जनता के प्रति कठोरता की नीति बर्ती। उसके कर्मचारियों के लोभी और रिश्वतखोर होने के कारण सब कारोबार और उद्योग-धन्धे नष्ट-भृष्ट हो गये और न्यायालयों में बहुत बेइन्साफी होने लगी। सन् १७७२ में वार्नहेस्टिंग्स बंगाल का गवर्नर हुआ। उसने मालगुजारी के सम्बन्ध में ज़मींदारों से पाँच वर्ष के लिए बन्दोबस्त किया। मालगुजारी का ठेका दिये जाने लगा और उसे वसूल करने के लिए हिन्दुस्तानी कर्मचारियों को हटा कर उनका काम योरपियन कलेक्टरों को दे दिया गया। इसी समय से प्रत्येक जिले में एक कलेक्टर होने की प्रथा चली। कलेक्टर ही, पंडितों और मौलवियों की सहायता से, हिन्दुओं और मुसलमानों के मुकदमों का फैसला करने लगा। कलकत्ते में अपील की दो अदालतें स्थापित की गईं—सदर दोवानी अदालत, माल के मुकदमों की अपील के लिए; और सदर निजामत अदालत, फौजदारी मामलों की अपील के लिए।

पार्लिमेंट का हस्तक्षेप—सन् १७५७ से सौ वर्ष तक कम्पनी के राज्य का विस्तार होता रहा। कम्पनी की प्रभुता स्थापित होने तथा उसके कर्मचारियों के अधिकाधिक धनवान होने पर इंग्लैंड की जनता का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ। सन् १७७३ से ब्रिटिश पार्लिमेंट प्रति बीसवें वर्ष कम्पनी को नयी सनद देने लगी। सनद बदलते समय पार्लिमेंट भारतवर्ष के शासन-सधार के सम्बन्ध में कानून बनाती थी।

जिन्हें 'चार्टर एक्ट' कहा जाता था।

रेग्युलेटिंग एक्ट और पिट का कानून—कम्पनी के रुपया उधार माँगने पर पार्लिमेंट को उसके अधिकारों में खुला हस्तक्षेप करने का अवसर मिला। ऋण देते समय सन् १७७३ में कम्पनी का प्रबन्ध सुधारने के विचार से रेग्युलेटिंग एक्ट के नाम का कानून बनाया। इससे बम्बई और मदरास की सरकारें बंगाल सरकार के अधीन की गईं। बंगाल का गवर्नर गवर्नर-जनरल कहा जाने लगा। वार्नहेस्टिंगस पहला गवर्नर-जनरल हुआ। उसकी सहायता के लिए चार मेम्बरों की कौंसिल या प्रबन्धकारिणी सभा बनाई गई। कलकत्ते में एक प्रधान जज और तीन दूसरे जजों की प्रधान अदालत (सुप्रीम कोर्ट) की स्थापना की गई। अब से कम्पनी के सारे राज्य पर गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल का अधिकार हो गया।

इस रेग्युलेटिंग एक्ट का संशोधन सन् १७८४ में पिट के बनाए हुए कानून से हुआ। पिट के कानून के अनुसार कम्पनी के शासन-प्रबन्ध की देखरेख करने के लिए पार्लिमेंट की ओर से 'बोर्ड-आफ-कंट्रोल' नाम की नियंत्रण करनेवाली कमेटी बनाई गई, जिसमें ६ सदस्य रखे गए। धीरे-धीरे भारत के अंगरेजी राज्य पर पार्लिमेंट का हस्तक्षेप बढ़ता गया।

गवर्नर-जनरल के कौंसिल के सदस्यों की संख्या में एक की कमी कर दी गई, अर्थात् अब से उसमें चार की जगह तीन सदस्य रहने लगे। इस प्रकार केवल एक सदस्य द्वारा समर्थन होने पर भी गवर्नर-जनरल अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकता था। पीछे जाकर यह नियम कर दिया गया कि विशेष दशाओं में वह कौंसिल के मत के विरुद्ध भी कार्य कर सके।

अन्य चार्टर एक्ट—सन् १७७३ के बाद सन् १७६३ में कम्पनी की सनद बदली गई। इस वर्ष के चार्टर-कानून से भारत में एक सीमा तक व्यापार करने का अधिकार दूसरे अंगरेज व्यापा-

रियों को भी दिया गया। सन् १८१३ के कानून से कम्पनी का भारत के व्यापार का एकाधिकार उठ गया, सब अंगरेजों को यहाँ व्यापार करने की अनुमति हो गई। भारत में शिक्षा-प्रचार के लिए कम-से-कम एक लाख रुपया सालाना खर्च करने की व्यवस्था की गई। यह नियम किया गया कि उच्च पदों की नौकरी इंग्लैंड-नरेश की इजाजत से दी जाया करे। १८३३ के कानून से भारत सरकार का मुख्य अधिकारी बंगाल का गवर्नर-जनरल कहला कर भारत का गवर्नर-जनरल कहलाने लगा। भारत सरकार को कम्पनी के समस्त राज्य के लिए कानून बनाने का अधिकार हो गया, मदरास और बम्बई की सरकारों को कानून बनाने का अधिकार न रहा। गवर्नर-जनरल की कौंसिल में कानून-सदस्य और बढ़ गया। यह केवल कानून बनाने के समय ही कौंसिल में भाग ले सकता था। पहला कानून-सदस्य मेकाले था, जिसको अंगरेजी शिक्षा-प्रचार सम्बन्धी नीति प्रसिद्ध है। भारतीयों को यह आश्वासन दिया गया कि सरकारी नौकरियों मिलने का मार्ग उनके लिए खुला रहेगा, कोई आदमी अपने रंग, जाति, या धर्म आदि के कारण उनसे वंचित नहीं किया जायगा। आगरा और अवध-प्रान्त के लिए एक लेफ्टिनेंट-गवर्नर नियुक्त किया गया। सन् १८५३ के कानून में यह स्पष्ट कर दिया गया कि भारत में राज्य करने का असली अधिकार ब्रिटिश सरकार को है; हाँ, जब तक पार्लिमेंट खुद शासन करना न चाहे तब तक कम्पनी बादशाह के नाम से राज्य कर सकती है। इस समय से बंगाल, बिहार और उड़ीसा के शासन के लिए एक पृथक् लेफ्टिनेंट-गवर्नर नियुक्त किए जाने से गवर्नर-जनरल इस कार्य से मुक्त होगया। अब कानून-सदस्य कौंसिल के दूसरे सदस्यों के समान अधिकार पाकर इसमें बैठने और सम्मति देने लगा, तथा कानून बनाने के लिए छः अतिरिक्त सदस्य बनाए गए। इस प्रकार गवर्नर-जनरल, जंगी लाट, कौंसिल के चार मेम्बरों और इन छः अतिरिक्त सदस्यों को मिला कर प्रथम बार बारह सदस्यों की व्यवस्थापक सभा बनाई गई। सिविल सर्विस के लिए

प्रतियोगता के आधार पर दरवाजा सब के लिए खोल दिया गया, परन्तु परीक्षा इंग्लैंड में ही होने के कारण भारतीयों को विशेष लाभ न मिला ।

सन् १८५७ का संग्राम; कम्पनी का अन्त—भारतीयों को अंगरेजों की अधीनता अधिकाधिक असह्य होती जा रही थी, उनका आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक असन्तोष बढ़ता जा रहा था । वे समय-समय पर उनसे लड़कर अपने स्वाधीनता-प्रेम का परिचय देते रहे । लार्ड डलहौजी के शासन में ऐसा मालूम पड़ा कि भारत के एक हिस्से के बाद दूसरे हिस्से को किसी-न-किसी बहाने से, तेजी से अंगरेजों की अधीनता में लाया जा रहा है, मानो सारे भारत पर अंगरेजी झण्डा फहराने की तैयारी हो रही है । ऐसी दशा में भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का क्षेत्र और अधिक व्यापक होना स्वाभाविक था । सन् १८५७ में भारतीय स्वतन्त्रता का सुप्रसिद्ध संग्राम हुआ । हिन्दुओं और मुसलमानों ने मिलकर भारत में अंगरेजों सत्ता को नष्ट करने का प्रयत्न किया, परन्तु संगठन की कमी, उद्देश्य की असमानता और सुयोग्य नेतृत्व के अभाव के कारण वे असफल रहे । कुछ देश-द्रोही भारतीयों की सहायता से अंगरेजों की विजय रही ।

सन् १८५८ से कम्पनी का अन्त हो गया, भारत का शासन-प्रबन्ध उसके हाथ से निकलकर पार्लिमेंट के अधीन हो गया । स्मरण रहे कि कम्पनी को अपने अन्तिम समय तक भारत में हुकूमत करने का कानूनी अधिकार प्राप्त न था, उसके बड़े-से-बड़े अधिकारी अपने आपको भारत-सम्राट के 'फिदविए खास' (विशेष सेवक) कहते थे और सनदों और कानूनी कागजों में लिखते थे । १८५७ की राजक्रान्ति तक सब राजकाज उसके नाम से होता था । पीछे अंगरेजों ने असफल भारत-सम्राट बहादुरशाह को नजरबन्द करके रंगून भेज दिया और किसी भारत वासी का भारत-सम्राट बनना बन्द हो गया ।

विशेष वक्तव्य—कम्पनी के समय की भारतीय शासन-व्यवस्था पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि इस समय इसमें भारतवासियों का कोई हाथ न था; शासक जैसा चाहते थे, प्रबन्ध करते थे, उन्होंने कोई सुधार किया तो उसमें उनकी सुविधा या इच्छा ही प्रधान रही। इसके बाद इसमें क्रमशः जो परिवर्तन हुआ, उसका विचार आगे किया जायगा।

तीसरा परिच्छेद पार्लिमेंट का समय

(क) सन् १८५८-१९१८

पार्लिमेंट का समय—पहले कहा जा चुका है कि सन् १८५८ से भारत में ब्रिटिश पार्लिमेंट का शासन स्थापित हुआ, और यह देश १५ अगस्त १९४७ को स्वाधीन हुआ। इस प्रकार पार्लिमेंट का शासन लगभग नब्बे वर्ष रहा। भारतीय शासन-नीति की दृष्टि से इसके स्थूल रूप से तीन भाग किए जा सकते हैं—

(क) सन् १८५८ से १९१८ तक। दृढ़ केन्द्रीय शासन की स्थापना, और शासन-कार्य में भारतीयों के सहयोग की वृद्धि।

(ख) सन् १९१९ से १९४६ तक। उत्तरदायी शासन और प्रान्तीय स्वराज्य।

(ग) सन् १९४६ से १५ अगस्त १९४७ तक। भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति, परन्तु साथ ही पाकिस्तान-राज्य का निर्माण।

इस परिच्छेद में हम इनमें से पहले भाग की शासन-नीति का विचार करेंगे।

सन् १८५८ का कानून—इस वर्ष पार्लिमेंट ने 'भारतवर्ष के बेहतर शासन' का कानून पास किया। इसके अनुसार भारत का

शासन प्रबन्ध कम्पनी के हाथ से हटाकर इंग्लैंड के शासक को सौंपा गया; जो पीछे भारत का सम्राट् (या साम्राज्ञी) कहा जाने लगा। एक भारत-मंत्री की नियुक्ति की गई। कम्पनी के कोर्ट-आफ-डायरेक्टर्स, और बोर्ड-आफ-कंट्रोल के सब अधिकार उसे दे दिए गए। भारत-मंत्री को शासन-कार्य में सहायता देने के लिए १५ सदस्यों की एक इंडिया-कौंसिल बनाई गई। इसके सम्बन्ध में विशेष आगे लिखा जायगा।

महारानी विक्टोरिया की घोषणा; सरकारी नीति —

ब्रिटिश पार्लियामेंट की सम्मति से महारानी विक्टोरिया ने भारतीय शासन सम्बन्धी सब अधिकार अपने हाथ में ले लिए। उनकी घोषणा (नवम्बर १८५८) में पुरानी संधियों को पालन करने का आश्वासन देते हुए कहा गया कि 'हम अपने वर्तमान (भारतीय) राज्य का और अधिक विस्तार नहीं चाहते। जबकि हम अपने राज्य या अधिकारों पर किसी को आक्रमण न करने देंगे, हम राजाओं के राज्य या अधिकारों पर भी कोई आघात न होने देंगे। हम देशी राजाओं के अधिकारों तथा मान-प्रतिष्ठा का अपने अधिकारों तथा मान-प्रतिष्ठा की तरह सम्मान करेंगे।' इस घोषणा में भारतीयों की धार्मिक भावना की रक्षा, उनके साथ समानता का व्यवहार करने और उन्हें योग्यतानुसार सरकारी पद देने का आश्वासन दिया गया। घोषणा के कुछ वाक्य ये हैं :—

‘हम अपने को भारतीय प्रजा के प्रति कर्तव्य के उन्हीं बंधनों से बंधा हुआ मानते हैं, जो कि हमारी अन्य प्रजा के प्रति हैं। सर्वशक्तिमान ईश्वर की कृपा से हम इन कर्तव्यों का सचाई के साथ हृदय से पालन करेंगे।’

‘हमारी यह भी इच्छा है कि जहाँ तक सम्भव हो, हमारे प्रजाजनों को उनकी योग्यता, शिक्षा तथा ईमानदारी के अनुसार पक्षपात रहित होकर सरकारी नौकरियों में स्थान दिया जाय, और उनकी जाति या उनके धर्म का विचार न किया जाय।’

‘हमारी हार्दिक इच्छा है कि भारत में शान्तिपूर्ण वातावरण में उद्योग-धंधों की उन्नति की जाय, सर्वसाधारण के लाभ और सुधार के कार्य किए जायें, और शासन-कार्य का इस प्रकार संचालन किया जाय कि हमारी समस्त प्रजा का कल्याण हो।’

भारतीय जनता ने इस घोषणा को बड़ा महत्व दिया और इसे अपना अधिकार-पत्र माना। पर पोछे उन्हें इस विषय में बहुत निराशा हुई, जो उत्तरोत्तर बढ़ती गई।

भारत-मंत्री—पहले कहा गया है कि पार्लिमेंट भारत का शासन-प्रबन्ध भारत-मंत्रों के द्वारा करने लगी। भारत-मंत्री पार्लिमेंट की दो सभाओं (कामन्स सभा और लार्ड सभा) में से किसी एक का सदस्य होता था। उसके दो सहायक होते थे, एक तो स्थायी, और दूसरा पार्लिमेंट की उस सभा का सदस्य, जिसका भारत-मंत्री सदस्य न हो। उसकी एक सभा (इंडिया-कौंसिल) होती थी। भारत-मंत्री के दफ्तर को ‘इण्डिया-ऑफिस’ कहते थे। यह इंग्लैंड की राजधानी लन्दन में था। इसका सब खर्च भारत के खजाने से दिया जाता था। भारत-मंत्री को सम्राट्, अपने प्रधान मंत्री के परामर्श से, नियत करता था। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल का सदस्य होने के कारण, भारत-मंत्री की नियुक्ति और बरखास्तगी वहाँ के अन्य राजमन्त्रियों के साथ लगी हुई थी। वह पार्लिमेंट के सामने प्रति वर्ष मई महिने की पहली तारीख के बाद, भारतवर्ष के आय-व्यय का हिसाब पेश करता था। उस समय पार्लिमेंट के सदस्य भारतवर्ष के शासन सम्बन्धी विषयों पर आलोचना कर सकते थे। इसे ‘भारतीय बजट की बहस’ कहते थे।

समय-समय पर पार्लिमेंट को भारत सम्बन्धी आवश्यक सूचना देते रहना भी भारत-मंत्री का ही काम था। सम्राट् चाहता तो इसके द्वारा भारत-सरकार के बनाए क़ानून को रद्द कर सकता था। भारतवर्ष के जंगी लाट (कमांडर-इन-चीफ़), बंगाल, बम्बई और मद्रास के गवर्नर, इनकी कौंसिलों के सदस्य, हाईकोर्ट के जज, तथा अन्य उच्च राजकर्म-

चारियों की नियुक्ति के लिए यह सम्राट् को सम्मति देता था ।

भारत-मन्त्री भारतीय शासन के लिए पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदाता था । उसे भारतीय शासन-व्यवस्था के निरीक्षण और नियंत्रण के नियम बनाने का अधिकार था ।

इंडिया-कौंसिल—भारत-मन्त्री को शासन सम्बन्धी कार्य में सहायता या परामर्श देनेवाली सभा 'इंडिया-कौंसिल' कहलाती थी । इसका अधिवेशन भारत-मन्त्री की आज्ञा से एक मास में एक बार होता था । इसका सभापति भारत-मन्त्री, अथवा उसका सहकारी मन्त्री या भारत-मन्त्री द्वारा नामज़द, कौंसिल का कोई सदस्य होता था । इस कौंसिल के सदस्यों को भारत-मन्त्री नियुक्त करता था । भारत-मन्त्री को कौंसिल में साधारण मत ('वोट') देने के अतिरिक्त एक अधिक मत देने का भी अधिकार था । विशेष अवसरों पर वह इस कौंसिल के बहुमत बिना भी कार्य कर सकता था । साधारणतया भारतवर्ष को कोई आज्ञा या सूचना भेजने, अथवा गवर्नर-जनरल या प्रान्तीय सरकारों के साथ भारत-मन्त्री का पत्र-व्यवहार होने का ढंग कौंसिल-युक्त भारत-मन्त्री द्वारा निश्चित किया जाता था ।

केन्द्रीय सरकार की अधिकार वृद्धि—सन् १७७३ के रेग्युलेटिंग एक्ट से भारत का शासन-प्रबन्ध केन्द्रित होने लगा था । अब शासन-प्रबन्ध पार्लिमेंट के हाथ में आ जाने पर वायसराय के अधिकार तथा उत्तरदायित्व और भी बढ़ गए । प्रान्तीय सरकारों को उसके आदेशानुसार काम करना होता था, और उन्हें हरेक विषय की सूचना केन्द्रीय सरकार को देनी होती थी । उनके वास्ते नए टैक्स लगाने या ऋण लेने के लिए केन्द्रीय सरकार की तथा किसी विषय का कानून बनाने या उसे अमल में लाने के लिए गवर्नर-जनरल की आज्ञा लेना ज़रूरी था । इस प्रकार प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकार की एजेंट मात्र हो गईं ।

कौंसिल-कानून—ब्रिटिश पार्लिमेंट ने सन् १८६१ में 'इंडियन कौंसिल्स एक्ट' पास किया, उसके अनुसार मदरास और बम्बई की सरकारों को कानून बनाने का अधिकार फिर दिया गया जो १८३३ में छीन लिया गया था ? यह व्यवस्था की गई कि कानून बनाने के लिए प्रबन्धकारिणों कौंसिल के सदस्यों में सरकार द्वारा कुछ सदस्य गैर-सरकारी भी नामजद किए जाया करें। इस कानून के अनुसार पीछे बम्बई और मदरास के अलावा कई अन्य प्रान्तों में भी व्यवस्थापक परिषदों की स्थापना हुई। सन् १८५३ में केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा बनने की बात पिछले परिच्छेद में कही जा चुकी है। अब उसके अतिरिक्त मेम्बरों की संख्या १२ तक हो सकती थी। गैर-सरकारी मेम्बर भी नियत होने लगे, और यह नियम हो गया कि इनकी संख्या आधी से कम न रहे। जिस जगह व्यवस्थापक सभा का अधिवेशन हो, वहाँ के प्रान्तीय शासक को उसके अतिरिक्त मेम्बर के अधिकार प्राप्त हो गए।

सन् १८८५ ई० से भारतीय राष्ट्र-सभा (कांग्रेस) का शासन-सुधार सम्बन्धी वैध और सङ्घटित आन्दोलन आरम्भ हुआ। बहुत-कुछ उसके फलस्वरूप १८६२ का 'इंडियन कौंसिल्स एक्ट' बनाया गया। इससे विश्वविद्यालयों, मुनिसिपैलिटियों और जिला-बोर्डों को तथा जागीरदार आदि विशेष समूहों को व्यवस्थापक परिषदों के लिए सदस्य चुनने का अधिकार मिला। यह अप्रत्यक्ष निर्वाचन था। सदस्यों को परिषदों में प्रश्न पूछने का तथा बजट पर बहस करने का भी कुछ अधिकार दिया गया था।

बंग-विच्छेद और राष्ट्रीय आन्दोलन—कांग्रेस की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी, यह अंगरेजों को अच्छा नहीं लगा। वे कांग्रेस को हिन्दुओं की संस्था कहते हुए मुसलमानों को उससे अलग रखने की कोशिश करते रहे। सन् १८०५ में लार्ड कर्जन ने बंगाल के दो टुकड़े कर दिए जिससे बंगाल के नए प्रान्त में मुसलमानों का हिन्दुओं से मेल कम रहे और 'पूर्वी बंगाल और आसाम' प्रान्त में मुसलमानों

का बहुमत हो। इसका जनता ने बहुत विरोध किया। देशव्यापी स्वदेशी आन्दोलन और विदेशी-वस्तु-अहिष्कार का सूत्रपात हुआ। श्री विपिन-चन्द्र पाल के नेतृत्व में राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं का खूब स्थापना हुई। खासकर अरविन्द और तिलक के नेतृत्व में राष्ट्रीय दल (गरम दल) का संगठन हुआ। सन् १९०६ के कांग्रेस-अधिवेशन में इसके अध्यक्ष श्री दादाभाई नौरोजी ने बतलाया कि स्वराज्य भारत का सामान्य ध्येय है। सन् १९०७ के सूरत में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन में गरम और नरम दल का स्पष्ट विवाद सामने आया। लोकमान्य तिलक की गिरफ्तारी के बाद कांग्रेस में नरम दल का बोलबाला रह गया।

सरकार का व्यवहार और आतङ्कवाद—कांग्रेस के अब तक के तेइस वर्ष का आन्दोलन वैधानिक था, विधानवाद में विश्वास रखनेवालों द्वारा संचालित था। परन्तु इस बीच में देश में जहाँ-तहाँ परिमित क्षेत्र में ही सही, एक दूसरी विचारधारा काम करने लग गई थी, वह यह थी कि यदि हम सरकार से खुलकर नहीं लड़ सकते तो आतंक-मार्ग ग्रहण किया जाय। जो सरकार विधानवाद की प्रायः उपेक्षा करती है, आतंकवाद से तो नच कर रहेंगे।

भारत में आतंकवाद पनपने का मुख्य कारण स्वयं सरकार का घोर दमन और अत्याचार था। महारानी विक्टोरिया की घोषणा का उल्लेख पहले हो चुका है। उसके होते हुए भी यहाँ अधिका-रियों का व्यवहार ऐसा भेद-भाव मूलक, स्वार्थपूर्ण तथा निर्दय रहा कि खासकर साहसी और युवक-हृदय व्यक्ति स्वाधानता के लिए छुटपटाते रहे। गुप्त सभाएँ संगठित की गईं। अस्त्र-शस्त्र और धन-संग्रह करने के लिए 'डाके' डाले गए। कहीं एक अंगरेज अफसर को मार डालने का योजना की गई, कहीं दूसरे को गोली का निशाना बनाया गया। कहीं गवर्नर आदि की रेल उलटने का प्रयत्न किया गया। इस प्रकार सन् १८५७ से १९४२ तक एक के बाद एक दूसरी घटनाओं का ताँता लगा ही रहा। हाँ, बीच-बीच में, खासकर कांग्रेस की स्थापना के बाद, कभी-

कमी कुछ समय के लिए वातावरण कुछ शांत रहा ।

माल्ले-मिंटो सुधार और सम्प्रदायिक निर्वाचन—

सन् १९०८ से नरम दल वाले ही कॉंग्रेस का अधिवेशन करने लगे थे । गवर्नर-जनरल लार्ड मिंटो ने उन्हें संतुष्ट करने के लिए भारत-मंत्री लार्ड माल्ले से विचार-विनिमय किया । फल-स्वरूप सन १९०९ में माल्ले-मिंटो सुधार कानून बना । इसके अनुसार भारतीय व्यवस्थापक सभा में साठ सदस्य होने लगे—३३ नामजद और २७ निर्वाचित । प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों में गैर-सरकारी सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई । कुछ सदस्य प्रत्यक्ष रूप से भी निर्वाचित होने लगे; अधिकांश निर्वाचन तो अप्रत्यक्ष हो था । अब से भारत-सरकार का एक सदस्य भारतीय होने लगा । प्रान्तीय सरकारों के सदस्यों में भारतीयों को भी शामिल करने की व्यवस्था की गई ।

जहाँ एक ओर व्यवस्थापक सभाओं में भारतीयों का बल बढ़ाया जा रहा था, दूसरी ओर उसे घटाने को भी योजना कर ली गई थी । स्वयं सरकार के इशारे पर मुसलमानों का डेप्युटेशन लार्ड मिंटो से मिला था । अन्ततः नये सुधारों में, मुसलमानों के लिए भारतीय व्यवस्थापक सभा में, और पंजाब को (जहाँ मुसलमानों की आबादी अधिक थी) छोड़कर अन्य प्रान्तों की व्यवस्थापक परिषदों में पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रथा जारी कर दी गई । इस प्रकार जातिगत निर्वाचन के रूप में भारतीय राष्ट्रीयता के लिए एक विष-वृक्ष लगा दिया गया, जो पीछे उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया ।

इन सुधारों के बारे में स्वयं लार्ड माल्ले ने कहा था कि 'यदि यह कहा जा सकता हो कि ये सुधार प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भारत को पार्लिमेंटरी (प्रतिनिधिक) शासन-व्यवस्था की ओर ले जाते हैं तो कम-से-कम मैं तो इनसे कोई वास्ता नहीं रखूँगा ।' तथापि हमारे नरम-दली सज्जन सरकार की इस कृपा के लिए बहुत कृतज्ञ हुए ।

मुस्लिम लीग—अधिकारियों की भेद-भाव-नीति, मेहरबानी या

रियायतो से मुसलमान प्रभावित होते रहे। उन्होंने कांग्रेस में विशेष भाग लेना पसन्द न किया। अपने राजनैतिक आन्दोलन की स्वतन्त्र व्यवस्था करने के लिए उन्होंने सन् १९०६ में मुस्लिम लीग की स्थापना कर ली। उसने बंगाल के दो टुकड़े किए जाने की सराहना की। (बंग-भंग सन् १९११ में रद्द किया गया)। सन् १९०६ के शासन-सुधारों में सरकार द्वारा मुसलमानों के लिए अलग चुनाव का सिद्धान्त मान लिए जाने पर लीग ने साम्प्रदायिकता का खूब प्रचार किया।

होमरूल आन्दोलन—प्रथम योरपोय महायुद्ध (१९१४-१८) ने पराधीन देशों के लिए आत्म-निर्णय के सिद्धान्त की घोषणा की। इससे भारतीय जनता में स्वराज्य-प्राप्ति के लिए नई आशा और उत्साह का उदय हुआ। इसी समय लोकमान्य तिलक और श्री मती एनी बेसेंट ने 'होमरूल-लीग' (स्वशासन-संघ) स्थापित की। देश भर में जगह-जगह इनकी शाखाएँ फैल गईं। लोकमान्य का यह वाक्य आदमी-आदमी की ज़बान पर चढ़ गया—'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, और मैं इसे लूँगा।' ऐसी बातों का शासन-नीति पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

शासन-कार्य में भारतीयों का सहयोग—पहले कहा जा चुका है कि कम्पनी के शासन-काल में इस देश के शासन-प्रबन्ध में भारतीयों का कोई हाथ न था। पार्लियमेंट ने भी अब तक इस दिशा में विशेष कदम नहीं बढ़ाया था। तथापि उसने एक काम किया था। वह शासन-कार्य में भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने की नीति अपना रही थी; उदाहरण-स्वरूप उसने केन्द्रीय तथा प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं में गैर-सरकारी सदस्यों को शामिल किया, और क्रमशः इनकी संख्या बढ़ाई। पहले ये सदस्य नामजद किए गए, पीछे कुछ खास-खास संस्थाओं को व्यवस्थापक सभाओं के सदस्य चुनने का, अधिकार दिया और इस प्रकार परोक्ष-निर्वाचन प्रचलित करने की प्रथा आरम्भ की। गवर्नर-जनरल और गवर्नरों की प्रबन्धकारिणी सभाओं (कौंसिलों) में भारतीयों को भी स्थान दिया गया। ऊँचे सरकारी पदों में भी कोई-कोई पद भारतीयों को

दिया गया। पर सहयोग को इस नीति की गति बहुत धीमी थी; फिर खासकर अंगरेजी शिक्षा और राष्ट्रीय साहित्य के प्रचार, यातायात की सुविधाएँ, शासन की एकता, पाश्चात्य देशों की प्रजातन्त्रात्मक शासन-पद्धति के ज्ञान, तथा स्वतंत्र देशों के इतिहास से प्रभावित होकर भारतीयों की राष्ट्रीय भावना बढ़ता जा रही थी। कॉंग्रेस जनता के असंतोष को अधिकाधिक व्यक्त करती जा रही थी। ऐसी दशा में शासन-कार्य में भारतायाँ के सहयोग मात्र से काम नहीं चल सकता था। जनता की जोरदार माँग थी कि सरकार अपनी नीति में मौलिक सुधार करे।

सन् १९१७ की घोषणा—**अगस्त १९१७** में भारत-मंत्री ने ब्रिटिश पार्लिमेंट में भारतीय शासन सम्बन्धी नीति की घोषणा की; उसकी मुख्य बातें ये थीं—

(अ) भारत में क्रमशः उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाय, और इसके लिए भारतीयों का शासन के प्रत्येक विभाग में अधिकाधिक सम्पर्क हो।

(आ) भारत जो उन्नति करे, वह ब्रिटिश साम्राज्य का भाग रहते हुए ही करे।

(इ) प्रान्तीय सरकारों को भारत-सरकार से अधिकाधिक स्वतंत्र किया जाय।

(ई) उन्नति-क्रम के समय और सीमा का निर्णय ब्रिटिश सरकार और भारत-सरकार करेगा (भारतीय जनता नहीं)।

मांट-फोर्ड रिपोर्ट और लिबरल दल—नवम्बर १९१७ में भारत-मंत्री श्री० मांटग्यू भारत आए और अनेक सरकारी तथा गैर-सरकारी कार्यकर्ताओं से मिले। फिर उन्होंने वायसराय चेम्फोर्ड के साथ मिलकर भारतीय शासन-सुधारों की योजना तैयार की, जो उन दोनों के हस्ताक्षर से जुलाई १९१८ में प्रकाशित हुई। यह 'मांट-फोर्ड स्कीम' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

कांग्रेस में नरम और गरम विचारों का भेद चला ही जा रहा था, मान्टफोर्ड रिपोर्ट ने इसे और भी बढ़ा दिया। योजना पर विचार करने के लिए कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बम्बई में, अगस्त १९१८ में हुआ। उसमें गरम दल वालों का बहुमत था; योजना को अपर्थात और असंतोषजनक घोषित किया गया। नरम दल वाले अलग रहे, उन्होंने बम्बई में ही अपनी अलग सभा की, जिसका नाम 'आल-इंडिया माडरेट कान्फेन्स' रखा गया। इसके सभापति श्री सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी थे। इसमें सुधार-योजना स्वीकार की गई। दिसम्बर में यह कान्फेन्स फिर की गई और उसका नाम 'आल-इंडिया लिबरल फेडरेशन' रखा गया। पीछे यही नाम बदल कर 'नेशनल-लिबरल फेडरेशन' हो गया। इस प्रकार नरम दल वाले कांग्रेस से अलग हो गए। इनमें अध्ययनशीलता का विशेष गुण था। कानून का मसविदा बनाने, बजट की आलोचना करने, गम्भीर विषयों के भाषण देने और लेख लिखने की कला में ये बहुत कुशल रहे थे। परन्तु अंगरेज सरकार से स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए इनके पास असफल विधानवाद, प्रार्थनापत्र या शिष्ट-मंडल भेजने के सिवा और कोई साधन नहीं था।

विशेष वक्तव्य—भारतीय शासन सम्बन्धी इतिहास में मॉटफोर्ड रिपोर्ट या सुधार-योजना का एक विशेष स्थान है। इसके आधार पर सन् १९१९ में जो सुधार हुए, उनसे कांग्रेस को बहुत असंतोष रहा, तथापि उनसे भारतीय राजनीति में नए युग का आरम्भ हुआ, उसका वर्णन अगले अध्याय में करना ठीक होगा।

चौथा परिच्छेद पार्लिमेंट का समय

(ख) सन् १९१८-४६

पिछले परिच्छेद के अन्त में मांटफोर्ड-सुधार-योजना का उल्लेख किया गया है। उसके आधार पर ब्रिटिश पार्लिमेंट ने सन् १९१६ में कानून बनाया।

सन् १९१६ का शासन-सुधार—सन् १९१६ के शासन-सुधार-कानून के अनुसार भारतीय शासन में निम्नलिखित परिवर्तन किए गए :—

१—व्यवस्थापक सभाओं के सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई और जनता के प्रतिनिधियों की संख्या नामजद सदस्यों से अधिक की गई। मताधिकार का क्षेत्र बढ़ाया गया। लगभग ७५ लाख व्यक्तियों को मताधिकार प्राप्त हुआ। केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल में एक की जगह दो सभाएँ की गई—भारतीय व्यवस्थापक सभा और राजपरिषद।

भारतीय व्यवस्थापक सभा के सदस्यों की संख्या १४० निर्धारित की गई। उसके ४० नामजद सदस्यों में से २६ से अधिक सरकारी नहीं हो सकते थे। कुल सदस्यों में कम-से-कम १०० सदस्य निर्वाचित होने आवश्यक थे। प्रान्तों के सदस्यों की संख्या अलग-अलग थी। संयुक्त-प्रान्त में ८ हिन्दू, ६ मुस्लिम, १ योरपियन, और १ जमींदार निर्वाचित थे, और १ सरकारी और १ गैर-सरकारी सदस्य नामजद थे। इस सभा की आयु तीन वर्ष थी। राजपरिषद में ६० सदस्य होने लगे—३३ निर्वाचित और २७ नामजद। नामजद सदस्यों में सरकारी सदस्यों की संख्या २० से अधिक नहीं होती थी। निर्वाचित सदस्यों के निर्वाचकों के लिए योग्यता का आर्थिक परिमाण बहुत अधिक निर्धारित

किया गया था। इस लिए यह भारतीय व्यवस्थापक सभा की अपेक्षा बहुत कम निर्वाचको का प्रतिनिधित्व करती थी। इस सभा की आयु ५ वर्ष थी।

प्रान्तों की व्यवस्थापक परिषदों के सदस्यों की संख्या जुदा-जुदा थी। सबसे अधिक सदस्य बंगाल में थे; वहाँ १३६ सदस्य थे। संयुक्तप्रान्त की व्यवस्थापक परिषद के सदस्यों की संख्या १२३ निर्धारित की गई; इनमें से १०० सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित होते थे, और २३ गवर्नर द्वारा नामज़द। व्यवस्थापक परिषदों की आयु तीन वर्ष होती थी। साम्प्रदायिक निर्वाचन अब पहले से भी अधिक था।

२—केन्द्रीय और प्रान्तीय विषयों को अलग-अलग करके प्रान्तीय विषयों को दो भागों में विभक्त किया गया—हस्तान्तरित और रक्षित। हस्तान्तरित विषयों में भारतीय मन्त्रियों की जिम्मेवारी रखी गई। इनका प्रबन्ध गवर्नर अपने मन्त्रियों के परामर्श से करता था जो प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों के प्रति उत्तरदायी होते थे। हस्तान्तरित विषयों में स्थानीय स्वराज्य, स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि, उद्योग-धन्धे आदि रखे गए। दूसरे प्रकार के विषय रक्षित कहे गए और गवर्नर की प्रबन्धकारिणी को सौंपे गए। इनके लिए प्रबन्धकारिणी के सदस्य व्यवस्थापक परिषद के अधीन न होकर गवर्नर के प्रति उत्तरदायी होते थे। इस प्रकार के विषयों में शान्ति, कानून, भूमि-कर, आय-व्यय आदि महत्वपूर्ण विषय रखे गए। इस प्रकार उत्तरदायी शासनपद्धति आंशिक रूप में, नौ प्रान्तों में आरम्भ की गई—बंगाल, बम्बई, मदरास, संयुक्तप्रान्त, पंजाब, बिहार-उड़ीसा, मध्यप्रान्त-बरार, बर्मा और आसाम में।

[जिम शासनपद्धति से शासन-कार्य इस प्रकार दो भागों में विभक्त किये जाते हैं, उसे दोहरी शासनपद्धति ("डायर्की") कहते हैं।]

३—इस कानून से केन्द्र में उत्तरदायी शासन आरम्भ नहीं किया गया, भारत सरकार ब्रिटिश पार्लिमेन्ट के प्रति ही उत्तरदायी रही। हाँ, उसमें तीन सदस्य भारतीय होने लगे।

४—इस कानून से इन्डिया-कौंसिल के सदस्यों की संख्या ८ और १२ के बीच में निश्चित की गई। कौंसिल की आयु पाँच वर्ष ठहराई गई। अब तक कौंसिल का खर्च भारतीय खजाने से दिया जाता था अब यह निश्चित किया गया कि भारत-मन्त्री का वेतन ब्रिटिश-कोष से दिया जाया करे, यह इसलिए किया गया कि पार्लिमेंट भारत-मंत्री के कार्यों पर नियंत्रण रख सके। इंग्लैंड में एक नए अधिकारी अर्थात् हाई-कमिश्नर की नियुक्ति की गई। उसे भारत-सरकार के प्रति उत्तरदायी रखा गया। यह इंग्लैंड में भारत-सरकार के एजेंट का काम करता था और भारतीय स्टोर-विभाग, विद्यार्थी-विभाग और भारतीय व्यापार-कमिश्नर के कार्य का निरीक्षण करता था तथा भारत-वर्ष के लिए आवश्यक सामग्री ठेके से बनवाकर यहाँ भेजता था।

इस कानून में यह बात स्पष्ट की गई कि दस वर्ष बाद एक कमीशन नियुक्त किया जायगा जो इस बात की जाँच करेगा कि सन् १६१६ में जो उत्तरदायी शासन प्रचलित किया गया, उसे कहीं तक बढ़ाना, बदलना या घटाना ठीक होगा।

सत्याग्रह और असहयोग—इसी समय सरकार ने भारतीय लोकमत की नितान्त उपेक्षा करके 'रौलेट एक्ट' नाम से कुप्रसिद्ध दमनकारी कानून बना दिया। इस पर महात्मा गाँधी के नेतृत्व में जगह-जगह हजारों आदमियों ने सत्याग्रह किया। कांग्रेस का सन्देश गाँव-गाँव और घर-घर पहुँचा। कांग्रेस ने १६१६ के शासन-सुधारों को अपूर्ण असन्तोषप्रद और निराशाजनक ठहराया और उनका बहिष्कार किया। सन् १६२० में कांग्रेस के उद्देश्य में से भारत के, ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर रहने की बात निकाल दी गई। इस वर्ष नये सुधारों के अनुसार व्यवस्थापक सभाओं का पहला निर्वाचन हुआ, पर नरम दलवाजों को छोड़ कर अन्य योग्य व्यक्तियों ने असहयोग होने के कारण उसमें भाग नहीं लिया।

स्वराज्य-दल का कार्य—सन् १६२२ में, कांग्रेस में एक

ऐसा दल बन गया, जिसने चुनाव में भाग लेकर इन थोड़े सुधारों को नष्ट करना उचित समझा। यह 'स्वराज्य दल' था। इसने १९२३ के चुनाव में बङ्गाल और मध्यप्रांत में बहुमत प्राप्त किया। इस से इन प्रान्तों में मन्त्रियों का वेतन अस्वीकृत या नाममात्र को स्वीकृत हुआ, और सरकार की बार-बार हार हुई। तथापि मन्त्री अपने पद पर बने रहे। इससे शासन का अनुत्तरदायी होना स्पष्ट सिद्ध हो गया।

मुडीमेन-कमेटी—सन् १९२४ में भारतीय व्यवस्थापक सभा में इस आशय का प्रस्ताव पाम किया गया कि भारत में विविध राजनैतिक दलों या स्वार्थों के प्रतिनिधियों को एक गोलमेज सभा हो और उसमें भावी शासन-सुधारों का निश्चय किया जाय। ब्रिटिश सरकार अभी हाल के बने हुए सुधार-कानून को बदलने के लिये तैयार नहीं थी, उसने उक्त प्रस्ताव अस्वीकार किया। इस पर व्यवस्थापक सभा ने बजट की कई मंदा तथा कर लगाने वाला सरकारी प्रस्ताव नामंजूर किया। सरकार को अपने विशेषाधिकार से काम चलाना पड़ा। इस तरह व्यवस्थापक सभाओं के मत के अनुसार शासन-कार्य करने में सरकार को बहुत कठिनाइयाँ हुईं। उन्हें दूर करने के विषय पर विचार करने के लिए अगस्त १९२४ में भारत सरकार ने मुडीमेन-कमेटी नियुक्त की। कमेटी की दो रिपोर्टें प्रकाशित हुईं। बहुमत ने कुछ कठिनाइयाँ दूर करने के उपाय बतलाए। अल्पमत ने यह सिद्ध किया कि सुधार-कानून में विशेष परिवर्तन किए बिना शासन-सम्बन्धी कठिनाइयाँ दूर नहीं हो सकतीं। भारत-सरकार ने अल्पमत रिपोर्ट नामंजूर करके भारतीय व्यवस्थापक सभा में बहुमत-रिपोर्ट स्वीकार करने का प्रस्ताव उपस्थित किया। इसके संशोधन में, सितम्बर १९२५ के व्यवस्थापक सभा ने एक उप-प्रस्ताव पास किया और सुधार सम्बन्धी राष्ट्रीय माँग पेश की; इसे सरकार ने मंजूर नहीं किया।

सन १९३५ के विधान की रचना—सन् १९१९ के विधान की व्यवस्था के अनुसार, यहाँ सन् १९२७ ई० में 'साइमन कमीशन' नियुक्त

हुआ। इसके सातों सदस्य अंगरेज थे, और वे भी अनुदार विचार वाले। इस कमीशन की रिपोर्ट सन् १९२६ में प्रकाशित हुई। पश्चात् १९३० से १९३२ ई० तक लंदन में तीन बार 'गोलमेज सभा' हुई, इनमें से केवल दूसरी में कॉंग्रेस ने महात्मा गांधी द्वारा भाग लिया। गोलमेज सभाओं तथा विविध कमेटियों के परिणाम-स्वरूप शासन सम्बन्धी प्रस्ताव 'श्वेत पत्र' में प्रकाशित किए गए। यह श्वेत पत्र पार्लिमेंट की दोनों सभाओं की संयुक्त कमेटी के सामने उपस्थित किया गया। इस पर पार्लिमेंट ने सन् १९३५ का शासन-विधान बनाया।

इस विधान की मुख्य बातें—सन् १९३५ के विधान की मुख्य बातें ये थीं—

१—सम्पूर्ण भारत (ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों) के लिए संघ-शासन की योजना बनाई गई। इसके बारे में खुलासा आगे लिखा जायगा।

२—प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना की गई, परन्तु गवर्नरों को अनेक विशेषाधिकार दिए गए।

३—बर्मा प्रान्त ब्रिटिश भारत से अलग किया गया। पहले बर्मा के अलावा आठ प्रान्तों में गवर्नर थे—बंगाल, बम्बई, मदरास, संयुक्तप्रान्त, पंजाब, बिहार-उड़ीसा, मध्यप्रान्त-ब्रार और आसाम में। सन् १९३५ के विधान से इनमें तीन प्रान्त और बढ़े। सिन्ध को बम्बई से, और उड़ीसा को बिहार से अलग करके दो नए प्रान्त बनाए गए। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त का शासक पहले चीफ कमिश्नर होता था, वह प्रान्त भी गवर्नर का प्रान्त बनाया गया। इस प्रकार कुल मिलाकर इस समय गवर्नरों के प्रान्त ग्यारह हो गए।

इन ग्यारह प्रान्तों में व्यवस्थापक मंडलों का पुनर्संगठन किया गया। व्यवस्थापक सभा तो इन सभी प्रान्तों में रही। इनमें से छः प्रान्तों (बंगाल, बम्बई, मदरास, संयुक्तप्रान्त, बिहार और आसाम) में दूसरी सभा व्यवस्थापक परिषद भी स्थापित की गई। [प्रान्तीय व्यवस्थापक

मंडलो का यह संगठन भारतवर्ष के स्वतंत्र होने पर भी (नया विधान अमल में आने तक बना रहा) । इसके विषय में व्यंग्येवार बातें अगले खंड में दी जायेंगी ।]

चीफ कमिश्नरी के प्रान्तों में पश्चिमोत्तर प्रान्त के न रहने की बात कही जा चुकी है । इस विधान से एक चीफ-कमिश्नरी नई बढाई गई — पंथ-पिपलौदा । यह प्रदेश पहले होलकर राज्य का ही अंग था ।

४—संघ न्यायालय स्थापित करने की व्यवस्था की गई ।

[संघ-शासन होने की दशा में जब कभी केन्द्रीय सरकार का किसी प्रान्तीय सरकार से, अथवा दो प्रान्तीय सरकारों का परस्पर में किसी विषय में मतभेद हो, या शासन-विधान की किसी धारा का अलग-अलग अर्थ लगाया जाता हो, तो उसका निर्णय संघ-न्यायालय द्वारा होता है ।]

संघ-शासन-योजना—संघ-शामन का अर्थ कई राज्यों का सम्मिलित शासन है । जब कुछ राज्य आत्मरक्षा या आर्थिक अथवा राजनैतिक उन्नति के लिए अपना सेना, व्यापार या राष्ट्रोन्नति आदि विभागों का प्रबन्ध सामूहिक रूप से करना चाहते हैं, और इस उद्देश्य से अपना संगठन करते हैं तो यह कहा जाता है कि उन्होंने अपना संघ (फेडरेशन) बनाया । संघ-शामन में संघान्तरित राज्यों की सरकारें अपने-अपने राज्य सम्बन्धी शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विषयों में स्वाधीन रहती हैं । वे अपनी आय का कुछ भाग और अपने कुछ अधिकार केन्द्रीय सरकार (संघ सरकार) को दे देती हैं, जो इन राज्यों को बाहरी आपत्ति से रक्षा करने के अतिरिक्त सार्वदेशिक हित सम्पादन का कार्य करती है ।

सन् १९३५ के विधान में यह व्यवस्था की गई थी कि भारतवर्ष में संघ-निर्माण की घोषणा सम्राट् द्वारा उस समय की जायगी, जबकि इतने देशी राज्य सङ्घ-शासन को स्वीकार कर लेंगे, जितने राजपरिषद के कम-से-कम ५२ सदस्य चुनने के अधिकारी

हो और जिनकी जनसंख्या देशी राज्यों की कुल जनसंख्या की कम-से-कम आधी हो ।

संघ-निर्माण के बाद, भारत-मन्त्री की सभा अर्थात् 'इंडिया कौंसिल' तौड दी जायगी; हाँ, उसके तीन से छः तक परामर्शदाता रहा करेंगे, जिनका नियुक्ति वह स्वयं करेगा । भारत-मन्त्री और उसके परामर्श-दाताओं का वेतन, उसके विभाग का खर्च, कर्मचारियों का वेतन और भत्ता ब्रिटिश सरकार के कोष से दिया जायगा ।

संघ-सरकार—संघ का निर्माण हो जाने पर भारतवर्ष की केन्द्रीय सरकार का नाम संघ-सरकार होगा । इस समय जो शासन-कार्य कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल के नाम से होता है, वह पीछे गवर्नर-जनरल के ही नाम से हुआ करेगा । गवर्नर-जनरल की एक मन्त्रिसभा, उसके विशेषाधिकारों को छोड़कर, अन्य विषयों में सहायता या परामर्श देगी । इसमें अधिक-से-अधिक दस मन्त्रा होंगे ।

(१) सेना, (२) ईसाई धर्म, (३) परराष्ट्र तथा (४) कवीलों के इलाकों के प्रबन्ध में गवर्नर-जनरल अपने विवेक के अनुसार कार्य करेगा । इन विषयों में मन्त्रियों का परामर्श नहीं लिया जायगा । इनके सम्बन्ध में सहायता देने के लिए गवर्नर-जनरल अधिक-से-अधिक तीन सलाहकार (कौंसिलर) नियत कर सकेगा । इन सलाहकारों का वेतन, और नौकरी की शर्तें सपरिषद् सम्राट् निर्धारित करेगा ।

अल्पसंख्यकों और देशी राज्यों आदि के लिए गवर्नर-जनरल विशेष रूप से उत्तरदायी होगा ; उसका यह उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार के प्रति होगा ।

संघीय व्यवस्थापक मण्डल—संघ-निर्माण होने पर भारतवर्ष की केन्द्रीय कानून बनानेवाली संस्था का नाम संघीय व्यवस्थापक मण्डल (फीडरल लेजिस्लेचर) होगा । उसमें सम्राट् प्रतिनिधि (गवर्नर-जनरल) के अतिरिक्त दो सभाएँ होंगी; राजपरिषद् (कौंसिल-आफ-स्टेट), और

संघीय व्यवस्थापक सभा (फ़ीडरल ऐसेम्बली) ।

राजपरिषद् में अधिक-से-अधिक २६० सदस्य होंगे:—१५६ सदस्य ब्रिटिश भारत के; और अधिक-से-अधिक १०४, देशी राज्यों के । यह एक स्थायी संस्था होगी । इसके एक-तिहाई सदस्य प्रति तीसरे वर्ष चुने जाया करेंगे । ब्रिटिश भारत के सदस्यों में से १५० जनता द्वारा निर्वाचित (और ६ नामजद) होंगे । राजपरिषद् के प्रथम संगठन के पश्चात् उसमें तीन-तीन वर्ष में, जो स्थान खाली होंगे, उनकी पूर्ति के लिए सदस्यों का चुनाव नौ-नौ वर्ष के वास्ते होगा । राजपरिषद् में छः सदस्य गवर्नर-जनरल द्वारा नामजद रहेंगे । इसके प्रथम संगठन के समय इन छः सदस्यों में से दो, तीन वर्ष के लिए; दो छः वर्ष के लिए; और शेष दो, नौ वर्ष के लिए; चुने जायेंगे ।

संघीय व्यवस्थापक सभा में अधिक-से-अधिक ३७५ सदस्य होंगे, जिनमें २५० सदस्य ब्रिटिश भारत के, और अधिक-से-अधिक १२५, देशी राज्यों के होंगे । ब्रिटिश भारत के सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष होगा अर्थात् सीधे जनता द्वारा न होगा वरन् प्रान्तों की व्यवस्थापक सभाओं (ऐसेम्बली) के सदस्यों द्वारा प्रति पाँचवें वर्ष होगा ।

देशी राज्यों की ओर से लिए जानेवाले सदस्यों का निर्वाचन न होकर यह व्यवस्था की गई, कि उनकी नियुक्ति नरेशों द्वारा हो ।

कुछ विषय ऐसे रखे गए जिनके विषय में कोई प्रस्ताव या संशोधन गवर्नर-जनरल की पूर्व स्वीकृति बिना उपस्थित न हो सके या जिनके विषय में व्यवस्थापक मंडल कानून न बना सके । इस विधान के अनुसार लगभग ८० प्रतिशत व्यय के सम्बन्ध में व्यवस्थापक मंडल को मत देने का अधिकार नहीं था, केवल २० प्रतिशत व्यय पर सदस्य मत दे सकते थे; इस व्यय पर भी गवर्नर-जनरल को विशेषाधिकार था ।

गवर्नर-जनरल के कानून बनाने का अधिकार— गवर्नर-जनरल (१) संघीय व्यवस्थापक मंडल के अवकाश के समय आर्डिनंस (अस्थायी कानून) बना सकेगा, (२) अपने उत्तरदायित्व के विचार से आवश्यक

समझने पर, कुछ दशाओं में संघीय व्यवस्थापक मंडल के कार्य-काल में भी आर्डिनेंस बना सकेगा, (३) विशेष दशाओं में वह स्थायी रूप से भी (मंडल की इच्छा के विरुद्ध), कानून बना सकेगा ।

संघ-योजना अनुपयोगी थी—यह संघ-योजना बहुत अनुपयोगी थी । इसमें दो भिन्न प्रकार की शासनपद्धति वाले प्रदेशों का गठबंधन किया गया था । ब्रिटिश भारत में लोकसत्तात्मक शासनपद्धति और संस्थाएँ, कुछ अपूर्ण रूप में हो सही, विद्यमान थीं; जब कि अधिकांश देशी राज्यों में अवैध राजसत्तात्मक शासनपद्धति थी, प्रजा-प्रतिनिधियों का उसमें प्रायः कुछ भी भाग नहीं था । विधान में इनके अन्तर को घटाने के लिए यह व्यवस्था भी नहीं की गई कि देशों राज्यों में कमशः उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित की जाय । इसके विपरीत, उनका सम्राट् से पृथक् और सीधा सम्बन्ध रहने की व्यवस्था करके उन्हें ब्रिटिश भारत से और भी दूर करने की योजना की गई ।

पुनः यह विधान इस देश को न केवल विदेश-नीति और व्यापार के सम्बन्ध में, वरन् अपनी रक्षा और आन्तरिक प्रबन्ध में भी परतंत्र बनाए हुए था । केन्द्रीय कार्यों के संचालन के लिए प्रायः समस्त शक्तियाँ और अधिकार मंत्रिमण्डल को न देकर गवर्नर-जनरल को सौंप दिए गए थे । संघीय व्यवस्थापक मण्डल का संगठन और कार्यपद्धति अत्यन्त दूषित थी, तथा इसके कानून-निर्माण सम्बन्धी एवं आर्थिक अधिकार बहुत कम थे; यहाँ तक कि ऐसा व्यवस्थापक मण्डल संघ-शासन की दृष्टि से सर्वथा अनुपयुक्त था ।

संघ-विधान स्थागत हो गया — ऐसे दूषित विधान का जनता द्वारा प्रबल विरोध होना स्वाभाविक ही था । ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्यों में सर्वत्र इसका विरोध हुआ । कुछ साम्प्रदायिक तथा स्वार्थी लोगों की यह इच्छा अवश्य रही कि विधान अमल में आ जाय । परन्तु वे नगण्य थे । राष्ट्रीय नेताओं ने घोषणा कर दी थी कि यदि ब्रिटिश सरकार हम पर इस विधान को लादेगी तो हम सत्याग्रह द्वारा

उसका विरोध करेंगे। किन्तु उसका अवसर ही न आया। विधान कार्य-रूप में परिणत होने से पहले ही स्थगित कर दिया गया।

विधान के प्रान्तों सम्बन्धी भाग का प्रयोग—

सन् १९३५ के विधान का केवल प्रान्तों सम्बन्धी भाग सन् १९३७ से अमल में आया। इसके इस भाग के भी अमनोषप्रद होने का परिचय इसके प्रयोग में आते ही मिल गया। बात यह हुई कि इस विधान के अनुसार प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डलों का प्रथम चुनाव होने पर ६ प्रान्तों (बम्बई, मदरास, संयुक्तप्रान्त, बिहार, उड़ीसा, और मध्यप्रान्त) में कांग्रेस-दल का बहुमत था। इसलिए इन प्रान्तों के गवर्नरों ने कांग्रेस दल के नेताओं को अपने-अपने प्रान्त में मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए बुलाया। परन्तु कांग्रेस ने मन्त्रि-पद ग्रहण करना उस समय तक अस्वीकार किया, जब तक कि गवर्नर यह आश्वासन न दे दें कि रोजमर्रा के शासन-कार्य में, वे अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग न करेंगे।

अतः विधान को अमल में लाने के लिए, जब कि अन्य प्रान्तों में बहुमत दल के मन्त्रिमण्डल बने, जिन प्रान्तों में कांग्रेस का बहुमत था, उनमें अल्पसंख्यक दलों द्वारा अस्थायी मन्त्रिमण्डल बनाए गए; इन्हें जनता ने 'गुड़िया मन्त्रिमंडल' का नाम दिया। अविश्वास के प्रस्ताव के भय से, ये मन्त्रिमंडल व्यवस्थापक सभाओं के सामने जाने का साहस नहीं कर सकते थे, अतः व्यवस्थापक सभाओं का अधिवेशन स्थगित रखा गया। देश में महान वैधानिक संकट उपस्थित हो गया। भारत-मन्त्री आदि के वक्तव्य निकले, कांग्रेस की ओर से महात्मा गांधी ने उत्तर दिया। अन्ततः गवर्नर-जनरल ने यह आश्वासन दिया कि आमतौर पर शासन-कार्य मन्त्रिमंडल करेंगे, और गवर्नर उनकी सलाह मानेंगे; उसमें हस्तक्षेप न करेंगे। इस पर कांग्रेस ने उक्त छः प्रान्तों में मन्त्रिमंडल बनाए। पश्चात्, पश्चिमोत्तर-सीमाप्रान्त और आसाम में भी कांग्रेसी मन्त्रिमंडल हो जाने से, गवर्नरों के ग्यारह प्रांतों में से आठ में कांग्रेस-

शासन स्थापित हो गया ।

पद-ग्रहण का परिणाम—कांग्रेस द्वारा पद ग्रहण किए जाने से कांग्रेसी प्रांतों में नया राजनैतिक वातावरण हो गया । बात-बात में अधिकारियों से भयभीत होने की भावना घट गई । प्रधानमन्त्री विराट जन-समूह की सभा में अपने आपको जनता का सेवक घोषित करने लगा, और पुलिस आदि के कर्मचारियों को चेतावनी देने लगा कि लोगों पर धौंस जमाने की बात छोड़कर वे सेवाभाव से काम करें, अन्यथा उसका दुष्परिणाम भुगतने को तैयार रहें । इन अधिकार-युक्त बातों का यथेष्ट प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता । जनता अपनी शक्ति समझने लगी, और उसमें अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए जागृति होने लगी ।

मंत्रियों ने जनता की असुविधाओं को दूर करने के लिए यथा-शक्ति प्रयत्न किया । राजबन्दी छोड़े गए, जेलों में आवश्यक सुधार किए गए, प्रेसों की जमानते वापिस की गईं, बकाया बसूलयात्री रोकी गई, ग्राम-सुधार के अन्यान्य कार्यों में, ग्राम-पुस्तकालय खोले गए, पंचायतों की वृद्धि की गई, मद्यपान निषेध का कार्य आरम्भ किया गया, कितनी ही सार्वजनिक संस्थाओं तथा राजनैतिक पुस्तकों पर से पाबन्दी हटाई गई । इसके अतिरिक्त, मजदूरों की स्थिति की जाँच करके, उसमें सुधार की कोशिश की गई, बिहार और संयुक्तप्रान्त में किसानों के हित का कानून, और, मद्रास में ऋण-निवारण कानून बनाया गया ।

पद-ग्रहण से कांग्रेस का संदेश गाँव-गाँव में पहुँचा । सन् १९३८ में कांग्रेस-सदस्यों की संख्या तीस लाख थी । किसी एक संस्था के इतने सदस्य होना अनुपम बात है । इस प्रकार हमारी संगठित शक्ति बढ़ी । साथ ही इसके, यथेष्ट अनुशासन का भाव भी बढ़ा ।

[जिन प्रान्तों में गैर-कांग्रेसी मंत्रिमंडल थे, उनमें भी थोड़े-बहुत जनहितकारी कार्य किए गए ।]

कांग्रेस-सरकारों का पदत्याग—बड़े संकोच और हिच-किचाहट से कांग्रेस ने आठ प्रान्तों में पदग्रहण किया और मन्त्रिमण्डल बनाए थे। परन्तु विधान था ही अत्यन्त असंतोषजनक। कुछ समय वैधानिक संकट ऐसे-तैसे टलता रहा। आखिर, वह आ ही पहुँचा। सन् १९३६ ई० में योरप में (दूसरा) महायुद्ध छिड़ा। इंगलैंड ने जर्मनों के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया तो भारतवर्ष को भी अपने साथ युद्ध-संलग्न घोषित कर दिया और केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों को प्रान्तों में कई प्रकार के काम करवाने के लिए विशेष अधिकार दे दिए, जिससे प्रान्तीय मंत्रिमण्डल की शक्ति कम रह गई। यहाँ युद्ध सम्बन्धी तैयारी होने लगी और ऐसे महत्वपूर्ण विषय में प्रान्तीय सरकारों का कोई मत नहीं लिया गया। कांग्रेसी सरकारों को यह खटकनेवाला ही था, उन्होंने ब्रिटिश सरकार से युद्ध का उद्देश्य पूछा, और यह माँग उपस्थित की कि युद्ध समाप्त होने पर भारतवासियों को अपनी विधान-सभा द्वारा स्वयं ही अपना शासनपद्धति निश्चित करने का अधिकार रहे। ब्रिटिश सरकार का उत्तर सर्वथा असंतोषप्रद रहा। इस पर कांग्रेसी सरकारों ने त्यागपत्र दे दिया। जिन प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल थे, उनमें गवर्नरों ने शासन-विधान स्थगित करके अपना एकलव्य अधिकार स्थापित कर लिया। पीछे कुछ प्रान्तों में साम्प्रदायिक और अराष्ट्रीय मंत्रिमंडल बनाए गए।

क्रिप्स-योजना — जब कि भारतवर्ष पर जापान के आक्रमण की आशंका थी, फरवरी सन् १९४२ में, ब्रिटिश युद्ध-मंत्रिमण्डल की ओर से सर स्टेफर्ड क्रिप्स भारतवर्ष के भावी शासन की एक योजना लेकर यहाँ आए थे; साधारण बोलचाल में उसे 'क्रिप्स योजना' कहते हैं। इसकी मुख्य बातें युद्ध के बाद अमल में आनेवाली थीं; वे इस प्रकार थीं :—

(१) युद्ध-समाप्ति पर भारतवर्ष को औपनिवेशिक स्वराज्य अर्थात् ब्रिटिश साम्राज्य के स्वाधीन उपनिवेशों का पद दिया जाय।

(२) इसका नाम भारतीय 'यूनियन' (संघ) होगा। विधान-सभा को यह निश्चय करने का अधिकार होगा कि भारतीय यूनियन ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर रहे या बाहर।

(३) युद्ध समाप्त होते ही विधान-सभा बनाई जायगी। (सन् १९३५ के शासन-विधान के अनुसार) प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं (असेम्बलियों) का नया चुनाव होगा। उनके कुल सदस्य अपने में से दशमांश व्यक्तियों को चुनकर विधान-सभा बनाएंगे। इस सभा में देशी नरेशों के प्रतिनिधि उनके राज्यों की जनसंख्या के अनुपात से होंगे।

[विधान-सभा के सदस्यों का चुनाव बालिग मताधिकार के आधार पर न होगा। और, देशी राज्यों की ओर से लिए जाने वाले सदस्य उनको जनता के प्रतिनिधि न होंगे।]

(४) जो प्रान्त या राज्य भारतीय यूनियन में सम्मिलित न होना चाहें वे अपना यूनियन अलग बना सकते हैं; उनका ब्रिटिश साम्राज्य से साधा सम्बन्ध होगा।

[जो प्रान्त भारतीय यूनियन से पृथक् होना चाहे, उसकी व्यवस्थापक सभा के बहुसंख्यक (उदाहरणार्थ कम-से-कम साठ प्रतिशत) सदस्य पृथक् होने के पक्ष में होने चाहिए, यदि इससे कम होंगे तो वहाँ की जनता का राय ली जायगी।]

युद्ध-काल के बारे में बताया गया कि भारतवर्ष की रक्षा के कार्य पर अधिकार और उसके संचालन की जिम्मेवारी ब्रिटिश जमी लाट पर होगी, जो ब्रिटिश युद्ध-मंत्रिमण्डल के प्रति जिम्मेवार होगा; वह भारतवासियों में से किसी को नहीं दी जा सकती। [सैनिक और माली साधनों को संगठित करने का कार्य, जनता के सहयोग से भारत-सरकार करेगी।] रक्षा को छोड़कर शेष सब विषय भारतवर्ष के प्रमुख दलों का प्रतिनिधित्व करनेवाले सदस्यों से बनाई हुई राष्ट्रीय सरकार को सौंपे जायेंगे।

योजना अस्वीकृत—इस योजना को भारतवर्ष की विविध

संस्थाओं ने भिन्न-भिन्न कारणों से अस्वीकार किया। राष्ट्रीय दृष्टि से, इसमें निम्नलिखित दोष थे, जिनके कारण कांग्रेस ने इसे अस्वीकार किया—

(१) किसी प्रान्त और देशी राज्य का अलग रहने का अधिकार भारतीय एकता और अखंडता के लिए घातक था।

(२) देशी राज्यों की नां करोड़ जनता को प्रतिनिधित्व न देकर उनकी उपेक्षा का गई थी।

(३) राष्ट्र-रक्षा को जिम्मेवारी भारतीयों को न देकर ब्रिटिश सरकार पर रखी गई थी।

वास्तव में यह योजना एक ऐसी हूँडी की तरह थी, जिस पर आगे की मिति डाली हुई हो, जिसका तत्काल मूल्य न हो। कांग्रेस की यह माँग थी कि राष्ट्र-रक्षा की पूरी जिम्मेवारी हमारे हाथ में होनी चाहिए, जिस से जनता में युद्ध के सफल संचालन के लिए आवश्यक उत्साह हो। फिर, युद्ध-काल में शासन के अन्य सब विभाग इसी विभाग के सहायक और पोषक बन जाते हैं; अतः रक्षा विभाग की तुलना में वे गण्य हो जाते हैं। निदान, आवश्यक सत्ता के अभाव में कांग्रेस ने क्रिप्स-योजना अस्वीकार कर दी। अन्य दलों ने भी उसे स्वीकार नहीं किया।

सन् १९४२ की जन-क्रान्ति—क्रिप्स-योजना की असफलता पर देश में घोर असन्तोष और क्षोभ का वातावरण हो गया। विदेशी शासन असह्य हो रहा था। लोगों में कोई जोरदार कदम उठाने की भावना बढ़ती गई। १४ जुलाई १९४२ को कांग्रेस कार्यसमिति ने अंगरेजों से भारत छोड़ने का आग्रह करनेवाला 'भारत-छोड़ो' प्रस्ताव पास किया। उस पर ८ अगस्त को बम्बई में विचार होकर जो ऐतिहासिक प्रस्ताव स्वीकार किया गया उसने आठ अगस्त को भारतीय राजनीति के इतिहास में अमर बना दिया। इसे उपस्थित करते हुए म० गांधी ने कहा “कांग्रेस से मैंने आज यह बाजी लगवाई है कि वह

या तो देश को आजाद करेगी अथवा खुद फ़ना हो जायगी। 'करो या मरो' हमारा मूल मंत्र होगा।"

कांग्रेस कमेटी का कार्य समाप्त होने से पूर्व ६ अगस्त को बहुत सवेरे ही देश के बड़े-बड़े नेताओं को गिरफ्तार करके सरकार ने बिना चाहे ही जन-संघर्ष को आमंत्रित कर डाला। जनता पर म० गांधी का जो सौम्य नियंत्रण था, वह न रहा। इधर १० अगस्त को भारतमंत्री श्री एमरी का वक्तव्य प्रकाशित हुआ कि कांग्रेस का कार्यक्रम रेल की पटरी उखाड़ना, तार तोड़ना, सरकारी इमारतों को नष्ट करना आदि है। बस, जगह-जगह तोड़फोड़ का काम होने लगा। इस आन्दोलन का संचालन किसी संस्था (कांग्रेस आदि) या व्यक्ति विशेष के नेतृत्व में न होकर स्वयं जनता द्वारा हुआ था। यह जनता का खुला विद्रोह था। इसे दबाने के लिए सरकार ने अंधाधुंध दमन किया। अनेक स्थानों में जन-समूह पर गोलियों चलीं, गांव जलाए गए, सामूहिक जुरमाने हुए, लोगो का सामान नीलाम किया गया, नागरिक स्वतंत्रता छीन ली गई। दमन ने आन्दोलन को बाहरी दृष्टि से शान्त कर दिया, पर वह जनता की स्वतंत्रता की भावना को न दबा सका।

इस जनक्रान्ति के ही समय, देश की पूर्वी सीमा पर इसे स्वतंत्र करने के लिए आजाद-हिन्द आन्दोलन श्री नेताजी सुभाष बोस के नेतृत्व में हुआ। बाहरी दृष्टि से सफल न होने पर भी आजाद हिन्द सरकार ने अपने कार्यों से चमत्कार-पूर्ण साहस, त्याग और संगठन का परिचय दिया।

क्रान्ति के बाद; वेवल योजना—मई १९४४ में म० गांधी जेल से छूटे। आपने फिर यही कहा कि देश में राष्ट्रीय सरकार का स्थापित हो जाना आवश्यक है। आपने तथा श्री राजगोपालाचारी जी ने मुस्लिम लीग के कर्ता-धर्ता श्री जिन्ना से बातचीत की। कांग्रेस ने सरकार पर दबाव डालने के लिए समय-समय पर लीग से विचार-विनिमय किया था। पर लीग का यह हालत था कि हर समझौते में

वह अपनी माँग कुछ अधिक बढ़ाती रहती थी। इस प्रकार समझौता कभी अन्तिम रूप धारण न कर सका। अस्तु, जैसी कि आशंका थी इस बार भी श्री० जिन्ना से हुई बातचीत सफल नहीं हुई। श्री० भूलाभाई देसाई और श्री लियाकतअली ख़ाँ ने मिल कर एक समझौता तैयार किया, जिसमें समान प्रतिनिधित्व को स्वीकार किया गया।

इस बात को आधार मानकर लार्ड वेवल ने सन् १९४५ में राजनैतिक गतिरोध दूर करने के लिए एक योजना उपस्थित की। उस पर विचार करने के लिए २५ जून को शिमले में भारतीय नेताओं की कान्फ़ेन्स बुलाई गई। योजना में कई दोष जानते हुए भी जनता के युद्ध-कालीन संकट दूर करने और देश की आजादी का रास्ता साफ होने की आशा से कांग्रेस ने कान्फ़ेन्स में भाग लिया। विचार-विनिमय के समय श्री जिन्ना ने यह हठ की कि भावी केन्द्रिय सरकार के सब मुसलमान सदस्यों का चुनाव सिर्फ मुस्लिम लीग ही करे; जिसका अर्थ यह होता था कि कांग्रेस कोई राष्ट्रीय संस्था नहीं है, उसका मुसलमानों से कोई सम्बन्ध नहीं है। श्री० जिन्ना को यह बात असत्य थी; योजना पर विचार होते समय भी मँलाना अब्दुलकलाम आजाद कांग्रेस के सभापति की हैसियत से कान्फ़ेन्स में भाग ले रहे थे। अस्तु, वेवल-योजना अमल में नहीं आई।

विशेष वक्तव्य—सन् १९४६ में प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं का जो चुनाव हुआ, उसमें कांग्रेस को प्रचंड विजय प्राप्त हुई। आठ प्रान्तों में उसके मंत्रिमंडल बन गए। उधर, दूसरे महायुद्ध में यद्यपि इंग्लैंड विजयी हुआ था, वह अब योरप में प्रथम श्रेणी का राष्ट्र न रह कर, दूसरी ही नहीं, तीसरी श्रेणी का राष्ट्र रह गया था। वह भारत जैसे देश के सहयोग को उपेक्षा नहीं कर सकता था। फिर, वहाँ के १९४५ के चुनावों ने अनुदार दल को हटाकर शासन की बागडोर मजदूर दल के नेताओं को सौंप दी थी।

ब्रिटिश सरकार को यह साफ दिखाई दे रहा था कि वह अब

अधिक समय तक भारत पर हुकूमत नहीं कर सकती। पर शायद उसे इस ज्वलंत सूचना की आवश्यकता थी कि ब्रिटिश विरोधी भावना अब उसका सेना को भी ग्रस्त कर चुकी है, और उसके ऊपर भी भरोसा नहीं किया जा सकता। यह सूचना उसे फरवरी १९४६ के नैसर्गिक संघर्ष से मिल गई। इसका सूत्रपात बम्बई में हुआ, और यह दूर-दूर तक फैला। अन्त में श्री० सरदार पटेल आदि ने बीच में पड़ कर इसे शान्त किया। अस्तु, इस समय से भारतीय स्वतंत्रता की योजना होने लगी। इसका विचार आगे किया जायगा।

पाँचवाँ परिच्छेद पार्लिमेंट का समय

(ग) सन् १९४६-४७

इस परिच्छेद में इस बात का विचार किया जाता है कि सन् १९४६ भारत में स्वतंत्रता-प्राप्ति का क्रम क्या रहा।

ब्रिटिश मंत्रिमिशन का आगमन—फरवरी १९४६ में यह घोषित किया गया कि ब्रिटिश मंत्रिमंडल के तीन सदस्य (लार्ड पेथिक लारेन्स, सर स्टेफर्ड क्रिप्स, और अलवर्ट एलेग्जेडर) भारतीय नेताओं से भावी भारतीय शासन-विधान के सम्बन्ध में विचार-विनिमय करने के लिए भारत जायेंगे। यह मंत्रिमिशन मंत्रिमंडल का प्रतिनिधि-स्वरूप होगा और इसे मंत्रिमंडल के अधिकार होंगे। भारत द्वारा पूर्ण शासनाधिकार प्राप्त करने के लिए यह निम्नलिखित कार्य करेगा—

१—शासन विधान के निर्माण के ढंग पर अधिक-से-अधिक सहमति प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों तथा भारतीय रियासतों से प्रारम्भिक विचार-विनिमय।

२—विधान सभा का स्थापना।

३—ऐसी प्रत्यक्ष चारिण सभा का निर्माण, जिसका भारत के प्रमुख

राजनैतिक दल समर्थन करे ।

यह ब्रिटिश मंत्रिमिशन यहाँ मार्च १९४६ में आया । यह ब्रिटिश सरकार की ओर से कोई शासन-योजना नहीं लाया था । इसका उद्देश्य भारत के सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्रों के सहयोग से उसका ममविदा बनाना था । इसलिए यह सरकारी पदाधिकारियों तथा भारत के राष्ट्रीय तथा साम्प्रदायिक नेताओं से सम्पर्क स्थापित करके उनसे विचार-विनिमय करने लग गया ।

राष्ट्रीय सरकार और मुस्लिम लीग—मंत्रिमिशन ने नया विधान बनने तक कांग्रेस और मुस्लिम लीग से सम्मिलित अस्थायी सरकार बनाने को कहा ; और, उनके द्वारा न बनाए जाने पर १६ जून १९४६ को १४ सदस्यों को अन्तर्कालीन सरकार बनाने की योजना उपस्थित की । इसमें मुसलमानों के पांच प्रतिनिधि श्री० जिन्ना की मर्जी के रखे गए और कांग्रेस को यह अधिकार भी नहीं दिया गया कि वह अपने हिस्से के प्रतिनिधियों में एक स्थान राष्ट्रीय मुस्लिम को भी दे । मुस्लिम लीग ने योजना स्वीकार करली, पर कांग्रेस ने इसे स्वीकार न किया । फल-स्वरूप अन्तर्कालीन सरकार के निर्माण की यह योजना भी असफल रही । वायसराय को एक कामचलाऊ सरकार स्थापित करनी पड़ी । श्री० जिन्ना को आशा थी कि कांग्रेस की अस्वीकृति पर मुस्लिम लीग को भारत पर शासन करने का अवसर मिलेगा । उनकी यह आशा पूरी न हुई । इससे उन्होंने यह सुझाव रखा कि विधान परिषद के चुनाव भी, मंत्रिमिशन योजना के ही अंग होने के कारण, स्थगित कर दिए जायें, परन्तु उनके लिए तैयारी हो चुकी थी, वे स्थगित नहीं किए गए ।

जुलाई १९४६ में लार्ड वेवेल ने अन्तर्कालीन सरकार बनाने का फिर प्रयत्न किया । उन्होंने कांग्रेस-अध्यक्ष श्री० जवाहरलाल नेहरू तथा श्री जिन्ना को क्रमशः ६ और ५ व्यक्तियों की सूची भेजने को कहा और यह आश्वासन दिया कि अल्पसंख्यकों के तीन सदस्य दोनों बड़े

दलो के परामर्श से नियुक्त किए जायेंगे। श्री० जिन्ना ने जवाब में लीग-कार्यसमिति का प्रस्ताव भेजा जिसमें मंत्रिमिशन की दीर्घकालीन और अन्तःकालीन दोनों योजनाएँ अस्वीकृत की गई थीं, और सक्रिय आन्दोलन द्वारा पाकिस्तान प्राप्त करने की धमकी दी गई थी। इस पर लाड वेवल ने श्री नेहरू को अन्तर्कालीन सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। श्री नेहरू ने कांग्रेस-कार्यसमिति की सम्मति से इस निमंत्रण को स्वीकार किया। आप लीग का सहयोग पाने के लिए श्री जिन्ना से मिले। पर श्री जिन्ना के हठ और साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के कारण वार्ता सफल न हुई। अन्त में आपने २ सितम्बर को लीग के सहयोग के बिना हा १२ सदस्यों की राष्ट्रीय सरकार बनाई, जिसमें देश के अन्य सब प्रमुख हिता के प्रतिनिधि थे।

जब कि राष्ट्रीय सरकार बनाने की बात हो ही रही थी, श्री० जिन्ना ने विरोध-रूप में १६ अगस्त को 'प्रत्यक्ष संघर्ष' ('डायरेक्ट एक्शन')-दिन मनाए जाने को घोषणा कर दी। वे राष्ट्रीय सरकार में सम्मिलित होने से इन्कार कर चुके थे, और यह भी नहीं चाहते थे कि कांग्रेस ही उसे बनाने में सर्वेसर्वा रहे। १६ अगस्त को और उसके बाद खूब साम्प्रदायिक उपद्रव हुए, द्वेषाग्नि फैल गई। मारकाट, लूट, और आग लगाने की कितनी ही घटनाएँ पहले कलकत्ते और नोआखाली में हुईं। लीग-सरकार वाले बंगाल प्रान्त के अमानुषिक अत्याचारों की प्रतिक्रिया बिहार में हुई। परम० गांधी के अनशन की सूचना तथा केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकार की तत्परता से स्थिति जल्दी सम्बल गई।

लोग के अलग रहने और विरोधी कार्य करने के कारण राष्ट्रीय सरकार से न तो कांग्रेस को संतोष था, और न वायसराय को। लीग से फिर बातचीत चली और आखिर, नवाब भोपाल की मध्यस्थता से मुस्लिम लीग के पांच सदस्यों ने, उसकी कार्य-समिति के पूर्वोक्त प्रस्ताव के रहते हुए ही अन्तःकालीन सरकार में आना स्वीकार कर लिया। अस्तु, अन्तःकालीन सरकार के उपर्युक्त बारह सदस्यों में से तन को हटाकर लीग के

५ सदस्य ले लिए गए । इस प्रकार १४ सदस्यों की राष्ट्रीय सरकार बन गई । परन्तु लोग के सदस्य सरकार में शामिल होकर अड़ंगा ही लगाते रहे ।

भावी विधान-योजना—मई १९४६ में मंत्रिमिशन ने भारत का भावी विधान बनाने के लिए विधान-सभा के संगठन की योजना बनाई और यह सफाई की कि एक अखिल भारतीय यूनियन या संघ होना चाहिए, जिसमें ब्रिटिश भारत तथा देशों राज्य दोनों भाग सम्मिलित हों । उसके अधीन ये विषय रहने चाहिए—विदेशी मामले, रक्षा और यातायात । इन विषयों को छोड़कर शेष सब अधिकार प्रान्तों को हों ! कोई भी प्रांत अपना व्यवस्थापक सभा के बहुमत से प्रथम दस वर्ष बाद विधान की शर्तों पर पुनर्विचार कर सकेगा ।

मंत्रिमिशन ने मुस्लिम लोग की पाकिस्तान की माँग को स्पष्ट रूप से अस्वीकार करके भा भारतवर्ष को तीन समूहों में बाँटने पर जोर दिया । उनमें से पूर्वी और पश्चिमी समूहों में ऐसे प्रांतों का समावेश किया गया, जिनमें कुल मिलाकर मुसलिम बहुमत था । उसने 'क' समूह में मद्रास, बम्बई, संयुक्तप्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त और उड़ीसा रखे; 'ख' (पश्चिमी) समूह में पंजाब, पश्चिमोत्तर सोमाप्रान्त, और सिंध; और 'ग' पूर्वी समूह में बंगाल और आसाम । विधान सभा के लिए ब्रिटिश भारत के सदस्यों की संख्या २९६ निश्चित की गई—दस लाख व्यक्तियों पीछे एक प्रतिनिधि के हिसाब से । देशी राज्यों के सदस्यों की संख्या ६३ निश्चित हुई ।

इस योजना में प्रान्तों का समूहकरण आदि कई दोष थे । परन्तु अन्त में पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने का आशा से, कांग्रेस ने इस योजना को स्वीकार कर लिया । विधान-सभा में प्रान्तों की ओर से लिए जाने वाले सदस्यों का चुनाव किया गया । मुसलिम लोग ने भी चुनावों में भाग लिया, पर पछ उसने विधान-सभा से अमहयोग किया ।

विधान-योजना में परिवर्तन; भारतीय संघ और पाकिस्तान—मुस्लिम लोग मंत्रिमिशन-योजना का विरोध और

पाकिस्तान के लिए आन्दोलन करती रही। आखिर, भारतवर्ष के खंडित होने की आशंका देखकर कांग्रेस ने (बंगाल, पंजाब और आसाम के उन भागों को ध्यान में रखकर जिनमें मुस्लिम बहुमत नहीं था) इस बात पर जोर दिया कि किसी प्रदेश पर उसकी इच्छा के विरुद्ध शासन नहीं लाया जा सकता। २० फरवरी ४७ की सरकारी घोषणा में निश्चयात्मक रूप से यह तो कहा गया कि भारत से विदेशी शासन का अन्त होगा और जून १९४८ तक शासन-सत्ता भारतीयों के हाथ में सौंपी जायगी, परन्तु भारतवर्ष के अखंडित रहने का विचार अस्पष्ट ही रहा। आखिर, लार्ड माउंटबेटन ने विविध नेताओं से मिलकर तथा ब्रिटिश मंत्रिमंडल की स्वकृति से ३ जून ४७ को विधान सम्बन्धी नई योजना प्रकट की। इस योजना के अनुसार शासन की दृष्टि से भारतवर्ष के दो अलग-अलग स्वतंत्र राज्य हो गए:—भारतीय संघ और पाकिस्तान।

पाकिस्तान के पूर्वी भाग में पूर्वी बंगाल रहा, जिसमें मुस्लिम बहुमत वाली जनता है। आसाम के सिलहट जिले का अधिकांश भाग भी पूर्वी पाकिस्तान का अंग हो गया। पाकिस्तान के पश्चिमी भाग में पश्चिम, पंजाब, सिन्ध तथा विनोचिस्तान रखे गए और निश्चय किया गया कि पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के लोगों का मत लिया जाय; वे चाहें तो भारतीय संघ में शामिल हों, और चाहें पाकिस्तान में। बात यह थी कि इस प्रान्त में कई वर्षों से कांग्रेस-दल का भारी बहुमत रहा था। पछले निर्वाचन ने यह साफ जाहिर कर दिया था कि वहाँ अधिकांश जनता पाकिस्तान-विरोधी थी। पर इस समय मुस्लिम लीगियों के विघर्ष से बचने के लिए उसने भारतीय संघ में शामिल होना पसन्द नहीं किया। उसने अपने स्वतंत्र पठानिस्तान की माँग की, लेकिन प्रस्तुत योजना में उसकी गुंजायश नहीं थी। इसलिए पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के बहुत से आदिमियों ने अपना मत नहीं दिया। नतीजा यह हुआ कि पाकिस्तान के समर्थक लीगियों को विजय रहे। सीमाप्रान्त वालों को न सहते हुए भी पाकिस्तान में मिलना पड़ा।

भारतीय लोकमत—३ जून की घोषणा से होने वाले देश के विभाजन से राष्ट्रीय नेता प्रसन्न नहीं थे, पर उनके सामने, तत्कालीन परिस्थितियों में स्वाधीनता-प्राप्ति का और कोई उपाय भी नहीं था। भारत के प्रधान मंत्री श्री० नेहरू जी ने इस विषय पर भाषण देते हुए कहा था—‘आपके आगे इन प्रस्तावों को सिफारिश करते हुए मुझे खुशी नहीं हो रही है, हों मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस समय यही रास्ता ठीक है.....दूर दृष्टि से भी मौजूदा फैसला ठीक है जिस संयुक्त भारत के लिए हम लड़ते और काम करते आए हैं उसका आधार ज़बर्दस्ती नहीं, जनता की स्वेच्छा होनी चाहिए। हो सकता है कि इस प्रकार हम संयुक्त भारत के ध्येय को जल्दी प्राप्त कर सकें।’

सरदार बलदेवसिंह (रक्षा मन्त्रा), ने इस प्रसंग में कहा था कि इस योजना से हरेक व्यक्ति संतुष्ट नहीं है और सिक्ख सम्प्रदाय भी किसी प्रकार प्रसन्न नहीं है, किन्तु फिर भी योजना का कुछ मूल्य अवश्य है और हमें उसको उसी मूल्य पर स्वीकार कर लेना चाहिए।

श्री जिन्ना ने अन्तिम निर्णय मुस्लिम लीग की कौंसिल के निर्णय पर छोड़ते हुए कहा था कि ‘वायसरॉय की विभिन्न शक्तियों के विरुद्ध लड़ना पड़ा है, उन्होंने न्यायोचित, पक्षपातहीन उद्देश्य से कार्य किया है और अब उनकी भरसक सहायता करना हमारा काम है जिससे वे शान्तिपूर्वक और व्यवस्थित ढंग से भारतीयों को सत्ता हस्तान्तरित कर सकें।’

महात्मा गांधी ने ४ जून के प्रार्थना-भाषण में कहा कि ‘जनता को यह न भूल जाना चाहिए कि कांग्रेस को इस स्थिति में आने के लिए विवश किया गया है।’ कांग्रेस ने अखंड भारत का लक्ष्य सामने रखा था। परन्तु बिना मुस्लिम लीग के सहयोग के उस सिद्धान्त पर डटे रहने का मतलब देश में भयानक गृहयुद्ध को आमन्त्रित करना था। अंगरेजों की कृपा से मुसलमान अन्ध-शस्त्र से खूब सुसज्जित थे; उनके पीछे ब्रिटिश सत्ता का हाथ था। मुसलिम लीग वाले जगह-जगह

सागप्रदायिक दंगे ही नहीं, लूट-मार, आगजनी आदि हिंसा-कांड कर रहे थे। एक बात यह भी थी कि अस्थायी सरकार के समय लोगी नेताओं ने पद-पद पर बाधाएँ उपस्थित कीं, और शासन-कार्य ठीक तरह नहीं होने दिया। इस दशा में, परिस्थितियों से विवश हो कांग्रेस-नेताओं को न चाहते हुए भी देश का विभाजन स्वीकार करना पड़ा, जिससे अंगरेज यहाँ से चले जायें, और खंडित भारत की ही सही, आजादी मिल जाय।

भारतीय स्वतंत्रता विधान, सन् १९४७—४ जुलाई १९४७ को ब्रिटिश पार्लिमेंट में भारतीय स्वतंत्रता विधान का मसविदा पेश किया गया, और १८ जुलाई को इसे शाही अनुमति से कानून का रूप मिल गया। इसके उद्देश्य इस प्रकार थे—‘दो स्वतंत्र राज्यों (भारत और पाकिस्तान) के निर्माण को व्यवस्था करना, भारतीय शासन सम्बन्धी सन् १९३५ के विधान की उन धाराओं के बदले नई धाराओं को स्थान देना, जिनका सम्बन्ध इन राज्यों के बाहर की बातों से है, और इन राज्यों के निर्माण के फलस्वरूप तथा सम्बन्धित अन्य बातों की व्यवस्था करना।’

यह स्पष्ट है कि नया विधान बन कर अमल में आने तक इन दोनों राज्यों का तथा इनके प्रान्तों का शासन भारत के सन् १९३५ के विधान के अनुसार होगा, जो इन राज्यों के गवर्नर-जनरलों द्वारा संशोधित और परिवर्तित होगा। गवर्नर-जनरल और गवर्नर वैधानिक शासक होंगे। इनके व्यक्तिगत निर्णय और विवेक सम्बन्धी विशेषाधिकारों की इतिश्री होगी। इन दोनों राज्यों पर ब्रिटिश सरकार का किसी प्रकार का नियंत्रण न होगा। इनकी विधान सभाओं को संघीय व्यवस्थापक मंडलों के पूर्ण अधिकार होंगे, उन पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न होगा। उन्हें सर्वोच्च सत्ता प्राप्त होगी।

भारतीय रियासतों को एक या दूसरे राज्य में सम्मिलित होने की स्वतंत्रता दी गई परन्तु कोई रियासत पूर्ण स्वतन्त्र नहीं रह सकती थी ;

एक या दूसरे राज्य में मिलने का कानूनी अधिकार भी बहुत कुछ सीमित था, क्योंकि कुछ भौगोलिक अनिवार्यताएँ ऐसी थीं, जिनसे बचा नहीं जा सकता था ।

भारत के स्वतंत्र हो जाने से भारत-मंत्री और उसके सलाहकार अनावश्यक हो गए; उन्हें हटाने की व्यवस्था की गई ।

विधान को अमल में लाने के कार्य—ऊपर कहा गया है कि भारतीय स्वतंत्रता विधान का मसविदा ४ जुलाई १९४७ को पार्लिमेण्ट में पेश किया गया; यह स्पष्ट था कि उसे विधान का स्वरूप जल्दी ही मिल जायगा । इसलिए उसी समय से उसे अमल में लाने के कार्य किये जाने लगे ।

१—विधान में यह व्यवस्था की गई थी कि प्रत्येक राज्य के लिए एक गवर्नर-जनरल होगा, पर इसमें यह शर्त रखी गई थी कि जब तक इनमें से किसी राज्य का व्यवस्थापक मंडल विरोधात्मक नियमन बनावे, एक ही व्यक्ति दोनों राज्यों का गवर्नर-जनरल नियुक्त किया जा सके । इस प्रकार ब्रिटिश सरकार एक ही व्यक्ति को दोनों राज्यों का गवर्नर-जनरल बनाने को बात सोचती थी । पर मुस्लिम लीग का विचार दूसरा रहा । अस्तु, ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के दूसरे राज्यों में गवर्नर-जनरल को सम्राट् उस राज्य के मंत्रिमंडल की सिफारिश पर नियुक्त करता है, पर भारत और पाकिस्तान में १५ अगस्त १९४७ से पूर्व अलग-अलग मंत्रिमंडल ही न थे । इसलिए ब्रिटिश सरकार ने मुस्लिम लीग की सिफारिश के अनुसार पाकिस्तान में भी त्रिज्जा को गवर्नर-जनरल बनाया और भारतीय विधान सभा की इच्छानुसार भारत में माउंटबेटन को गवर्नर-जनरल रहने दिया ।

२—इस विधान के अनुसार पाकिस्तान के प्रदेश निर्धारित कर दिए गए और ब्रिटिश भारत के शेष प्रदेशों को भारत का नाम दिया गया । प्रदेश-निर्धारण का आधार निवासियों का साम्प्रदायिक बहुमत था, पर अन्तिम निर्णय बंगाल और पंजाब के समा-निर्धारण-कम शनों

पर छोड़ दिया गया, जो अपना निर्णय देते समय साम्प्रदायिक बहुमत के अतिरिक्त कुछ अन्य बातों पर भी विचार करनेवाले थे। सीमा-निर्धारण-कमीशन सर रेडक्लिफ की अध्यक्षता में नियुक्त हुए। परन्तु उनके एकमत न होने के कारण, उनकी अनुमति से सर रेडक्लिफ ने स्वयं अपना निर्णय दिया।

३—भारतीय विधान सभा में मुस्लिम लीग और देशी रियासतों के प्रतिनिधि भाग लेने लगे, और यह घोषित कर दिया गया कि १० अगस्त से पाकिस्तान की विधान सभा कराची में कार्य आरम्भ करेगी।

४—विभाजन-कौंसिल ने सेना का बंटवारा करना शुरू कर दिया और ब्रिटिश प्रधान मंत्री एटली के कथनानुसार अंगरेजों सैनिक भारत से जाने की तैयारी करने लगे।

५—विदेशों में भारतीय राजदूत नियुक्त किए गए।

६—विधान सभा ने कांग्रेस के तिरंगे झंडे में चरखे की जगह सम्राट् अशोक के चक्र को स्थान देकर, उसे भारतवर्ष का सरकारी झंडा स्वीकार किया।

७—प्रान्तों के लिए भारतीय गवर्नरों की नियुक्ति की गई, और आवश्यकतानुसार प्रान्तीय मंत्रिमंडलों में परिवर्तन किए गए।

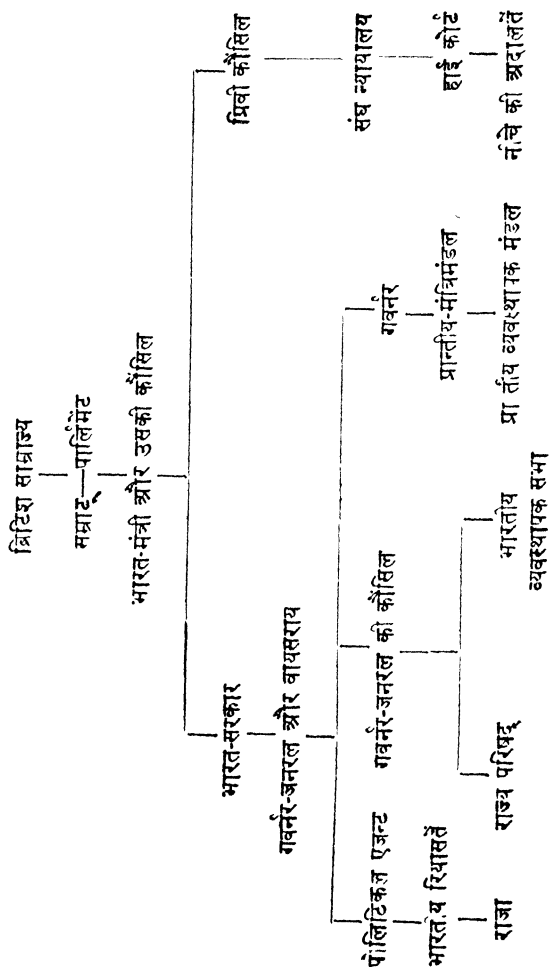
८—लार्ड माउंटबेटन ने रियासतों को भारतीय संघ में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित करते हुए उनका स्वतंत्रता सम्बन्धी भ्रम दूर किया। इस प्रकार भारतीय संघ के विविध भागों का सुसंगठन होने लगा।

विशेष वक्तव्य—१५ अगस्त १९४७ की आधी रात को भारत स्वतंत्र हो गया, राजसत्ता हस्तान्तरित हो गई। देश ने अंगरेजों की अधीनता से मुक्ति पाई, हाँ, खंडित होने के कारण यह समय इतने उल्लास का न था, जितना होना चाहिए था। फिर, इस समय साम्प्रदायिकता का नंगा नाच होने के कारण भारत और पाकिस्तान के सीमा-प्रदेशों में अनेक परिवारों पर मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा, लाखों आदमियों,

स्त्रियों और बच्चों को अपना घर-बार छुँड़ कर दूसरे राज्य में शरणार्थी बनना पड़ा, कितनों ही ने तो अपने प्राण गंवा दिए। अनेक महिलाओं की इज्जत-आबरू नष्ट हुई। ये बातें खून खौलाने वाली थीं। धन्य है, उन सज्जनों को जिन्होंने इस उत्तेजनामय वातावरण में भी धैर्य और गम्भीरता से काम लिया और स्वतंत्र भारत के सामने उपस्थित विविध समस्याओं को हल करने के लिए रचनात्मक प्रवृत्तियों में योग दिया। अस्तु, १५ अगस्त १९४७ हमारी स्वतंत्रता-प्राप्ति का दिवस है। इस समय से हमारी शासनपद्धति ने जो नया रूप ग्रहण किया उसका खुलासा वर्णन अगले खंड में किया जायगा।

अंगरेजों के समय का अन्तिम शासन-तंत्र अगले पृष्ठ के नक्शे में दिखाया गया है 'भारत के स्वतंत्र होने पर यहाँ की शासनपद्धति में जो परिवर्तन हुआ, उसका परिचय पाठकों को इस नक्शे की, आगे पृष्ठ ५७ पर दिये हुए नक्शे से, तुलना करने पर सहज ही मिल जायगा। इस प्रकार १५ अगस्त १९४७ के दिन का हमारी वैधानिक प्रगति में विशेष स्थान है। इससे पहले और इससे पीछे की भारतीय शासन सम्बन्धी स्थिति में महत्वपूर्ण अन्तर है।

भारत का शासन-तंत्र; १५ अगस्त १९४७ से पहले



दूसरा खण्ड स्वतंत्र होने पर

छठा परिच्छेद प्रस्तावना

वर्तमान व्यवस्था अस्थायी है — भारत १५ अगस्त १९४७ से स्वतंत्र हुआ है। पहले कहा जा चुका है कि भारत का नया शासन विधान बन रहा है। उसके बनने का काम तो इसी वर्ष (सन् १९४६) में पूरा हो जायगा परन्तु उसके अमल में आने—उसके अनुसार नए चुनाव होने और नए व्यवस्थापक मंडल और मंत्रिमंडल आदि बनने में और भी समय लगेगा। तब तक शासन-कार्य चलाने के लिए भारतीय स्वतंत्रता-विधान स्वीकार किया गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट ही है कि यह व्यवस्था अल्पकालीन या अस्थायी है। ज्यों ही नया विधानअमल में आने की स्थिति उत्पन्न होगी, वर्तमान व्यवस्था बदल जायगी।

इसका मूल आधार सन् १९३५ का विधान है—
जैसा पहले बताया जा चुका है, भारतीय स्वतंत्रता-विधान, सन् १९४७, कोई ऐसा विधान नहीं है, जिसमें प्रत्येक बात अन्तिम निर्णय की तरह व्योरेवार दी हुई हो, वरन् यह ऐसे प्रस्ताव के रूप में है, जिससे भारत अपना नया विधान बना सके और संक्रमण काल के लिए आवश्यक व्यवस्था कर सके। इसका मूल आधार भारत का सन् १९३५ का विधान है, जो भारतीय स्वतंत्रता-विधान, के अनुसार गवर्नर-जनरल

के आर्डरों द्वारा घटाया बढ़ाया, संशोधित और परिवर्तित किया गया है। इन सुधारों के कारण सन् १९३५ के विधान की सौ से अधिक धाराएँ निकाल दी गई हैं, और शेष इस प्रकार बदल दी गई कि भारत ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के स्वराज्य प्राप्त प्रदेशों के बहुत-कुछ समान हो गया। इन परिवर्तनों के होते हुए भी यहाँ शासन का स्वरूप संघात्मक है और कार्य-विभाजन और आर्थिक व्यवस्था भी प्रायः वही है, जो सन् १९३५ के विधान से निर्धारित की गई थी।

राष्ट्रमंडल और भारत—प्रथम योरोपीय महायुद्ध (सन् १९१४-१८) के समय यह अनुभव किया गया कि 'साम्राज्य' शब्द से दूसरों का शोषण करने और उन्हें पराधीन बनाने की भावना व्यक्त होती है। इसलिए ब्रिटिश साम्राज्य का उल्लेख समानता सूचक ब्रिटिश राष्ट्रमंडल नाम से किया जाने लगा। सन् १९४७ में ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के कई एशियाई भागों ने स्वतंत्रता प्राप्त करली। बर्मा तो स्वतन्त्र होने के साथ ही ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से अलग हो गया। इधर भारत और पाकिस्तान स्वतन्त्र राज्य हुए और सीलोन (लंका) भी। इन स्वतन्त्र राज्यों को ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में बना रहने देने के लिए अक्तूबर १९४८ में यह निश्चय किया गया कि ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के नाम में से ब्रिटिश शब्द निकाल दिया जाय और भविष्य में इसे केवल राष्ट्रमंडल कहा जाया करे। भारत अपनी विधान सभा के निश्चयानुसार स्वतन्त्र प्रजातन्त्र राज्य है और अपने इस रूप को रखते हुए भी राष्ट्रमंडल का सदस्य है। 14354.54/K 29B GH413

भारत के अंग—पहले कहा जा चुका है कि भारतवर्ष का कुछ भाग पाकिस्तान के नाम से अलग राज्य हो गया है। उस भाग के निकलने से भारत के क्षेत्रफल और जनसंख्या में काफी कमी हो गई है। भारत के अब निम्नलिखित अंग हैं—(क) गवर्नरों के प्रान्त, (ख) चीफ-कमिश्नरों के प्रान्त (ग) देशी रियासते, जो निर्धारित पद्धति के अनुसार इस राज्य में सम्मिलित हों। देशी रियासतों के भारतीय संघ में

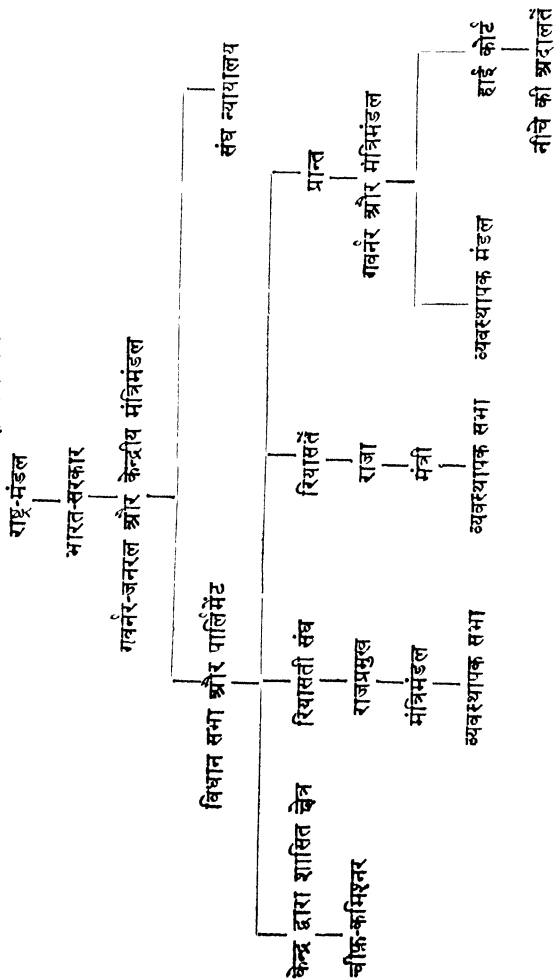
सम्मिलित होने की पद्धति खुलासा तौर पर आगे बताई जायगी ।

भारत की वर्तमान शासनपद्धति को अच्छी तरह समझने के लिए यह विचार करना आवश्यक होगा कि भारतीय स्वतन्त्रता-विधान, सन् १९४७, बनने से पहले क्या स्थिति थी, और उस विधान से अथवा उसके अनुसार जारी होने वाली गवर्नर-जनरल की आज्ञाओं से पूर्व स्थिति में क्या परिवर्तन हो गया है । इसलिए आगे के विवेचन में आवश्यकतानुसार सन् १९३५ के विधान की बातों का उल्लेख किया जायगा ।

वैधानिक परिवर्तन—१५ अगस्त १९४७ के बाद भारत में किस प्रकार की शासनपद्धति प्रचलित हुई; भारत-सरकार, और भारतीय पार्लिमेंट तथा प्रान्तीय सरकारों और प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों आदि का रूप क्या है, ये किस प्रकार सम्राट् और ब्रिटिश पार्लिमेंट के नियंत्रण से मुक्त और भारतीय लोकहित के साधक हैं । इन बातों का व्योरेवार वर्णन अगले परिच्छेद में किया जायगा । इनका स्थूल रूप नक्शे में अगले पृष्ठ में दिखाया जाता है इस नक्शे की, पहले ५३ पृष्ठ पर दिये हुए नक्शे से तुलना करके देखिए कि स्वतंत्र होने पर हमारा शासनपद्धति में क्या वैधानिक परिवर्तन हुआ है ।

१५ अगस्त के बाद स्वतंत्र भारत का शासन-तंत्र

५



प्रस्तावना

५७

सातवाँ परिच्छेद

भारत सरकार

भारतवर्ष की वर्तमान, अर्थात् १५ अगस्त १९४७ के बाद की, शासनपद्धति का वर्णन करने के लिए पहले भारत-सरकार का विषय ले। भारत के स्वतन्त्र होने से पहले भारत-सरकार का अर्थ था, कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल, ('गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल'); कौंसिल का अर्थ गवर्नर-जनरल की प्रबन्धकारिणी सभा था, व्यवस्थापक सभा नहीं। अब भारत-सरकार का अर्थ होता है गवर्नर-जनरल और उसका मंत्रिमंडल। कौंसिल और मंत्रिमण्डल का भेद आगे ज्ञात हो जायगा। पहले गवर्नर-जनरल के सम्बन्ध में विचार करें।

गवर्नर-जनरल का पद——अंगरेजों के शासन-काल में गवर्नर-जनरल भारत-सरकार का सब से महत्वपूर्ण अंग रहा है, और उसे उसके अन्य पदाधिकारियों की अपेक्षा विशेष अधिकार रहे हैं। वह भारत के प्रान्तीय शासन की निगरानी करता था, और सब गवर्नरों (तथा चीफ-कमिश्नरों) से ऊपर था, इसलिए वह गवर्नर-जनरल कहलाता था। सन् १८५८ में भारत का शासन-प्रबन्ध कम्पनी के हाथ से निकल कर पार्लिमेंट के हाथ में जाने पर गवर्नर-जनरल को वायसराय (सम्राट्-प्रतिनिधि) कहा जाने लगा, परन्तु सन् १९३५ से पहले पार्लिमेंट के किसी विधान में वायसराय शब्द का प्रयोग नहीं हुआ। सन् १९३५ के विधान में कहा गया था कि 'संघ का निर्माण होने के बाद यहाँ सम्राट् का प्रतिनिधि ब्रिटिश भारत के शासन सम्बन्धी विषयों में गवर्नर-जनरल, और देशों रियासतों के सम्बन्ध में वायसराय, होगा। परन्तु

सम्राट् को दोनो पदों पर एक ही व्यक्ति को भी नियुक्त करने का अधिकार होगा।' जैसा पहले कहा जा चुका है, सन् १९३५ के विधान का संघ-निर्माण सम्बन्धी भाग अमल में नहीं आया। इस प्रकार एक ही व्यक्ति दोनो पदों पर कार्य करता रहा।

गवर्नर-जनरल की नियुक्ति—अंगरेजों के शासन-काल में गवर्नर-जनरल की नियुक्ति सम्राट्, ब्रिटिश प्रधान मंत्री की सिफारिश से करता था। इस पद के लिए योग्य, अनुभवी, ऊंचे खानदान का, साधारणतया लार्ड उपाधिवाला अंगरेज नियुक्त होता था और उसका कार्य-काल प्रायः पाँच वर्ष होता था। १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतन्त्र हो गया और नए गवर्नर-जनरल की नियुक्ति का प्रश्न सामने आया। अब सम्राट् को इसके लिए ब्रिटिश प्रधान मंत्री की सिफारिश की आवश्यकता न रही। स्वराज्य-प्राप्त प्रदेशों के गवर्नर-जनरलों की नियुक्ति उस प्रदेश के मंत्रिमंडल की सिफारिश पर करने का नियम है। भारत में उस समय भारत और पाकिस्तान सम्बन्धी कई विषयों का निपटारा करना था और आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ उपस्थित थीं। यहाँ के मंत्रिमण्डल की इच्छानुसार भारतीय विधान-सभा ने माउंटबेटन को ही गवर्नर-जनरल बनाए रखना स्वीकार किया। इसके लिए सम्राट् ने नियमानुसार स्वीकृति दे दी। अंगरेज गवर्नर-जनरलों में यह अन्तिम थे। जून सन् १९४८ में लार्ड माउंटबेटन के अवकाश प्राप्त करने पर केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की इच्छानुसार सम्राट् द्वारा श्री राजगोपालाचार्य गवर्नर-जनरल नियुक्त किए गए। यह नियुक्ति नया विधान के अमल में आने तक है।

गवर्नर-जनरल का वेतन—ब्रिटिश सरकार ने ऊंचे सरकारी पदों पर अधिकतर अंगरेजों को ही नियुक्त किया, और उन्हें इतना वार्षिक वेतन और भत्ता आदि दिया कि वे खूब ठाठ-बाट से रह सकें। उदाहरण के तौर पर गवर्नर-जनरल का वार्षिक वेतन निर्धारित किया गया २,५०,८०० रुपये। इसके अतिरिक्त उसे बहुत-सा भत्ता

आदि मिलता था, जिससे वह अपने पद का कार्य सुविधा और मान-मर्यादा पूर्वक कर सके, अर्थात् उसकी शान-शौकत भली भाँति बनी रहे। जितना वेतन यहाँ गवर्नर-जनरल को मिलता था, इतना संयुक्तराज्य अमरीका के राष्ट्रपति अथवा इंग्लैंड के प्रधान मंत्री को भी नहीं मिलता। फिर कहाँ अमरीका और इंग्लैंड जैसे धनी देश और कहाँ निर्धन भारत ! गवर्नर-जनरल के अलाउन्स या भत्ते की रकमें तो और भी चकित करने वाली थीं। व्यय-प्रबन्ध सम्बन्धी भत्ता, स्टाफ और गृहस्थी का भत्ता, दौरे का भत्ता, स्पेशल ट्रेन, बैंड, शरीर-रक्षक ('बाडीगार्ड'), प्राइवेट सेक्रेटरी और स्टाफ आदि का खर्च मिलाकर उसे लगभग अठारह लाख रुपये प्रति वर्ष मिलते थे।

भारत के स्वतंत्र होने पर गवर्नर-जनरल को आरम्भ में तो पहले के समान ही मिलता रहा। पीछे मंत्रिमंडल ने इस प्रश्न पर विचार करके यह तय किया कि वेतन पाँच हजार पाँच सौ रुपये मासिक रखा जाय और उसे इनकम टैक्स से मुक्त रखा जाय। यह वह आंकड़ा है जो नए विधान के अनुसार नियुक्त होनेवाले प्रेसीडेन्ट (राष्ट्रपति) को दिया जानेवाला है।

गवर्नर-जनरल के अधिकार—गवर्नर-जनरल के वर्तमान अधिकारों के जानने के लिए यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि पहले खासकर सन् १९३५ के संघ-विधान से वह कितना शक्तिशाली बना हुआ था। उस विधान से भारतीयों के कुछ अधिकार बढ़ाए गए तो उन अधिकारों के उपयोग पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए गवर्नर-जनरल के भी अधिकार बढ़ा दिए गए थे। यद्यपि उसकी सहायता के लिए एक कौंसिल (प्रबन्धकारिणी सभा) थी, और कहने को बहुत सा काम वह उसके परामर्श से करता था, परन्तु व्यवहार में जब वह चाहता, कौंसिल की सलाह की उपेक्षा कर सकता था। उसे बहुत से विशेषाधिकार प्राप्त थे। उसके कितने ही अधिकार ऐसे थे, जिन्हें वह स्वयं अपने विवेक या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार काम में ला सकता था। उदाहरण के लिए

वह शान्ति या सुरक्षा या देशहित के नाम पर आर्डिनेन्स (फरमान) जारी कर सकता था, जिसका प्रभाव छः माह तक रहता था। वह प्रान्तोय गवर्नरों तथा अन्य अधिकारियों को आदेश दे सकता था। विदेश और राजनैतिक विभाग उसी के अधीन थे। वह फौजदारी के बड़े-से-बड़े अपराधों को फांसी तक के दंड से मुक्त कर सकता था। वह केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल में किसी कानून के मसविदे को पेश करने से रोक सकता था, और उसके पास किए हुए प्रस्ताव को अमल में आने या कानून बनने से रोक सकता था। वह लोगों को राजा, महाराजा, दीवान बहादुर, रायसाहब, खांसाहब, आदि बड़ी-बड़ी पदवियाँ दे सकता था। केन्द्रीय आय के लगभग ८० प्रतिशत के खर्च पर उसका नियंत्रण था। देशो रियासतों के विषय में वह अपनी इच्छानुसार हस्तक्षेप कर सकता था। राजाओं के अधिकारों को रक्षा की जिम्मेदारी उसी के ऊपर थी। यदि कोई राजा महाराजा उसको इच्छा के विरुद्ध व्यवहार करता तो वह सम्राट् के प्रतिनिधि की हैसियत से उसे यथेष्ट दंड दे सकता था। उसे यहाँ तक अधिकार था कि विशेष संकट-कालीन दशाओं में विधान को स्थगित करके वह शासन सम्बन्धी सब अधिकारों को स्वयं ग्रहण कर सकता था।

सन् १९४७ के स्वतंत्रता-विधान के अनुसार उसकी शक्ति बहुत कम कर दी गई है। अब वह केवल वैधानिक शासक मात्र है। उसकी सहायता और परामर्श के लिए एक मंत्रिमंडल रहता है, शासक होने के नाते उसे अपना प्रत्येक कार्य मंत्रिमण्डल के परामर्श के अनुसार ही करना पड़ता है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने निश्चय किया कि लोगों को पदवी देने की प्रथा हटा दी जाय, इससे गवर्नर-जनरल का पदवी देने का अधिकार स्वयं समाप्त हो गया।

भारत सरकार के समस्त कार्य गवर्नर-जनरल के नाम से किए जाते हैं। भारत सरकार की सुविधा के लिए गवर्नर-जनरल को नियम आदि बनाने तथा मन्त्रियों का कार्य निर्धारित करने का अधिकार है। वह देश

की असाधारण परिस्थिति में शान्ति और सुव्यवस्था के लिए 'फरमान' जारी कर सकता है जिसकी अवधि अधिक-से-अधिक ६ माह तक हो सकती है। उसके फरमान संघीय व्यवस्थापक मण्डल के कानून द्वारा ६ महीने से पहले भी रद्द किया जा सकते हैं। फरमान जारी करने का काम गवर्नर-जनरल वैधानिक शासक का हैसियत से ही कर सकता है; अपनी निजी हैसियत से नहीं। अपराधियों को क्षमा करने का अधिकार अब भी पूर्ववत् है। वह एडवोकेट-जनरल को नियुक्त कर सकता है; इस अधिकारों के बारे में आगे लिखा जायगा। इस प्रकार गवर्नर-जनरल की स्थिति पहले की अपेक्षा सर्वथा बदल गई है। जिन अधिकारों का वह स्वयं अपनी इच्छा से उपयोग करता था, उनकी इतिश्री हो गई है। उसके विशेषाधिकार सब समाप्त हो गए हैं। वह केवल वैधानिक शासक है; हाँ वह अपने अनुभव, विचारों और व्यक्तित्व द्वारा मंत्रिमंडल पर परोक्ष रूप से खासा प्रभाव डाल सकता है।

मंत्रिमंडल—गवर्नर-जनरल की सहायता के लिए एक कौंसिल या प्रबन्धकारिणी सभा उस पद के आरम्भ से ही रहती आई है। पहले उसके सब सदस्य अंगरेज होते थे। पीछे उसमें भारतीयों को भी स्थान मिलने लगा। परन्तु भारतीय सदस्यों को सेना, अर्थ और गृह-विभाग नहीं सौंपे जाते थे। सब सदस्य सम्राट् की अनुमति से पांच वर्ष के लिए नियुक्त किए जाते थे। कोई सदस्य इस देश की वास्तविक इच्छाओं और आवश्यकताओं को व्यक्त नहीं करता था, उसका यहाँ के प्रमुख राजनैतिक दलों से सम्पर्क नहीं होता था, वह केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल के प्रति उत्तरदायी नहीं होता था।

अब यह बात नहीं रही। इस समय गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी के जो सदस्य हैं, उनका उत्तरदायित्व राष्ट्र के प्रति है, वे राष्ट्र-नेता श्री नेहरू (प्रधान मंत्री) द्वारा चुने हुए हैं। श्री नेहरू को केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा (भारतीय पार्लिमेंट) का यथेष्ट समर्थन प्राप्त है, और वे उसके प्रति उत्तरदायी हैं। गवर्नर-जनरल की यह कार्यकारिणी 'मंत्रिमंडल' कहलाती

है। इसमें इस समय १४ मंत्री हैं। मंत्रियों की यह संख्या निर्धारित नहीं है, यह आवश्यकतानुसार घट-बढ़ सकती है। भारत सरकार का एक या अधिक विभाग प्रत्येक मंत्री के सुपुर्द रहता है। इन विभागों का कार्यक्षेत्र समय-समय पर बदलता रहता है।

मंत्रियों को नियमानुसार नियुक्त करने का अधिकार गवर्नर-जनरल को है और वे उसी समय तक अपने पद पर रह सकते हैं जब तक गवर्नर-जनरल चाहे; किन्तु व्यवहार में गवर्नर-जनरल मंत्रियों के चुनाव में अपनी इच्छानुसार कुछ न कर सकेगा। उसे केन्द्रीय व्यवस्थापक मण्डल के बहुमत दल के नेता को प्रधान मंत्री नियुक्त करना होगा, और प्रधान मंत्री की सिफारिश पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करनी होगी। वैधानिक शासक होने के नाते गवर्नर-जनरल को मंत्रिमण्डल के परामर्श के अनुसार काम करना होगा। यदि वह किसी समय मंत्रिमण्डल के परामर्श की उपेक्षा करेगा तो मंत्रिमण्डल पद-त्याग करने को तैयार हो जायगा। इस प्रकार मंत्रियों की नियुक्ति अथवा बरखास्तगी में गवर्नर-जनरल को इच्छा-अनिच्छा का कुछ महत्व नहीं रहेगा।

नियुक्ति के लिए मंत्रियों का व्यवस्थापक मण्डल का सदस्य होना आवश्यक नहीं होता, किन्तु कोई व्यक्ति जो व्यवस्थापक मण्डल का सदस्य नहीं है ६ महीने से अधिक मंत्री-पद पर नहीं रह सकता। मंत्रियों को समय-समय पर व्यवस्थापक मण्डल द्वारा निर्धारित वेतन मिलता है परन्तु किसी मंत्री का वेतन उसके कार्य-काल में घटाया नहीं जा सकता। मंत्री, गवर्नर जनरल को सम-समय पर आवश्यक परामर्श देते रहते हैं। किसी न्यायालय को यह पूछने का अधिकार नहीं है कि अमुक प्रश्न पर मंत्रियों ने गवर्नर-जनरल को क्या परामर्श दिया।

एडवोकेट जनरल—भारतीय संघ के लिए एडवोकेट जनरल की नियुक्ति गवर्नर-जनरल द्वारा की जाती है। इस पदाधिकारी में उन योग्यताओं का होना आवश्यक है, जो संघ-न्यायालय के न्यायाधीश के लिए ज़रूरी समझी जाती हैं। इसका काम भारत-सरकार को कानूनी

मामलों में परामर्श देना तथा उन सब कानूनी कामों को करना है जो गवर्नर-जनरल उससे कराना चाहे। इन कामों के लिए एडवोकेट जनरल को न्यायालयों में बोलने का अधिकार है। उसका कार्य-काल और वेतन गवर्नर-जनरल द्वारा निर्धारित होता है।

सेक्रेटरी तथा अन्य पदाधिकारी—मंत्रिमण्डल के प्रत्येक सदस्य को सहायता देने के लिए उपर्युक्त प्रत्येक विभाग में एक सेक्रेटरी, एक डिप्टी सेक्रेटरी, कई एसिस्टेंट सेक्रेटरी तथा कुछ क्लर्क आदि रहते हैं। सब सेक्रेटरियों का एक विशाल कार्यालय (सेक्रेटेरियट या सचिवालय) भारतवर्ष की राजधानी देहली में है। भारत-सरकार के अधीन डायरेक्टर-जनरल और इन्स्पेक्टर-जनरल आदि कुछ और भी अधिकारी होते हैं।

भारत-सरकार के अधिकार—सन् १९३५ के विधान के अनुसार भारत-सरकार को नियमों का पालन करते हुए ब्रिटिश भारत के शासन और सेना-प्रबन्ध के निरीक्षण, तथा नियंत्रण का अधिकार था। वह ब्रिटिश भारत की किसी सम्पत्ति को बेच सकती थी। वह प्रबन्धकारिणी सभा के अधिवेशन का स्थान निश्चय करती थी। कुछ विषयों में प्रान्तीय सरकारों को उसकी आज्ञाएँ माननी होती थीं। वह प्रान्तों की सभा निर्धारित कर सकती थी, और उसे बदल सकती थी। प्रान्तीय सरकारों के निवेदन पर वह ब्रिटिश भारत के किसी हिस्से की शान्ति और सुशासन के लिए नियम बना सकती थी। वह हाईकोर्टों का अधिकार-क्षेत्र बदल सकती थी, और दो साल तक के लिए जज नियत कर सकती थी। वह एशिया के राज्यों से सन्धि या समझौता कर सकती थी, विदेशी राज्यों में वह अपना सत्ता और अधिकारों का उपयोग कर सकती थी। उसे अपने अधीन भू-भाग किसी राज्य को देने और उसके अधीन भू-भाग लेने का अधिकार था। सारांश यह है कि सम्राट् की प्रतिनिधि होने के कारण उसे उसका ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्राप्त

थे, जो भारतीय प्रचलित व्यवस्था के विरुद्ध न हो।

भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर भारत-सरकार को उपर्युक्त सब अधिकार हैं। अन्तर यह हो गया है कि अब वह सम्राट् की प्रतिनिधि न होकर भारतीय जनता की प्रतिनिधि है।

भारत-सरकार का एक काम उन छोटे-छोटे प्रान्तों का शासन-प्रबन्ध करना भी है, जिन्हें चीफ-कमिश्नरों के प्रान्त कहा जाता है। इस विषय में विशेष आगे 'प्रान्तीय सरकार' शीर्षक अध्याय में लिखा जायगा।

भारत-सरकार का उत्तरदायित्व—भारत के स्वतन्त्र होने तक भारत-सरकार अपने कार्यों के लिए ब्रिटिश पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदायी थी। पार्लिमेंट उस पर भारत-मंत्री के द्वारा नियंत्रण रखती थी। भारत-मंत्री समय-समय पर भारत-सरकार को आदेश देता रहता था, और पार्लिमेंट के सदस्य भारत-मंत्री से भारतीय शासन सम्बन्धी किसी विषय में जवाब मांग सकते थे। भारत-सरकार पर, वैधानिक दृष्टि से भारतीय व्यवस्थापक मंडल का कोई नियंत्रण नहीं था। वह चाहे जितना असंतुष्ट होता, गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौंसिल के सदस्य अपने पदों पर ही रहते, और यहाँ के खजाने से अपना पूरा वेतन तथा भत्ता आदि लेने के अधिकारी होते थे। उन्हें उनके पद से हटाने का अधिकार सम्राट् और ब्रिटिश पार्लिमेंट को था, इसलिए यह स्वभाविक ही था कि वे भारतीय जनता की उपेक्षा कर ब्रिटिश अधिकारियों के विश्वासपात्र बने रहने की कोशिश करते।

भारतीय स्वतन्त्रता-विधान, सन् १९४७, से स्थिति बदल गई है। अब भारतीय शासन में ब्रिटिश पार्लिमेंट का कोई स्थान नहीं रहा है। भारतमंत्री और उसके सलाहकारों का पद तोड़ ही दिया गया है। केवल सम्राट् ही भारतीय शासन-विधान का अंग रहा है, पर वह भारत के सम्बन्ध में यहाँ के उत्तरदायी मंत्रियों के परामर्श से ही अपने अधिकारों का प्रयोग करता है, व्यवहार में उसके भी अधिकार नहीं के बराबर हैं।

इस प्रकार अब भारत-सरकार का उत्तरदायित्व भारतीय व्यवस्थापक मंडल (भारतीय पार्लिमेंट) के प्रति हो है।

भारत-सरकार की गृह-नीति—भारत के स्वतन्त्र होने पर यहाँ सरकार की शासन-नीति क्या है, इसका परिचय विधान-सभा के सभापति डा० राजेन्द्रप्रसाद और भारत के प्रधान मंत्री श्री नेहरू जी के आगे दिए हुए कथन से मिल जायगा। सत्ता-हस्तान्तरण के अवसर पर डा० राजेन्द्रप्रसाद ने स्वतन्त्र भारत का शासन-नीति पर प्रकाश डालते हुए अल्पसंख्यकों को धर्म, संस्कृति और भाषा की स्वतन्त्रता का आश्वासन दिया था और कहा था कि “हमारा यह अथक कोशिश होगी कि देश से गरबी और दीनता, भूख और बीमारी दूर हो जाय। मनुष्य-मनुष्य के बीच में भेद-भाव उठ जाय। कोई मनुष्य दूसरे का शोषण न करे और सब के लिए सुन्दर समुचित जीवन प्रदान करने के साधन जुटा दिए जायें।”

पं० जवाहरलाल नेहरू के विचार इस सम्बन्ध में निम्नलिखित थे, “हमारा ध्येय है भारत के जनसाधारण, किसान और मजदूर को स्वाधिनता और सहयोग देना; अज्ञान, बीमारी और गरबी के विरुद्ध लड़ना और उनको मिटाना; समृद्ध, सम्पन्न और प्रगतिशील जनतन्त्र का निर्माण करना; ऐसी राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था बनाना, जिससे देश के प्रत्येक नर-नारा को समुचित अधिकार और जीवन के पूर्ण विकास का अवसर मिल सके।”

विदेश-नीति—पराधीन होने की दशा में भारत को कोई स्वतंत्र विदेश-नीति नहीं थी, इसे इंग्लैंड की ही विदेश-नीति को अपनी भी नीति मानने को बाध्य होना पड़ता था। उदाहरण के तौर पर पिछले महायुद्ध के अवसर पर भारत न चाहते हुए भी उसमें घसटा गया और यह जर्मनी, जापान आदि का शत्रु घोषित किया गया। अब उस स्थिति का अन्त हो गया है। भारत के स्वतंत्र हो जाने पर यहाँ सरकार अपनी स्वतंत्र नीति रखने लगी है। इसके सम्बन्ध में डा० राजेन्द्रप्रसाद के

विचार इस प्रकार थे, “दुनियाँ के सभी देशों को हम यह आश्वासन दिलाना चाहते हैं कि हम अपनी परम्परा के अनुसार सबके साथ मित्रता का वर्ताव रखने के अभिलाषी हैं, किसी से हमारा द्वेष नहीं। हमें किसी के साथ लड़ाई-झगडा नहीं करना है, और हम उम्मीद करते हैं कि कोई हमारे साथ भी ऐसा न करेगा। हमारा एक ही आशा और अभिलाषा है—हम सब के लिए स्वतंत्रता और मानव जाति में शान्ति और सुख स्थापित करने में सहायक हो सके।”

इस नीति के अनुसार भारत सरकार ने अपने पर-राष्ट्र सम्बन्ध का संचालन आरम्भ किया। उसके ३ मुख्य क्षेत्र हैं:— (१) पाकिस्तान, (२) ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल (३) संसार के अन्य देश। पाकिस्तान से भारत सरकार का काफ़ी मतभेद रहा। उसने पहले आवादी के अदलबदल तथा ब्रेटवारे सम्बन्धी अन्य बातों और व्यापार-निति में भारत-सरकार को बहुत परेशान किया। उसने भारत के रियासती मामले में भी अनुचित हस्तक्षेप किया। भारत-सरकार ने क्रमशः सभी प्रश्नों को धैर्य पूर्वक हल कर लिया है। इस समय खासकर कश्मीर का मामला सामने है, जो संयुक्त-राष्ट्र-संघ में उपस्थित है।

राष्ट्रमण्डल के सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है। भारत स्वतन्त्र प्रजातन्त्र रहते हुए भी उसका सदस्य हुआ है। अभी राष्ट्रमण्डल के कई भागों में, खासकर दक्षिण-अफ्रीका में, भारतीयों के साथ अनुचित व्यवहार हो रहा है। इस सम्बन्ध में भारत-सरकार सुधार के लिए आवश्यक प्रयत्न कर रही है।

भारत-सरकार की नीति अन्य देशों के साथ तटस्थता की है पर साथ ही जैसा ऊपर बताया गया है उसको यह भी अभिलाषा है कि वह सब के लिए स्वतन्त्रता तथा मानव-जाति में शान्ति और सुख स्थापित करने में सहायक हो। इसलिए उसने संसार के विविध देशों में अपने राजदूत भेजे हैं। और उन देशों के राजदूत भारतवर्ष में आगए हैं। अब तक भारत-सरकार अपने को अन्तर्राष्ट्रीय जगत की गुटबन्धिया से अलग

रखने में सफल रही है। न वह इंगलैंड-अमरीका से किसी बात में बचनबद्ध है और न रूस से। आशा है, आगे भी वह ऐसी नीति रख सकेगी, जिससे एशिया, अफ्रीका तथा अन्य देशों से साम्राज्यवाद का अन्त हो, और संसार के सब भागों की एकता और समानता के आधार पर विश्वसंघ का निर्माण हो।

—

आठवाँ परिच्छेद भारतीय पार्लिमेंट

भारतीय पार्लिमेंट का उद्देश्य—पिछले परिच्छेद में यह बताया गया है कि भारत सरकार क्या कार्य करती है, और उसकी शासन-नीति क्या है। भारत सरकार की शासन-नीति निर्धारित करने का कार्य भारतीय पार्लिमेंट का है। वह देश के लिए आवश्यक कानून बनाता है, और इस बात को जाँच करती रहती है कि भारत सरकार कहीं तक उम नांति के अनुसार व्यवहार करती है। वह सरकारी आय-व्यय को नियंत्रित करते हुए भारत-सरकार पर आवश्यक अंकुश रखती है, जिससे उसका कोई पदाधिकारी अपने अधिकारों और सत्ता का दुरुपयोग न करे। इस परिच्छेद में उसके संगठन और कार्यों का विचार किया जायगा।

पार्लिमेंट का संगठन—भारतीय स्वतंत्रता-विधान, सन् १९४७, में यह व्यवस्था की गई थी कि नया विधान अमल में आने तक भारत की विधान सभा को ही, भारत की संघ-पार्लिमेंट के अधिकार होंगे। पाँचवें परिच्छेद में यह बताया जा चुका है कि मई १९४६ में भारतीय विधान सभा के निर्माण की जो योजना बनाई गई थी, उसमें ब्रिटिश भारत के २६६ और देशी राज्यों के ६३, कुल मिला कर ३२९ सदस्य रखे गए थे।

सदस्यों का चुनाव—इन सदस्यों के चुनाव की योजना यह थी:—

१—मोटे तौर पर प्रत्येक प्रान्त का, उसकी जनसंख्या के आधार पर दस लाख पीछे १ प्रतिनिधि रहे ।

२—सब प्रतिनिधियों के स्थान प्रान्तों में उनकी मुख्य जातियों की जनसंख्या के अनुपात से बाँट दिए जायें ।

३—प्रत्येक प्रान्त में प्रत्येक जाति के निर्धारित प्रतिनिधि असेम्बली में उस जाति के सदस्यों द्वारा निर्वाचित हों ।

४—इस कार्य के लिए भारत को केवल तीन मुख्य जातियों स्वीकार का जायें:—साधारण, मुस्लिम तथा सिक्ख । असेम्बलियों के इन जातियों के सदस्य सानुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर अपने-अपने प्रतिनिधि चुने ।

५—ब्रिटिश भारत के विविध प्रान्तों के कुल प्रतिनिधियों की संख्या २६६ हो ।

६—रियासतों को सानुपातिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो तथा ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों की संख्या के आधार पर उनके ६३ से अधिक प्रतिनिधि न हों ।

इस योजना के अनुसार विधान सभा के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव हुआ । प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं ने इस चुनाव में निर्वाचन-क्षेत्र का काम किया । इस प्रकार चुनाव परोक्ष रहा । चुनाव में पृथक् निर्वाचन का ही सिद्धान्त माना गया । अपने-अपने निर्वाचन-क्षेत्र से जितने प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित थी, उतने मत प्रत्येक सदस्य को देने का अधिकार था । कांग्रेस की इच्छा के अनुसार विधान सभा में बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ, विधानवेत्ता, इतिहासज्ञाता, दार्शनिक, समाजशास्त्री आदि सभी प्रकार के योग्य व्यक्ति लिए गए । ब्रिटिश भारत के प्रान्तों में, विविध दलों की दृष्टि से, प्रतिनिधियों की संख्या इस प्रकार रही—

प्रान्त	कांग्रेस	मुस्लिम लीग	स्वतंत्र माधारण	स्वतंत्र मुसलमान	सिक्ख	योग
संयुक्त प्रान्त	४५	७	३	—	—	५५
मध्यप्रान्त	१६	१	—	—	—	१७
मदरास	४५	४	—	—	—	४९
बम्बई	१९	२	—	—	—	२१
बिहार	३१	५	—	—	—	३६
उड़ीसा	८	—	१	—	—	९
दिल्ली	१	—	—	—	—	१
अजमेर-मेरवाड़ा	१	—	—	—	—	१
कुर्ग	१	—	—	—	—	१
पंजाब	६	१५	२	१	४	२८
सिन्ध	१	३	—	—	—	४
सीमाप्रान्त	२	१	—	—	—	३
बलोचिस्तान	—	—	—	१	—	१
बंगाल	२५	३२	२	१	—	६०
आसाम	७	३	—	—	—	१०
योग	२०८	७३	८	३	४	२९६

इनके अतिरिक्त देशी राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या ६३ ठहराई गई। ये प्रतिनिधि राजाओं और कार्यकर्ताओं से विचार-विनिमय करके लिए गए। इस प्रकार तत्कालीन योजना के अनुसार भारतीय विधान सभा के कुल सदस्यों की संख्या ३८६ थी।

पछे पाकिस्तान राज्य का निर्माण होने से उसके सदस्य उस क्षेत्र से अलग हो गए। इनका हिसाब इस प्रकार था—

प्रान्त	मुस्लिम	साधारण	सिक्ख	योग
पूर्वी बंगाल				
और मिलहट	३१	१३	—	४४
पश्चिमा पंजाब	१२	३	२	१७
सिन्ध	३	१	—	४
सीमाप्रान्त	३	—	—	३
बलोचिस्तान	१	—	—	१
योग	५०	१७	२	६९

कुल ३८६ में से इन ६९ सदस्यों के अलग हो जाने पर शेष ३२० सदस्य भारत का विधान बनाने के अधिकारों रहे।

सन् १९४७ के स्वतन्त्रता विधान से यह निश्चय किया गया कि जब तक कोई दूसरी व्यवस्था न को जाय भारत को विधान सभा को ही यहाँ केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा या पार्लिमेंट के काम करने का अधिकार दिया जाय। पार्लिमेंट को हैसियत से काम करने के समय उसका सभापति अलग होता है।

[विधान-सभा के सभापति डा० राजेन्द्रप्रसाद, और भारतीय पार्लिमेंट के सभापति श्री मावलंकार जी हैं।]

पार्लिमेंट के नियम और कार्यपद्धति—पार्लिमेंट के अधिवेशन में विधान-सभा के वे सदस्य भाग नहीं लेते, जो प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों के सदस्य हैं। प्रतिवर्ष पार्लिमेंट

का एक अधिवेशन होना आवश्यक है और दो अधिवेशनों के बीच में बारह महीने से अधिक का समय नहीं होना चाहिए। इस नियम के अन्तर्गत सभापति को निर्धारित स्थान और समय पर पार्लिमेंट के अधिवेशन कराने और उनके विसर्जित करने का अधिकार है। गवर्नर-जनरल को पार्लिमेंट के सामने भाषण देने तथा अपने सन्देश भेजने का अधिकार है। प्रत्येक मन्त्री और एडवोकेट जनरल पार्लिमेंट में भाषण दे सकता है और उसके कार्य में भाग ले सकता है, किन्तु एडवोकेट जनरल को मत देने का अधिकार नहीं है। पार्लिमेंट को सदस्यों के कुछ स्थान खाली होने पर भी काम करने का अधिकार है। कार्य करने के लिए कुल सदस्यों के छठे हिस्से की उपस्थिति आवश्यक है। कोरम पूरा न होने पर भी अधिवेशन स्थगित किए जाने की व्यवस्था है। सभापति को वेतन और सदस्यों को वेतन तथा भत्ता मिलता है, जो पार्लिमेंट द्वारा निर्धारित होता है।

पार्लिमेंट के अधिवेशन साधारणतः दिन के ग्यारह से पाँच बजे तक होते हैं। आरम्भ के, पहिले घंटे में प्रश्नों के उत्तर दिए जाते हैं। सभाओं के अन्य कार्य के दो भाग होते हैं, सरकारी और गैर-सरकारी। गैर-सरकारी काम के लिए गवर्नर-जनरल द्वारा कुछ दिन निर्धारित कर दिए जाते हैं, अन्य दिनों में सरकारो काम होता है। सेक्रेटरी विचारणीय विषयों की सूची तैयार करता, उसी के अनुसार कार्य होता है, और सभापति की आज्ञा बिना, किसी नवीन विषय पर विचार नहीं किया जाता।

सदस्यों के बैठने का क्रम सभापति निश्चय करता है। प्रत्येक सदस्य सभापति को सम्बोधन करके बोलता है, और उसी के द्वारा प्रश्न कर सकता है। जहाँ तक कोई सदस्य सभाओं के नियमों की अवहेलना न करे, उसे भाषण देने की स्वतन्त्रता है, और भाषण या मत देने के कारण, किसी सदस्य पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। प्रत्येक विषय का निर्णय सभापति को छोड़ कर, सभा के सदस्यों के बहुमत से

होता है; दोनों ओर समान मत होने से सभापति के मत से निपटारा हो जाता है। सभा में शान्ति रखना सभापति का कर्तव्य है। इसके लिए आवश्यकता होने पर वह किसी सदस्य का एक दिन या अधिक समय तक के लिए सभा में आना बन्द कर सकता है, अथवा अधिवेशन भी स्थगित कर सकता है।

पार्लिमेंट के कार्य — पार्लिमेंट के उद्देश्य इस परिच्छेद के आरम्भ में बताए जा चुके हैं। उन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए पार्लिमेंट निम्नलिखित कार्य करती है :—

- (१) प्रश्न पूछना।
- (२) प्रस्ताव करना।
- (३) कानून बनाना।
- (४) सरकारी आय-व्यय निश्चित करना।

इन कार्यों के सम्बन्ध में आवश्यक बातें आगे बताई जाती हैं।

प्रश्न—सदस्य सार्वजनिक महत्व के प्रश्न पूछकर शासन सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त वे सरकार का ध्यान शासन की कमजोरियों या जनता की शिकायतों की ओर आकर्षित करते हैं। जिस विषय पर कोई प्रश्न पूछा जाता है, उससे सम्बन्ध रखनेवाला विभाग अपने कार्यों में अधिक सावधान हो जाता है। जब कोई सदस्य किसी सरकारी कर्मचारी के अनुचित कार्य के सम्बन्ध में प्रश्न करता है तो उस कर्मचारी को अपनी सफाई देनी होती है अथवा नौकरी से हाथ धोना पड़ता है।

जब एक प्रश्न का उत्तर मिल चुके तो ऐसा पूरक प्रश्न पूछा जा सकता है, जिससे मूल प्रश्न के विषय के सम्बन्ध में अधिक प्रकाश पड़े। सभापति को अधिकार है कि कुछ दशाश्रु में वह किसी प्रश्न, उसके अंश या पूरक प्रश्न के पूछे जाने की अनुमति न दे। किसी सरकारी विभाग के सदस्य से वही प्रश्न किए जा सकते हैं, जिनसे सरकारी तौर पर उसका सम्बन्ध हो।

प्रस्ताव—प्रस्ताव तीन प्रकार के होते हैं :—(१) साधारण नीति के प्रस्ताव पास करके, सरकार को निर्धारित कार्य करने का आदेश दिया जाता है। (२) सार्वजनिक महत्व के विषय या विशेष दुर्घटना आदि के सम्बन्ध में बहस के लिए कार्यवाई स्थगित करने का अर्थात् 'काम-रोको' प्रस्ताव किया जाता है। यदि सभापति इस प्रस्ताव को लेना स्वीकार करले तो यह उस दिन चार बजे अन्य कार्यवाही बन्द करके ले लिया जाता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि प्रस्ताव पर वाद-विवाद होते हुए ही, सभा की बैठक का समय समाप्त हो जाता है, और प्रस्ताव पर मत लिए जाने का अवसर नहीं आता। इस प्रकार निर्णय न होने की दशा में प्रस्ताव को 'चर्चा में हो गया' ('टाक्ड आउट') कहते हैं। (३) सरकारी नीति से असन्तोष प्रकट करने के लिए मन्त्रिमण्डल के प्रति अविश्वास या निन्दा का प्रस्ताव किया जाता है। सभापति किसी सदस्य को इस प्रकार का प्रस्ताव करने की अनुमति उस समय देता है, जब सदस्यों की एक निर्धारित संख्या खड़ी होकर, अनुमति देने के पक्ष में होना सूचित कर दे। इस प्रस्ताव पर, सभापति द्वारा निश्चित किए हुए दिन विचार होता है। तीसरे प्रकार के प्रस्ताव के पास हो जाने पर, मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देना होता है। सभापति के प्रति भी अविश्वास का प्रस्ताव रखा जा सकता है।

कानून-निर्माण ; पार्लिमेंट की सर्वोच्च सत्ता—पार्लिमेंट द्वारा कानून उसी तरह बनते हैं, जिस तरह प्रान्तीय कानून उन प्रान्तों में बनते हैं, जिनके व्यवस्थापक मंडल में एक ही सभा होती है। यह बात आगे बारहवें परिच्छेद में खुलासा लिखी गई है। १५ अगस्त १९४७ से पहले भारतीय व्यवस्थापक मंडल के अधिकार बहुत सीमित थे। वह ब्रिटिश पार्लिमेंट द्वारा पास किए गए भारतवर्ष सम्बन्धी कानूनों से असंगत कानून नहीं बना सकती थी। उसके द्वारा पास किए हुए प्रस्तावों को गवर्नर-जनरल सम्राट् की अनुमति के लिए रोक सकता था और सम्राट् को अनुमति देने अथवा न देने या उन्हें रद्द करने

तथा स्थगित करने का पूर्ण अधिकार था। ब्रिटिश पार्लिमेंट द्वारा पास किए हुए अनेक कानून भारत पर भी लागू होते थे। परन्तु अब भारतीय स्वतन्त्रता विधान के कारण ये सब प्रतिबन्ध हट गए हैं। अब भारतीय पार्लिमेंट ब्रिटिश पार्लिमेंट द्वारा पास किए हुए कानूनों तथा तत्सम्बन्धी नियमों को रद्द कर सकती तथा उनसे असंगत कानून बना सकती है। भारतीय पार्लिमेंट के बनाए हुए कानून पर सम्राट् की अनुमति अब भी ली जाती है परन्तु यह कार्य रीति-पालन जैसा है। सम्राट् को अनुमति देना ही होता है। वह भारतीय पार्लिमेंट के स्विकृत प्रस्ताव को रद्द, अस्वाकार या स्थगित नहीं कर सकता। अब ब्रिटिश पार्लिमेंट द्वारा पास किया हुआ कोई कानून या सम्राट् की कोई आज्ञा यहाँ उस समय तक लागू नश हो सकती, जब तक कि भारतीय पार्लिमेंट स्वयं अपनी इच्छानुसार उसे स्वीकार न करले।

भारतीय पार्लिमेंट भारत सम्बन्धी सब प्रकार का कानून बना सकती है तथा रद्द कर सकती है। कोई बाहरी सत्ता द्वारा बनाया हुआ नियम न तो उसके नियमों से श्रेष्ठ समझा जायगा, और न उसके बनाए नियम को रद्द कर सकेगा। भारतीय पार्लिमेंट एक प्रभु-सत्ता या सर्वोच्च सत्ता सम्पन्न व्यवस्थापक संस्था है।

कानून-निर्माण का क्षेत्र—जिन विषयों के कानून बनते हैं उनके मुख्य तीन भाग हैं—केन्द्रीय, प्रान्तीय और सम्मिलित। केन्द्रीय विषयों के कानून पार्लिमेंट, और प्रान्तीय विषयों के कानून प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल बना सकता है। सम्मिलित विषयों के सम्बन्ध में कानून प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल बना सकता है, परन्तु केवल उसी दशा में जबकि पार्लिमेंट न बनाए। अवशिष्ट विषयों के कानून बनाने का अधिकार गवर्नर-जनरल पार्लिमेंट या प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल को दे सकता है। यदि पार्लिमेंट और प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल के बनाए किसी विषय के कानूनों में परस्पर विरोध हो तो पार्लिमेंट का बनाया हुआ कानून ठीक समझा जाता है। केन्द्रीय विषय संक्षेप में निम्नलिखित हैं:—

(१) देश-रक्षा, भारतीय सेना तथा हवाईजहाज, (२) विदेश-नीति, तथा विदेशियों से सम्बन्ध, (३) देशी राज्यों से सम्बन्ध, (४) राजनैतिक ग्वर्च, (५) बड़े बन्दरगाह, (६) डाक, तार, टेलीफोन और बेतार के तार, (७) आयात-निर्यात-कर, नमक और अग्निल भारतवर्षीय आया के अन्य माधन, (८) सिक्का, नोट आदि (९) भारत का सरकारी ऋण (१०) पोस्ट आफिस सेविंग बैंक, (११) भारतीय हिसाब-परोक्षक विभाग (१२) दीवानी और फौजदारी कानून तथा उनके कार्य-विधान, (१३) व्यापार, बैंक और बीमा कंपनियों का नियंत्रण; (१४) तिजारती कंपनियों और समितियों, (१५) अफोम आदि पदार्थों की पैदावार, खपत, और निर्यात का नियंत्रण, (१६) काफी-राइट, (किताब आदि छापने का पूर्ण अधिकार), (१७) भारत में आना, अथवा यहाँ से विदेश जाना, (१८) केन्द्रीय पुलिस का संगठन, (१९) हथियार और युद्ध-सामग्री का नियंत्रण, (२०) मनुष्य-गणना, और आंकड़े या 'स्टैटिस्टिक्स' (२१) अखिल भारतवर्षीय नौकरियों, (२२) प्रान्तों की सीमा, और (२३) मजदूरों सम्बन्धी नियन्त्रण ।

सम्मिलित विषयों में मुख्य ये हैं—फौजदारी कानून और कार्यपद्धति, किसी प्रान्त में उसके बाहर के आदमियों से वसूल होनेवाला कर या मालगुजारी, विवाह और सम्बन्ध-विच्छेद (तलाक), वसाहत, दस्तावेजों की रजिस्टरी, ट्रस्ट, ठेका, पत्र-पत्रिकाएँ और छापेखाने, मोटर, कारखाने, मजदूरों का कुशल-क्षेम, मजदूर-संघ, धिजली, छूत की बीमारियों को रोकना, बेकारी का बीमा आदि ।

गवर्नर-जनरल के कानून निर्माण सम्बन्धी अधिकार—

गवर्नर-जनरल पार्लिमेंट द्वारा स्वीकृत किसी प्रस्ताव को स्वीकार कर सकता है अथवा उसे पार्लिमेंट के पास पुनर्विचारार्थ भेज सकता है । वह अपने सन्देश में आवश्यक संशोधन का परामर्श दे सकता है । असाधारण परिस्थितियों में देश की शान्ति और व्यवस्था की रक्षा के लिए गवर्नर-जनरल को आर्डिनेन्स (फरमान) जारी करने का

अधिकार है। इसकी अवधि ६ माह तक हो सकती है। इसे इस अवधि के पहले भा पार्लिमेंट के कानून द्वारा रद्द किया जा सकता है। इन अधिकारों का उपयोग गवर्नर-जनरल वैधानिक शासक की हैसियत से ही कर सकता है, अपनी निजी हैसियत से नहीं।

भारतीय आय-व्यय का विचार—भारत - सरकार के अनुमानित आय-व्यय का व्यौरा (बजट) प्रतिवर्ष पार्लिमेंट के सामने रखा जाता है (१) वे मदे जिनका खर्च राज्य की आमदनी से करना होगा और (२) वे मदे जिनका खर्च पार्लिमेंट की अनुमति पर निर्भर होगा। पहला मदा में से मुख्य ये हैं:—

(१) गवर्नर-जनरल का वेतन, भत्ता तथा अन्य खर्च।

(२) सांघजनिक ऋण का सूद

(३) मन्त्रियों, कमिश्नरों और एडवोकेट जनरल के वेतन तथा भत्ते का खर्च।

(४) संध-न्यायालय के न्यायाधोशों के वेतन, भत्ते तथा पेन्शनो का खर्च और हाईकोर्ट के न्यायाधोशों को पेन्शनो का खर्च।

(५) किसी न्यायालय के निर्णय के अनुसार चुकाई जानेवाली रकमें।

(६) कोई अन्य खर्च जो शासन-विधान अथवा पार्लिमेंट के किसी कानून के द्वारा इस प्रकार का घोषित किया जाय।

व्यय को उपर्युक्त छः मदों पर पार्लिमेंट को मत देने का अधिकार नहीं है। इन छः मदों को छोड़कर शेष सारा व्यय उसके निर्णय पर निर्भर है। उसे अधिकार है कि वह मन्त्रियों की व्यय सम्बन्धी किसी माँग को स्वीकार करे या न करे, अथवा घटाकर स्वीकार करे। गवर्नर-जनरल का सिफारिश के बिना व्यय की कोई माँग पार्लिमेंट में पेश नहीं की जा सकती।

पार्लिमेंट द्वारा स्वीकृत खर्च को तथा उस खर्च को जिसे राज्य की आय से करना होगा गवर्नर-जनरल प्रमाणित करेगा और उसके द्वारा

प्रमाणित स्व वृत्ति सर्वमान्य समझी जायगी। खर्च के वार्षिक व्योरे के अतिरिक्त पूरक व्योरे की भी व्यवस्था की जाती है। गवर्नर-जनरल का सिकारिश के बिना पार्लिमेंट में कोई ऐसा प्रस्ताव पेश नहीं किया जा सकता, जो नया टेक्स लगाता हो, पुराने टेक्स को बढ़ाता हो, अथवा राज्य की आमदनी से किए जाने वाले अनिवार्य खर्च को बढ़ाता हो।

केन्द्राय व्रजट का अधिवेशन उमो तरह होता है, जिस तरह प्रान्ताय व्रजट का ; इसके लिए आगे बारहवाँ परिच्छेद देखिए।

पार्लिमेंट और न्यायालयों का सम्बन्ध—पार्लिमेंट एक प्रभुतायुक्त कानून बनानेवाला सस्था है, तथापि उसकी एक व्यवहारिक सीमा है। पार्लिमेंट में संघ-न्यायालय तथा हाईकोर्टों के किसी न्यायाधीश के ऐसे आचरण पर किसी प्रकार का बादबिवाद नहीं हो सकता, जो उसने अपने कर्तव्य-पालन के सम्बन्ध में किए हों। हाईकोर्टों के अन्तर्गत संघ में सम्मिलित रियासतों के वे न्यायालय भी सम्भले जाते हैं जो कानून के अनुसार हाईकोर्ट माने जा सकते हैं।

किसी न्यायालय को यह कहने का अधिकार नहीं है कि पार्लिमेंट की अमुक कार्यवाई नियमानुसार नहीं हुई और न उसे उस अधिकारी के उन कामों के सम्बन्ध में विचार करने का अधिकार है जो उसने पार्लिमेंट के कार्य-संचालन, कार्य-पद्धति तथा उसकी शान्ति और व्यवस्था की रक्षा के लिए किए हो।



नवाँ परिच्छेद

केन्द्र का प्रान्तों और रियासतों से सम्बन्ध

भारत सरकार और भारतीय पार्लिमेंट के सम्बन्ध में लिखा जा चुका है। प्रान्तों और रियासतों के विषय में आगे लिखा जायगा। यहाँ यह विचार करना है कि केन्द्रीय सरकार और केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल का प्रान्तों और रियासतों से क्या सम्बन्ध है।

केन्द्र और प्रान्तों के सम्बन्ध का विकास—पहले कह जा चुका है कि आरम्भ में बहुत समय तक ब्रिटिश सरकार की इच्छा यह रही कि भारत में दृढ़ केन्द्रीय शासन की स्थापना हो, केन्द्रीय सरकार की शक्ति अधिक-से-अधिक बढ़ाई जाय। इसलिए शासन तथा कानून निर्माण में प्रान्तीय सरकारों को स्वतन्त्रता नहीं दी गई। सरकारी आय व्यय पर एकमात्र केन्द्रीय सरकार का अधिकार रहा। पीछे क्रमशः यह अनुभव हुआ कि केन्द्र से भारतवर्ष जैसे विशाल देश का शासन अच्छी तरह नहीं चलाया जा सकता, केन्द्रीय सरकार को स्थानीय (प्रान्तीय) विषयों की यथेष्ट जानकारी नहीं होती, और वह जनता की स्थानीय आवश्यकताओं को अच्छी तरह पूर्ति नहीं कर सकती। यह व्यवस्था जनता के लिए हानिकारक होने के अतिरिक्त प्रान्तीय सरकारों का असन्तोष बढ़ानेवाला था।

सन् १८७० से प्रान्तीय सरकारों के अधिकार बढ़ाने की बात शुरू हुई। पहले गति बहुत मन्द ही रही। प्रान्तीय सरकारों को कुछ साधारण अधिकार देकर केन्द्रीय सरकार उन्हें अपनी इच्छानुसार चलाती रही। इस प्रकार १६१८ तक प्रान्तीय सरकारों को बहुत कम सत्ता सौंपी गई। प्रथम योरेपीय महायुद्ध के समय जनता को राजनैतिक अधिकार देना आवश्यक हो गया। सन् १६१६ के विधान से प्रान्तों में उत्तरदायी शासन का सूत्रपात हुआ और सन् १६३५ के विधान का तो उद्देश्य ही प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना और संघ-शासन की योजना घोषित किया गया था। इस विधान का केन्द्र सम्बन्धी भाग अमल में नहीं आया। तथापि प्रान्तीय सरकारें अब से केन्द्रीय सरकार के सर्वथा अधीन नहीं रहीं। शासन का स्वरूप संघात्मक होने लगा। सन् १६४७ से केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों में समानता का भाव बढ़ गया।

केन्द्रीय सरकार और रियासतों का सम्बन्ध -

ज्यों-ज्यों भारत में अंगरेजी राज्य शक्तिशाली होता गया, भारत-सरकार देशी रियासतों पर अपना प्रभुत्व मानती गई। रियासतों की सार्वभौम

या सर्वोच्च सत्ता ब्रिटिश सम्राट् के हाथों में दे दी गई। सम्राट् के इस अधिकार को स्पष्ट नहीं किया गया। सम्राट् ने अपना यह अधिकार वायसराय को दे दिया। वायसराय को जब और जित सीमा तक आवश्यकता प्रतीत होती, वह रियासतों में दखल देता रहा। वह जित राजा को अयोग्य समझता, उसे गद्दी से उतार देता और रियासत से बाहर निकाल देता, तथा उसके किसी सम्बन्धी को गद्दी पर बैठा देता। बहुत से राजा यह समझते रहे कि हमारी सम्राट् से सन्धियाँ हैं, और वायसराय से हमारा सम्बन्ध बराबरी का है। परन्तु भारत सरकार या वायसराय इन संधियों को उतना ही मानता था, जितना वह उचित समझता। पहले की तो बात ही क्या, सन् १९२६ में बरार के सम्बन्ध में निजाम हैदराबाद से पत्र-व्यवहार के समय वायसराय लार्ड रोडिग ने जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, उसका आशय यह था कि 'देशी नरेश अपने राज्यों के भीतरी प्रबन्ध में भी स्वतन्त्र नहीं हैं। भारतवर्ष में, शान्ति और सुव्यवस्था रखना ब्रिटिश सरकार का, किसी संधि-पत्र से नहीं, स्वयं-सिद्ध अधिकार है। ब्रिटिश सरकार को जब जैसा ज़ेचे, वह किसी देशी राज्य के भीतरी प्रबन्ध में हस्तक्षेप कर सकता है।' इस प्रकार भारत सरकार और देशी राज्यों का सम्बन्ध अब से तेईस वर्ष पहले तक शासक और शासित का, अथवा संरक्षक और संरक्षित का सा था।

क्रमशः इस स्थिति में परिवर्तन हुआ। सन् १९३० से भारतवर्ष के लिए नये शासन विधान का तैयारी होने लगी। ब्रिटिश सरकार ने भारत की राष्ट्रीय शक्ति को कमजोर करने के लिए राजाओं का उपयोग करने का विचार किया। राजाओं ने कुछ भिन्नकते हुए हो सहा, संघ-योजना में शामिल होने का निश्चय प्रकट किया। संघ विधान अमल में नहीं आया तथापि शासनपद्धति ने क्रमशः संघात्मक स्वरूप ग्रहण किया। सन् १९४७ में भारत स्वतंत्र होगया। देशी रियासतें क्रमशः भारतीय संघ में सम्मिलित हो गईं।

इस प्रकार रियासतो पर केन्द्रीय सरकारकी पहले-जैसी हुकूमत न रही, वे भी भारतीय संघ की अधिकार-सम्पन्न इकाइयाँ होगईं। ऐसी स्थिति में केन्द्रीय सत्ता बहुत सामित रूप में ही रह गई।

काय-विभाजन—पहले कहा जा चुका है कि भारत का विधान संघ-विधान है। संघ राज्यों की तरह यहाँ संघ और उसके अंगों में कार्य केन्द्राय, प्रान्तीय और सम्मिलित भागों में बँटा हुआ है। प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडला की अनुमति से, अर्थात् उनके अनुमति-सूचक प्रस्ताव पास करने पर पार्लिमेंट सम्बद्ध प्रान्तों के लिए प्रान्तीय विषयों के भी कानून बन सकती है, किन्तु प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों को ऐसे कानून के संशोधन तथा रद्द करने का अधिकार है। पार्लिमेंट संघान्तरित रियासतों के सम्बन्ध में उन्हीं विषयों के कानून बना सकती है, जो प्रवेश-प्रार्थना-पत्र द्वारा संघ राज्य को हस्तान्तरित किए गए हैं। असाधारण परिस्थिति की बात दूसरी है। उस अवस्था में अर्थात् जब गवर्नर-जनरल इस बात की घोषणा करे कि युद्ध अथवा आन्तरिक अशान्ति के कारण देश को रक्षा भयंकर संकट में है, भारतीय पार्लिमेंट प्रान्तीय तथा अवशिष्ट विषयों के भी कानून बना सकती है।

संघ और संघान्तरित अंगों का शासन-सम्बन्ध—

अब केन्द्रीय सरकार किसी प्रान्तीय या रियासती सरकार से कोई काम कराना चाहे तो वह उसे अपनी समझौते के आधार पर कराती है। गवर्नर-जनरल उन्हें शासन सम्बन्धी ऐसे काम दे सकता है जो संघ-शासन के अन्तर्गत है। इस प्रकार संघ-पार्लिमेंट किसी प्रान्त या प्रान्तीय अधिकारियों को ऐसे कार्य दे सकती है, जिनके सम्बन्ध में प्रान्तों को नियम बनाने का अधिकार नहीं है। संघ-पार्लिमेंट द्वारा बनाए हुए कानून गवर्नर-जनरल और राजाओं के परस्पर समझौते के अनुसार रियासतों में उस सोमा तक अमल में आते हैं, जहाँ तक उन कानूनों का उनसे सम्बन्ध है। गवर्नर-जनरल को इस बात की जाँच करने का अधिकार है कि रियासतों में संघ-सरकार की नीति समझौते के अनुसार

वर्ती जा रही है या नहीं; यदि नहीं वर्ती जा रही है तो गवर्नर-जनरल इस विषय में राजाओं को आवश्यकतानुसार आदेश दे सकता है। विविध प्रान्त अपना शासन-संचालन इस प्रकार करते हैं कि संघ के कार्य में कोई बाधा न हो। संघ-सरकार प्रान्तीय सरकारों को शासन सम्बन्धों सम्मिलित विषयों के सम्बन्ध में तथा ऐसे यातायात के साधनों के निर्माण और रक्षा के सम्बन्ध में, जो सैनिक महत्व के हों, आदेश दे सकती है। यदि भारत या इसके किसी भाग की शान्ति और व्यवस्था भंग होने की आशंका हो अथवा भारत के विरुद्ध युद्ध छिड़ने वाला हो तो गवर्नर-जनरल यह आदेश दे सकता है कि प्रान्तीय शासन का किस प्रकार संचालन किया जाय। संघ-सरकार संधीय विषयों के सम्बन्ध में आवश्यकता पड़ने पर प्रान्तीय सरकारों की भूमि पर अधिकार कर सकती है। हाँ, इस सम्बन्ध में हरजाना देने और समझौता करने की व्यवस्था है। यही व्यवस्था संधान्तरित रियासतों के सम्बन्ध में भी है। उनका शासन-संचालन इस प्रकार का होना चाहिए कि संघ के शासन-अधिकार पर, जहाँ तक वह रियासतों में लागू है, कुप्रभाव न पड़े। यदि किसी समय गवर्नर-जनरल को यह विदित हो कि अमुक संधान्तरित रियासत का राजा इस सम्बन्ध में अपने कर्तव्यों का पालन नहीं कर रहा है, तो वह इस विषय की आवश्यक जाँच करने के बाद राजा को यथोचित आदेश दे सकता है।

आर्थिक व्यवस्था—संघ-सरकार और प्रान्तीय तथा रियासती सरकारों के आर्थिक सम्बन्ध की मुख्य बातें इस प्रकार हैं:—

(१) कुछ कर ऐसे निर्धारित किए गए हैं, जिनकी सारी आमदनी संघ-सरकार को मिलेगी; जैसे आयात-निर्यात कर, रेलों का मुनाफा, मुद्रा और टकसाल, रिज़र्व बैंक का लाभ आदि।

(२) कुछ कर ऐसे हैं जिन्हें वसूल करने का अधिकार संघ-सरकार को है, पर जो प्रांतों और संधान्तरित रियासतों में विधान द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों के अनुसार विभाजित कर दिए गए हैं; जैसे उत्तराधिकार-कर। इन मदों के सम्बन्ध में जो अतिरिक्त कर लगाया

जायगा उसकी सारी आय संध-सरकार को मिलगी ।

(३) कुछ कर ऐसे हैं, जिन्हें वमूल करने का अधिकार संध-सरकार को है, पर जिनका निर्धारित प्रतिशत प्रान्तों तथा संधान्तरित रियासतों को लौटाया जायगा; जैसे आय-कर । इस सम्बन्ध में भी जो अतिरिक्त कर लगाया जायगा, उसकी सारी आय संध-सरकार को मिलेगी ।

(४) वे कर जिनकी समस्त आय प्रान्तीय सरकारों को मिलेगी, जैसे मालगुजारी, जंगल आदि ।

गवर्नर-जनरल की पूर्व-अनुमति के बिना पार्लिमेन्ट में कोई ऐसा प्रस्ताव या संशोधन उपस्थित नहीं किया जा सकता, जिसका प्रान्तों के हित पर प्रभाव पड़ता हो, जो 'कृषि की आय' के अर्थ को बदलता हो, जो आय-विभाजन सिद्धान्तों पर असर डालता हो, अथवा अतिरिक्त कर लगाता हो । गवर्नर-जनरल अतिरिक्त कर लगाने की अनुमति तभी दे सकता है जब उसे यह विश्वास हो जाय कि किफायत करने तथा संधीय आय के बढ़ने पर भी आय-व्यय का संतुलन नहीं हो सकता । संध-सरकार गवर्नर-जनरल की की आज्ञा के अनुसार प्रान्तों की आर्थिक सहायता भी कर सकती है ।

विशेष वक्तव्य—हमने ऊपर इस बात का विचार किया है कि केन्द्र का प्रान्तों तथा रियासतों से क्या सम्बन्ध है । यदि इनमें आपस में मतभेद हो और कोई वैधानिक प्रश्न उपस्थित हो तो इसका निर्णय संध-न्यायालय करता है । उसके विषय में अगले परिच्छेद में लिखा जायगा ।

दसवाँ परिच्छेद संघ न्यायालय

संघ-न्यायालय की आवश्यकता—प्रत्येक संघ-राज्य में संघ-न्यायालय का होना आवश्यक होता है। बात यह है कि संघ राज्य में शासन की जो विविध इकाइयाँ होती हैं, वे केन्द्रीय सरकार की मातहत होती हैं या, उसके नौकर की तरह नहीं होती। हर एक इकाई को अपनी अधिकार-प्राप्त सरकार होती है, जिसे केन्द्रीय सरकार बात-बात में दबाए नहीं रख सकती। संघ और स्थानीय सरकारों के कार्यक्षेत्र अलग-अलग बंटे होते हैं। दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र होते हैं। ऐसी दशा में यह आशंका रहती है कि कार्यक्षेत्र के विभाजन के सम्बन्ध में केन्द्रीय और स्थानीय सरकार में, अथवा दो स्थानीय सरकारों में मतभेद न हो; अथवा, विधान की किसी धारा का अलग-अलग अर्थ न लगाया जाय। ऐसी कठिनाइयों को हल करने के लिए एक सुयोग्य और समर्थ संस्था स्थापित की जाती है। इस संस्था को संघ न्यायालय कहते हैं। यह संघ-शासन-विधान का संरक्षक होता है।

संघ-न्यायालय का कार्य—जैसा ऊपर की पंक्तियों में स्पष्ट है, जब कभी केन्द्रीय सरकार का किसी प्रान्तीय सरकार से, अथवा दो प्रान्तों का परस्पर में, किसी विषय में मतभेद हो, या शासन-विधान की किसी धारा का अलग-अलग अर्थ लगाया जाता हो, तो उसका निर्णय संघ-न्यायालय द्वारा होता है। इसके न्यायाधीशों का कर्तव्य है कि संघ सरकार तथा संघ की अंगीभूत सरकारों को समान दृष्टि से देखे और उनके बीच के मामलों का निष्पक्ष निर्णय करे। इसलिए उन्हें शान्त-विधान के सूक्ष्म ज्ञान की आवश्यकता होती है।

भारतीय संघ-न्यायालय का संगठन—भारतवर्ष में संघ-न्यायालय को स्थापना सन् १९३५ के विधान के अनुसार सन् १९३७ में हुई। यह देहली में है। इसके प्रधान जज को 'भारतवर्ष का चीफ-जस्टिस' कहते हैं। उसके अतिरिक्त इसमें जजों की संख्या आवश्यकता-नुसार छः तक हो सकती है। [अभी प्रधान जज के अतिरिक्त केवल दो ही जज रहते हैं।] जजों की नियुक्ति सम्राट् द्वारा की गई थी। यह निश्चय किया गया था कि प्रत्येक जज पैंसठ वर्ष की आयु तक अपने पद पर रह सकता है, हाँ, वह गवर्नर-जनरल को त्यागपत्र देकर अपना पद छोड़ सकता है, और दुराचार या मानसिक अथवा शारीरिक निर्बलता के आधार पर सम्राट् उसे अपने पद से हटा सकता है, जब कि प्रिंवां काँसिल की जुडीशल कमेटी की भी ऐसी सम्मति हो। जजों का वेतन, भत्ता और मार्ग-व्यय छुट्टी के समय का वेतन और पेन्शन आदि सपरिषद् सम्राट् समय-समय पर निर्धारित करता था; किसी जज को नियुक्ति हो जाने पर उसके वेतन या छुट्टी अथवा पेन्शन आदि के अधिकार में कमी नहीं की जाती थी। साधारणतया प्रधान जज को ७,००० रु० और अन्य जजों को ५,५०० रु० मासिक वेतन दिया जाता था। ६५ वर्ष की आयु के बाद उन्हें ३०,००० रु० तक सालाना पेन्शन दी जाती थी।

भारतीय स्वतंत्रता विधान, सन् १९४७, द्वारा संघ-न्यायालय के संगठन में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। हाँ, न्यायाधीशों की नियुक्ति का अधिकार अब सम्राट् (जिसे अब बादशाह ही जाता है) को न होकर भारत के गवर्नर-जनरल को है।

सन् १९३५ के विधान के अनुसार संघ-न्यायालय का जज नियुक्त होने के लिए इंगलैंड या उत्तरी आयरलैंड का बैरिस्टर या स्काटलैंड का एडवोकेट रहना भी एक योग्यता मानी गई थी। अब यह बात नहीं रही है। संघ-न्यायालय के न्यायाधीश गवर्नर-जनरल के पास त्यागपत्र भेज कर पहले की तरह अपने पद से अलग हो सकते हैं, और सम्राट् भी

दुराचार अथवा शारीरिक और मानसिक दुर्बलता सम्बन्धी प्रिवी कौंसिल की रिपोर्ट पर उन्हें अपने पद से पृथक् कर सकता है।

इसका अधिकार-क्षेत्र—संघ-न्यायालय के दो भाग हैं 'आरिजिनल' और अपील भाग। 'आरिजिनल' भाग में नए मुकदमों का विचार होता है। केन्द्रीय सरकार, प्रांतों और देशी राज्यों का परस्पर में कानूनी अधिकार सम्बन्धी मतभेद होने पर उसका फ़ैसला केवल संघ-न्यायालय में होता है; और यह न्यायालय उसका विचार अपने 'आरिजिनल' भाग में करता है। देशी राज्य से सम्बन्ध रखनेवाले विशेषतया उसी मतभेद का विचार होता है, जिसका सम्बन्ध (क) भारतीय स्वतंत्रता विधान की व्याख्या से, या इस विधान के अन्तर्गत दी हुई सम्राट को या गवर्नर-जनरल की आज्ञा से हो, या (ख) इस बात से हो कि केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल का कोई कानून किसी देशी राज्य में कहाँ तक लागू हो सकता है। इस प्रकार नए मुकदमों का विचार उसी दशा में होता है, जब वे व्यक्तियों या संस्थाओं के न होकर सरकारों के हों।

संघ-न्यायालय में भारत के हाईकोर्टों के ऐसे फ़ैसले या अंतिम आज्ञा की अपील हो सकती है, जिस के विषय में हाईकोर्ट यह तसदीक कर दे कि उसमें शासन-विधान की व्याख्या से, या विधान के अन्तर्गत सपरिषद् सम्राट की किसी आज्ञा से, सम्बन्धित कोई महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्न आता है।

पार्लिमेंट संघ-न्यायालय के दीवानी दावों के अपील सम्बन्धी अधिकार बढ़ा सकती है। दिसम्बर १९४७ में पार्लिमेंट ने प्रस्ताव पास करके संघ-न्यायालय को पन्द्रह हजार रुपए या अधिक के दावाना दावों की अपील सुनने का अधिकार दे दिया और यह व्यवस्था कर दी कि फरवरी १९४८ से भारत के हाईकोर्टों के दावानी मामलों की अपील सीधे प्रिवी कौंसिल में न हो। यद्यपि पार्लिमेंट के इस प्रस्ताव से प्रिवी कौंसिल में जाने वाले अपील पूर्ण रूप से रुन्द नहीं होंगे, इससे यहाँ

मीधे जाने वाले दीवानी दावों के अपीलों का सिलसिला रुक जायगा, और कालान्तर में सभी अपीलों का वहाँ जाना बन्द होने का मार्ग खुल जायगा। पार्लियामेंट का उपर्युक्त प्रस्ताव उन अपीलों के सम्बन्ध में कोई हस्तक्षेप नहीं करता, जो प्रिवी कौंसिल के सामने उपस्थित हैं और जिनके कागजात सम्बन्धित हाईकोर्ट ने इंग्लैंड भेज दिए हैं, या जिनके लिए प्रिवी कौंसिल ने इस कानून के अमल में आने से पहले अनुमति दे दी थी।

यदि गवर्नर जनरल किसी सार्वजनिक महत्व के कानून के प्रश्न पर सङ्घ-न्यायालय की सम्मति लेना चाहे तो यह न्यायालय उसके सम्बन्ध में आवश्यक बातें जान लेने पर अपनी रिपोर्ट देता है।* यह न्यायालय गवर्नर-जनरल को स्वकृति से समय-समय पर अपनी कार्य-पद्धति के नियम बना सकता है, जिनमें यह बातें भी सम्मिलित हैं :—इस न्यायालय में कैसे वकील आदि पैरवा कर सकते हैं, कितने समय में यहाँ अपील दाखिल की जानी चाहिए, मुकदमे की कार्रवाई में क्या-क्या खर्च हो, क्या फीस लगे, किस प्रकार व्यर्थ अपीलों का तुरन्त निपटारा कर दिया जाय, और किसी विषय के विचारार्थ कम-से-कम कितने जज बैठें, जो तीन से कम न हों। इस न्यायालय का सब काम अंगरेजी में होता है। न्यायालय का सब खर्च केन्द्रीय आय में से होता है, और इसकी फीस आदि की आमदनी केन्द्रीय आय में सम्मिलित कर दी जाती है। सङ्घ-न्यायालय द्वारा (तथा प्रिवी कौंसिल के फैसलों से) सूचित किया हुआ कानून प्रसङ्गानुसार भारत के सब न्यायालयों में मान्य होता है।

सङ्घ-न्यायालय के अधिकारों में यह बात विचारणीय है कि यह न्यायालय केवल विधान सम्बन्धी विचार नहीं करता, इसमें दीवानी मामलों की अपील भी फ़ैसला होता है।

* गवर्नरों या प्रान्तीय सरकारों को संघ-न्यायालय की सलाह की आवश्यकता हो तो वे गवर्नर-जनरल की आज्ञा द्वारा ही, उसे प्राप्त कर सकती हैं।

विधान सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण निर्णय—इस न्यायालय का विधान सम्बन्धी कार्य एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। सन् १९३५ के विधान से प्रान्तीय सरकारों के अधिकार तो बढ़ गए थे, परन्तु उनका आर्थिक स्थिति जैसी चाहिए, नहीं हुई थी। कर-निर्वाह के प्रमुख विषय केन्द्रीय सरकार के हाथ में थे। प्रान्तों को आय इतनी कम थी कि उसे बढ़ाए बिना जनता को दशा सुधारना सम्भव नहीं था। कांग्रेसी सरकारों को अपनी आय को कमी और भा अधिक प्रतात हुई; कारण, उन्होंने म० गांधी की प्रेरणा से शराब आदि मादक द्रव्यों का अनैतिक व्यापार क्रमशः बन्द कर देने का निश्चय किया था। इस प्रकार इस बात की अत्यन्त आवश्यकता अनुभव हुई कि प्रान्तों को आय बढ़ाने के प्रयत्न किए जायें; कर लगाने के नए क्षेत्र निकाले जायें। इस दृष्टि से मध्यप्रान्त की सरकार ने पेट्रोल पर कर लगाने के लिए व्यवस्थापक सभा में क़ानून का मसविदा उपस्थित किया। विरोधी दल के सदस्यों का मत था कि यह कर केन्द्रीय विषयों में आता है; प्रान्त सरकार को यह कर लगाने का अधिकार नहीं है। अस्तु, प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा में मंत्रिमंडल का यह कर लगाने का प्रस्ताव पाम हो गया। पर केन्द्रीय सरकार इस विषय में सहमत न थी, उसने इस विषय का निर्णय कराने के लिए संघ-न्यायालय में मामला चलाया। अन्य प्रान्तों ने भी इस मामले में बहुत दिलचस्पी ली; कारण, यह केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों के कर लगाने के क्षेत्र का निर्णय करने-वाला महत्वपूर्ण मामला था। दिसम्बर १९३८ में सङ्घ-न्यायालय ने मध्यप्रान्त की सरकार के पक्ष में फैसला दिया। इस निर्णय का देश में खूब स्वागत हुआ, इससे प्रान्तों को ऐसे पदार्थों पर कर लगाए जाने में क़ानूनी सन्देह न रहा और प्रान्तीय सरकारों के लिए, अपना आमदना बढ़ाने का (और उसके द्वारा लोकहित के कार्य करने का) एक नया मार्ग खुल गया। इससे स्पष्ट है कि सङ्घ-न्यायालय का निर्णय कैसा महत्वपूर्ण होता है।

ग्यारहवाँ परिच्छेद प्रान्तीय सरकार

‘प्रान्त’ शब्द से प्रायः ऐसे प्रान्त का विचार मन में आता है, जिसका प्रधान शासक गवर्नर हो। परन्तु जैसा ‘भारत-सरकार’-शीर्षक परिच्छेद में उल्लेख किया गया है, कुछ प्रान्त ऐसे भी हैं, जिनमें प्रधान शासक चीफ-कमिश्नर कहलाता है। इस प्रकार प्रान्तों के दो भेद हैं—(१) चीफ-कमिश्नरों के प्रान्त, और (२) गवर्नरों के प्रान्त। प्रान्तों की शासनपद्धति का विचार करने से पहले इनके निर्माण और सीमा-परिवर्तन के विषय में आवश्यक बातें जान लें।

प्रान्तों का निर्माण और सीमा-परिवर्तन— प्रान्तों की संख्या समय-समय पर बदलती रही है। भारत के स्वतंत्र होने से पहले कोई प्रान्त (चाहे वह गवर्नर का प्रान्त हो, या चीफ-कमिश्नर का) निर्माण करने, या उसका क्षेत्र घटाने या बढ़ाने, अथवा उसकी सीमा बदलने का अधिकार सम्राट् को था। वह यह कार्य ‘आर्डर-इन-कौंसिल’ (सपरिषद् सम्राट् की आज्ञा) से करता था। इस विषय में वह आवश्यक था कि ऐसी आज्ञा का मसविदा पार्लिमेंट में उपस्थित किये जाने से पूर्व, भारत-मंत्रों भारतवर्ष की केन्द्रीय सरकार और केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल का, तथा जिस प्रान्त पर उक्त कार्य का प्रभाव पड़े, वहाँ की सरकार तथा वहाँ के व्यवस्थापक मंडल का, मत मासूम करने का वह सब कार्य करे, जिसके लिए सम्राट् का आदेश हो।

सन् १९४७ के भारतीय स्वतंत्रता विधान के अनुसार अब किसी प्रान्त को बनाने या उसकी सीमा में परिवर्तन करने का अधिकार गवर्नर-

जनरल को है, और वह सब कार्य पैधानिक शासक की हैसियत से करता है।

देश में भाषा, संस्कृति या रहन-सहन आदि के विचार से प्रान्तों के विभाजन तथा नये प्रान्तों के निर्माण की माँग बढ़ती जा रही है। खासकर मद्रास, बम्बई और मध्यप्रान्त-बराद का विभाजन भाषा के आधार पर करने की माँग बहुत समय से है। दक्षिण भारत में चार भाषाओं के बोलनेवाले अलग-अलग काफी संख्या में हैं, और हरेक भाषा के बोलनेवाले विस्तृत भू-भागों पर फैले हुए हैं। इस दृष्टि से मद्रास प्रान्त के चार भाग किए जायें—आन्ध्र, तामिलनाडु, केरल और कर्नाटक। बम्बई प्रान्त की मुख्य भाषाएँ मराठी और गुजराती हैं, और इन दोनों के बोलनेवालों के दो अलग-अलग प्रांत—महाराष्ट्र और गुजरात—बनाए जायें; ये कुछ अंश में इस समय हैं भी। मध्यप्रान्त-बराद प्रान्त को महाकौशुल और विदर्भ प्रान्तों में विभक्त करने की माँग है। जब तक कि देश-हित की उपेक्षा न की जाय, ऐसी माँग की पूर्ति होना उचित ही है। हाँ, किसी प्रांत के निवासियों का पृथक्करण सद्भावना पूर्वक ही होना चाहिए, संकीर्ण प्रान्तीयता या साम्प्रदायिकता के भावों से नहीं। पुनः एक स्वतंत्र प्रान्त की सरकार को गवर्नर, मंत्री, हाईकोर्ट, व्यवस्थापक सभा, विश्वविद्यालय आदि सभी बातों की व्यवस्था करनी होती है। ये सब कार्य व्यय-साध्य हैं। आवश्यकता है कि नवीन प्रान्तों की सृष्टि के साथ शासन-व्यय का परिमाण कम किया जाय; तथा सरकारी आय अधिकतर राष्ट्रोत्थानकारी कार्यों में लगायी जाय, जिससे जनता की आर्थिक और नैतिक दशा में सुधार हो।

चीफ-कमिश्नरों के प्रान्त—भारत के स्वतंत्र होने के समय चीफ-कमिश्नरों के प्रान्त ये थे—(१) देहली, (२) अजमेर-मेरवाड़ा, (३) कुर्ग, (४) पंथ-पिपलौदा और (५) अन्दमन-निकोबार। अगस्त १९४७ के बाद से प्रांतों के निर्माण में बहुत परिवर्तन हो रहा है। देशी राज्यों में से अधिकांश, भारतीय संघ में विलीन हो गए

हैं, और इनमें से कुछ राज्यों या उनके समूहों को कमिश्नर या चीफ-कमिश्नर का प्रान्त बनाया गया है; उदाहरणार्थ हिमालय प्रदेश, विलासपुर, रामपुर, भोपाल राज्य आदि। इसी प्रकार यह भी सम्भव है कि वर्तमान चीफ-कमिश्नरों के प्रान्तों में से कोई प्रान्त किसी रियासता संघ का अंग बन जाय। मिसाल के तौर पर अभी अजमेर-मेरवाडा एक चीफ कमिश्नर का प्रान्त है परन्तु यह चारों ओर राजपूताने की रियासतों से घिरा हुआ है, जिन सब को मिला कर 'महान राजस्थान' का निर्माण किया गया है। इस महान राजस्थान में अजमेर-मेरवाडा शामिल न होने से बड़ी कमी मालूम पड़ रही है, इस लिए उसे भी इस में मिलाने के सम्बन्ध में विचार हो रहा है। निदान, वर्तमान अवस्था में चीफ-कमिश्नरों के प्रान्तों की ठीक-ठीक सूची नहीं दी जा सकती, उनमें घट-बढ़ हो रही है।

इन प्रांतों का शासन-प्रबन्ध केन्द्रीय सरकार, चीफ कमिश्नरों द्वारा, करती है। चीफ कमिश्नरों की नियुक्ति गवर्नर-जनरल करता है, और वे उसके प्रति ही उत्तरदायी होते हैं। सन् १९४७ के भारतीय स्वतंत्रता विधान के अनुसार अब गवर्नर-जनरल एक वैधानिक शासक होता है, यह पहले बताया जा चुका है। चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों में से एक प्रांत (कुर्ग) में व्यवस्थापक सभा है, अन्य प्रांतों के लिए कानून भारतीय पार्लिमेंट बनाती है; इस संस्था के सम्बन्ध में हम विस्तार-पूर्वक एक अलग अध्याय में लिख आए हैं।

गवर्नरों के प्रान्त—भारत के स्वतंत्र होने (और पाकिस्तान बनने) के बाद गवर्नरों के प्रांत निम्नलिखित हैं—(१) मद्रास, (२) बम्बई, (३) संयुक्तप्रांत, (४) बिहार, (५) मध्यप्रान्त-वरार (६) आसाम, (७) उड़ीसा, (८) पूर्वी बंगाल और (९) पश्चिमी पंजाब।

गवर्नर की नियुक्ति और वेतन—इन प्रान्तों में सर्वोच्च अधिकारी गवर्नर कहलाता है। पहले गवर्नरों की नियुक्तियाँ सम्राट् द्वारा होती थीं। भारत के स्वतंत्र होने के समय अर्थात् १५ अगस्त

१६४७ से पूर्व सब गवर्नरो ने त्याग-पत्र दे दिया था। मदरास, बम्बई, और आसाम के गवर्नरो से अपने पद पर बने रहने की प्रार्थना की गई, जो उन्होंने स्वीकार करली। अन्य प्रान्तों के लिए नए गवर्नरो को सम्राट की स्वीकृति से नियुक्त किया गया और यह निश्चय हो गया कि भविष्य में रिक्त होने वाले स्थानों की पूर्ति गवर्नर-जनरल द्वारा की जायगी।

भारत के स्वतंत्र होने से पहले बंगाल, बम्बई, मदरास और संयुक्त-प्रान्त के गवर्नरो का पद विशेष ऊंचा माना जाता था; इन्हें वार्षिक वेतन १,२०,००० रु० मिलता था। पंजाब और बिहार के गवर्नरो को एक-एक लाख रु०; मध्यप्रान्त-बरार और आसाम के गवर्नरो में से प्रत्येक को ७२,००० पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, उड़ीसा और सिन्ध के गवर्नरो में से प्रत्येक को ६६,००० रु० मिलता था। अब यह भिन्नता नहीं रही है; सब गवर्नरो को बराबर ६६,००० रु० मिलता है। इस वेतन के अतिरिक्त उन्हें भत्ता आदि पहले की तरह दिया जाता है; यह इतना काफी होता है, कि वे अपने पद का कार्य सुविधा और मान-मर्यादा-पूर्वक कर सकें, अर्थात् उनकी शान-शौकत भली भाँति बनी रहे। छुट्टी के भत्ते की भी व्यवस्था है। यद्यपि गवर्नरो का वेतन आदि पहले की अपेक्षा कम है, भारतीय जनता की दृष्टि से यह बहुत अधिक ही है।

गवर्नर के कार्य—गवर्नर के शासन-कार्य के अन्तर्गत वे सब विषय आजाते हैं, जिनके सम्बन्ध में प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल को नियम बनाने का अधिकार है, इस विषय में खुलासा अगले परिच्छेद में लिखा जायगा। सन् १६३५ के विधान के अनुसार गवर्नर को शासन सम्बन्धी बहुत से अधिकार प्राप्त थे, परन्तु सन् १६४७ के स्वतन्त्रता विधान के अनुसार उसकी स्थिति बदल गई है। अब वह केवल अपने प्रान्त का वैधानिक शासक होता है। वह शासन सम्बन्धी सब कार्य मंत्रिमण्डल के निश्चयों तथा प्रधान मंत्री के परामर्श से करता है।

मंत्रिमंडल का निर्माण—प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल का निर्वाचन हो जाने के बाद गवर्नर उस दल के नेता को मंत्रिमंडल बनाने

का निमंत्रण देता है, जिसका व्यवस्थापक सभा में बहुमत हो। जब वह नेता मंत्रिमंडल बनाना स्वीकार कर लेता है तो उस से मंत्रियों के नाम देने के लिए कहा जाता है। मंत्रिमंडल बनानेवाला व्यक्ति प्रधान मंत्री (प्राइम-मिनिस्टर या प्रिमीयर) कहलाता है। मंत्रियों के काम का ब्रैटवारा किस प्रकार हो, इसका निर्णय गवर्नर प्रधान मंत्री के परामर्श से करता है। जिस मंत्री को जो मुख्य कार्य सौंपा जाता है, उसे उसके अनुसार ही सम्बोधित किया जाता है, यथा—अर्थ-मंत्री, शिक्षा-मंत्री, आदि।

विधान के अनुसार किसी प्रान्त के मंत्रियों की संख्या निर्धारित नहीं है; यह आवश्यकतानुसार घट-बढ़ सकती है। मंत्रियों की नियुक्ति गवर्नर द्वारा होती है।

मन्त्रो उन व्यक्तियो में से हो सकते हैं, जो प्रान्त के व्यवस्थापक मण्डल के सदस्य हों। अगर कोई मन्त्री लगातार छः महीने तक व्यवस्थापक मण्डल का सदस्य न हो तो उसे अपने पद से पृथक् होना पड़ता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि प्रधान मन्त्री किसी ऐसे व्यक्ति को मंत्रिमण्डल में लेना चाहता है, जो व्यवस्थापक मण्डल का सदस्य निर्वाचित न हुआ हो। ऐसी दशा में उस व्यक्ति को मन्त्री तो बना लिया जाता है, परन्तु प्रधान मन्त्री अपने दल के किसी प्रमुख सदस्य से त्यागपत्र दिलवा कर उसकी जगह उस मन्त्री को निर्वाचित कराने का प्रयत्न करता है। यदि यह कार्य छः महीने तक न हो तो इस मन्त्री को त्यागपत्र दे देना होता है।

सम्मिलित या गंगा-जमुनी मंत्रिमण्डल—कभी-कभी ऐसा होता है कि व्यवस्थापक सभा में किसी एक दल का स्वतंत्र बहुमत नहीं होता। ऐसी दशा में, मंत्रिमण्डल का निर्माण करने के लिए गवर्नर उस दल के नेता को निमंत्रित करता है, जो दूसरे दलों के सहयोग से (बहुमत प्राप्त करके) मंत्रिमण्डल बना सके। इस प्रकार बनाए हुए मंत्रिमण्डल को सम्मिलित मंत्रिमण्डल या गंगा-जमुनी मंत्रिमण्डल (को-अलिशन मिनिस्ट्री) कहते हैं। ऐसे मंत्रिमण्डल के

मदस्यो के उद्देश्यों में भिन्नता होने के कारण उसकी प्रायः कोई दृढ़ या स्थिर नीति नहीं रहती ।

मंत्रिमंडल से किसी मन्त्री का पृथक्करण—यदि प्रधान मंत्री किसी मंत्री को मन्त्रिमण्डल से पृथक् करना चाहे तो वह उसे त्यागपत्र देने की प्रेरणा करता है । यदि वह इसमें सफल होजाय, अर्थात् वह मंत्री अस्तीफा दे दे तो मामला निपट जाता है । परन्तु यदि वह मन्त्री अपने पद का परित्याग न करे तो प्रधान मन्त्री अपना तथा अपने मन्त्रिमण्डल का त्यागपत्र देकर नया मंत्रिमण्डल ऐसा बनाता है; जिसमें उपर्युक्त मन्त्री न रहे ।

मंत्रियों का वेतन—मंत्रियों का वेतन प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल समय-समय पर निर्धारित करता है, और जब तक वह निर्धारित न करे, गवर्नर उसका निश्चय करता है, परन्तु किसी मन्त्री का वेतन उसके कार्य-काल में बदला नहीं जाता । सन् १९३७-३९ में आठ प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल थे । इन प्रान्तों में मंत्रियों का वेतन पांच-पांचसौ रुपए मासिक था । अन्य प्रान्तों में वेतन अधिक था । कांग्रेस की नीति यही थी कि साधारणतया किसी व्यक्ति का मासिक वेतन ५०० रु० से अधिक न हो । अब रुपए की कीमत गिरी हुई होने से वेतन का मान उससे अधिक होना आवश्यक है । तथापि सरकारी पदाधिकारियों के वेतन और भत्ते आदि में जनता की साधारण आर्थिक स्थिति का विचार रहना चाहिए ।

मंत्रिमंडल का उत्तरदायित्व और कार्यपद्धति—मंत्रिमंडल प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के प्रति उत्तरदायी होता है । जब व्यवस्थापक सभा पूरे मंत्रिमंडल या एक मंत्री के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव पास कर देती है तो वे त्याग-पत्र दे देते हैं । यदि वे ऐसा न करें तो गवर्नर उस मंत्रिमंडल को भंग कर देता है या उस मंत्री को अलग कर देता है । साधारणतया प्रत्येक मंत्री अपनी 'इच्छानुसार

काम करता है। विशेष महत्वपूर्ण विषयों में मंत्रिमंडल से मलाह ली जाती है। जहाँ तक शासन-नीति का सम्बन्ध है, कोई मंत्री पूरे मंत्रि-मंडल द्वारा निर्धारित नीति के विरुद्ध कार्य नहीं कर सकता। किसी विभाग का मंत्री इस बात के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता कि उसकी नीति हानिकर है। शासन नीति के लिए मंत्रिमंडल का संयुक्त या सामूहिक उत्तरदायित्व होता है, अर्थात् सब मंत्री एक दूसरे के काम की जिम्मेवारी में हिस्सेदार होते हैं। प्रधान मंत्री इस बात का ध्यान रखता है कि सब विभागों में ऐसी नीति बर्ती जाय, जिससे शासन की एकता तथा दृढ़ता बनी रहे। यदि कभी मंत्रिमंडल में मत-भेद होता है तो उसे दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। जो मंत्री मंत्रिमंडल की नीति से सहमत नहीं होता, वह त्यागपत्र देकर अलग हो जाता है; अथवा उसे मंत्रिमंडल से अलग कर दिया जाता है, इसकी विधि पहले बताई जा चुकी है।

पार्लिमैंटरी सेक्रेटरी—कई प्रांतों में मन्त्रियों के सहायक नियुक्त हैं; इन्हें पार्लिमैंटरी सेक्रेटरी कहते हैं। ये मन्त्रियों को, विशेषतया उनके व्यवस्था सम्बन्धी कार्यों में, आवश्यकतानुसार सहायता देते हैं। इनके वेतन और भत्ते के लिए प्रति वर्ष प्रांतीय व्यवस्थापक सभा की स्वीकृति ली जाती है। क्योंकि इन पदों पर व्यवस्थापक सभा के सदस्यों की ही नियुक्ति की जाती है, इस लिए, विधान के अनुसार यह आवश्यक होता है कि व्यवस्थापक सभा यह कानून पास करे कि सरकारी कोष से वेतन पाने के कारण, कोई पार्लिमैंटरी सेक्रेटरी व्यवस्थापक सभा की सदस्यता से वंचित नहीं किया जायगा।

एडवोकेट-जनरल—गवर्नरों के प्रांतों में से प्रत्येक में एक-एक एडवोकेट-जनरल रहता है। इस पद के लिए उस प्रांत का गवर्नर ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करता है, जिसमें हाईकोर्ट का जज होने की योग्यता हो। उसका कर्तव्य प्रांतीय सरकार को कानूनी विषयों पर परामर्श देना, और हाईकोर्ट में सरकार की तरफ से वकालत करने आदि के ऐसे

अन्य कानूनी कार्य करना होता है, जो गवर्नर समय-समय पर उसके लिए निर्धारित करे। वह उस समय तक अपने पद पर आरूढ़ रहता है, जब तक कि गवर्नर चाहे; और उसे उतना वेतनादि मिलता है, जितना गवर्नर निश्चय करे।

विशेष वक्तव्य—सन् १९३५ के विधान के अनुसार गवर्नर को अनेक विशेषाधिकार प्राप्त थे, और वह कई प्रकार के कार्य अपने विवेक अथवा व्यक्तिगत निर्णय से कर सकता था। भारतीय स्वतंत्रता-विधान, सन् १९४७, से गवर्नर के उन सब अधिकारों का अन्त होकर वह वैधानिक शासक मात्र रह गया है। वह शासन-कार्य मंत्रिमण्डल के मतानुसार करता है, जो प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल के प्रति उत्तरदायी होता है।

बारहवाँ परिच्छेद

प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल

प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डलों की सभाएँ और उनकी

अवधि—पहले बताया जा चुका है कि भारत में नौ प्रान्त 'गवर्नर के प्रान्त' कहलाते हैं। इनमें से चार प्रान्तों अर्थात् (१) मद्रास (२) बम्बई, (३) संयुक्तप्रान्त, और (४) बिहार में दो-दो सभाएँ, और शेष पाँच प्रान्तों अर्थात् पूर्वी पंजाब, मध्यप्रान्त-ब्रार, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा और आसाम में एक-एक सभा है। जिन चार प्रान्तों के व्यवस्थापक मण्डलों में दो-दो सभाएँ हैं, उनकी उन सभाओं के नाम क्रमशः व्यवस्थापक सभा (लेजिस्लेटिव असेम्बली) और व्यवस्थापक परिषद (लेजिस्लेटिव कौंसिल) हैं; और, जहाँ एक ही सभा है, वह व्यवस्थापक सभा कहलाती है। किसी प्रान्त की व्यवस्थापक सभा (असेम्बली), अपनी प्रथम बैठक के निर्धारित दिन से, अधिक-से-अधिक पाँच वर्ष तक रहती है, इस समय के बाद भंग हो जाती है। व्यवस्थापक परिषद एक स्थायी संस्था होती है, जो कभी भंग नहीं होती। इसके लगभग

एक-तिहाई सदस्य निर्धारित नियमों के अनुसार तीन-तीन साल में बदलते हैं। इस प्रकार प्रत्येक तीन साल के बाद इसके एक-तिहाई सदस्यों का नया चुनाव होता है। कौन-कौन से सदस्य पहले तीन साल बाद, और कौन-कौन से पहले छः साल बाद इससे पृथक् हो, इसका निर्णय गवर्नर करता है।

भारतीय स्वतंत्रता विधान और व्यवस्थापक मंडल—

प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों के पिछले चुनाव सन् १९४६ में हुए थे। अगस्त १९४७ में भारत स्वतंत्र हो गया। इस प्रकार सन् १९४६ के चुनाव, १९३५ के विधान के अनुसार होनेवाले अन्तिम चुनाव थे। अब तो उनके जो चुनाव होंगे, वे नए विधान के ही अनुसार होंगे।

सन् १९४६ के चुनावों के समय, १९३५ के विधान के अनुसार, बंगाल और आसाम में भी दूसरी सभाएँ (उपरली सभाएँ) थीं। वे भारतीय स्वतंत्रता-विधान के अनुसार तोड़ दी गई हैं। अब आसाम और पश्चिमी बंगाल में एक-एक सभा रह गई है।

पिछले चुनाव पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रथा के आधार पर हुए थे, और निर्वाचक संघ १६ प्रकार के माने गए थे:—१—साधारण (हिन्दू), २—सिक्ख, ३—मुस्लिम, ४—एंग्लो-इंडियन, ५—योरपियन, ६—भारतीय ईसाई, ७—व्यापार, उद्योग और खनिज, ८—जमींदार, ९—विश्वविद्यालय, १०—श्रम, ११—स्त्रियाँ—साधारण (हिन्दू), १२—स्त्रियाँ—मुस्लिम, १३—स्त्रियाँ—एंग्लोइंडियन, १४—स्त्रियाँ—सिक्ख, १५—स्त्रियाँ—भारतीय ईसाई, १६—पिछड़ी हुई जातियाँ। इस आधार पर पश्चिमोत्तर सोमाप्रान्त और उड़ीसा को छोड़कर अन्य प्रत्येक प्रान्त के व्यवस्थापक मंडल में कुछ स्थान योरपियनों को दिए हुए थे। स्वतंत्रता विधान से ये स्थान समाप्त समझे गए हैं, इसलिए प्रत्येक असेम्बली के सदस्यों की संख्या पहले से कम हो गई।

प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं और परिषदों का वर्तमान संगठन आगे नक्शों में दिखाया गया है।

ग्रान्तीय व्यवस्थापक सभाएं

प्रान्त	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
	साधारण	पिछड़े हुए क्षेत्र और जातियाँ	शिक्षण	मुसलमान	ऐंग्लो इंडियन	भारतीय ईसाई	व्यापार, उद्योग और खनिज	जमींदार	विश्वविद्यालय	मजदूर	साधारण	शिक्षण	मुसलमान
मद्रास	१४६	१	...	२२	२	२	...	३	१	३	३	१	१
बम्बई	११४	१	...	३२	२	३	७	२	१	७	५	१	१
पश्चिमी बंगाल	४४	...	...	२१	३	१	७	२	१	३	१	०	१
संयुक्त प्रांत	१४०	...	...	४३	१	२	३	३	१	३	४	२	२
पंजाब	३१	...	२०	२३	...	...	१	२	१	२	१	१	१
बिहार	८६	७	...	३६	१	१	४	४	१	३	३	१	१
मध्य प्रांत-उरार	८४	१	...	११	१	...	२	३	१	३	३	३	३
आसाम	६७	३	...	१६	...	१	२	...	...	३	१	१	१
उड़ीसा	४४	५	...	४	...	१	१	२	...	३	२	२	२

ग्रान्तीय व्यवस्थापक परिषद्

ग्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल

८८

प्रान्त	साधारण मुसलमान	भारतीय ईसाई	व्यवस्था-पक सभा	गवर्नर द्वारा गामजुद	योग
मद्रास	३५	३	...	८ से कम नहीं १० से अधिक नहीं	५३ से कम नहीं ५५ से अधिक नहीं
बम्बई	२०	...	...	३ से कम नहीं ४ से अधिक नहीं	२८ से कम नहीं २६ से अधिक नहीं
संयुक्तप्रान्त	३४	...	...	६ से कम नहीं ८ से अधिक नहीं	५७ से कम नहीं ५६ से अधिक नहीं
गिहार	६	...	१२	३ से कम नहीं ४ से अधिक नहीं	२८ से कम नहीं २६ से अधिक नहीं

निर्वाचकों की योग्यताएँ—प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों के निर्वाचकों को कम-से-कम इक्कीस वर्ष का होना चाहिए, उनकी अन्य योग्यताएँ विविध प्रान्तों में अलग-अलग हैं। व्यवस्थापक सभा और व्यवस्थापक परिषद् के निर्वाचकों की योग्यताओं में भी भेद है। व्यवस्थापक सभा के लिए निर्धारित योग्यताएँ निम्नलिखित प्रकार की हैं—निवास सम्बन्धी, टेक्स सम्बन्धी, सम्पत्ति सम्बन्धी, शिक्षा सम्बन्धी, सरकारी नौकरी सम्बन्धी, तथा स्त्रियों की विशेष योग्यता सम्बन्धी। व्यवस्थापक परिषद् के निर्वाचकों के लिए निर्धारित योग्यताओं के निम्नलिखित भेद किए जा सकते हैं—निवास सम्बन्धी योग्यताएँ, साधारण योग्यताएँ स्त्रियों की विशेष योग्यताएँ, और दलित जातियों की योग्यताएँ। या तो व्यवस्थापक सभाओं का निर्वाचन भा बालिग मताधिकार से नहीं होता, परन्तु परिषद् के निर्वाचकों की योग्यता का तो मुख्य आधार ही उच्च आर्थिक स्थिति है। इनके द्वारा निर्वाचित सदस्य सर्वसाधारण के प्रतिनिधि न होकर थोड़े से ही व्यक्तियों का मत प्रकट करने वाले होते हैं।

सदस्य—वही व्यक्ति प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल की किसी सभा का सदस्य चुने जाने योग्य होता है, जिसका नाम निर्वाचक-संघ की सूची में दर्ज होता है, और जो व्यवस्थापक सभा की मेम्बरी के लिए पच्चीस वर्ष, और व्यवस्थापक परिषद् की मेम्बरी के लिए तीस वर्ष से कम आयु का न हो, तथा जिसमें निर्धारित योग्यता हो। सदस्यों को व्यवस्थापक मंडल द्वारा निर्धारित वेतन और भत्ता मिलता है।

यदि कोई ऐसा व्यक्ति, सदस्य के रूप में, किसी सभा में बैठे और मत दे, जिसमें सदस्यता की योग्यता न हो, या जो सदस्य होने के लिए अयोग्य ठहराया गया हो, तो जितने दिन वह बैठेगा और मत देगा, उस पर प्रति दिन पॉचसौ रुपए के हिसाब से दण्ड होगा।

सदस्यों के रियासती अधिकार—जहाँ तक कोई सदस्य इन सभाओं के नियमों की अवहेलना न करे, उसे इनमें भाषण देने

की स्वतन्त्रता है। किसी सदस्य पर, सभाओं या इनकी कमेटियों में भाषण या मत देने के कारण, या सभा के आदेशानुसार उसको रिपोर्ट, मत या कार्रवाई प्रकाशित करने के कारण, कोई कानूनी कार्रवाई नहीं की जा सकती। अन्य बातों में, सदस्यों के रियायती अधिकार वे हैं, जो समय-समय पर व्यवस्थापक मंडल के कानून से निर्धारित हो। जो सदस्य सभाओं के नियमों या स्थायी आज्ञाओं को भंग करे, या अशिष्ट व्यवहार करे, उन्हें सभाओं से हटाने के अतिरिक्त, सभाएं, उनकी कमेटी या उन का कोई पदाधिकारी उनको न्यायालय की भांति कोई दण्ड नहीं दे सकता। जो व्यक्ति इन सभाओं में से किसी कमेटी के सामने, कमेटी के चेयरमैन द्वारा कहे जाने पर, साक्षी देने या ज़रूरी कागज़ात पेश करने से इनकार करे, उसको (न्यायालय में दोषी ठहराए जाने के बाद), दंड देने के नियम व्यवस्थापक मण्डल के कानून से बनाए जा सकते हैं।

व्यवस्थापक मंडल का अधिवेशन—प्रत्येक प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल की सभा या सभाओं का, प्रति वर्ष कम-से-कम एक अधिवेशन होने का, और किसी अधिवेशन की अंतिम बैठक के दिन से एक वर्ष के भीतर, दूसरा अधिवेशन होने का, नियम है। इस नियम को ध्यान में रखते हुए, गवर्नर प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल की दोनों या एक सभा का अधिवेशन ऐसे समय और स्थान पर कर सकता है, जिसे वह उचित समझे। वह सभाओं का कार्य-काल बढ़ा सकता है, और उन्हें अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर सकता है। वह प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा (असम्बली) को भंग कर सकता है। उसके भंग होने की दशा में उसका नया चुनाव होता है।

सभापति और उपसभापति—संगठित होने के पश्चात्, प्रांतीय व्यवस्थापक सभा यथा-सम्भव शीघ्र अपने सदस्यों में से एक सभापति और एक उपसभापति चुनती है। इन्हें क्रमशः 'स्पीकर' और 'डिप्टी स्पीकर' कहा जाता है। जब ये व्यवस्थापक सभा के सदस्य न

रहें तो इन्हें अपना पद छोड़ देना पड़ता है। ये गवर्नर को लिखित सूचना देकर अपने पद का त्याग कर सकते हैं, और व्यवस्थापक सभा के उपस्थित सदस्यों के बहुमत से पास किए हुए प्रस्ताव द्वारा अपने पद से हटाए जा सकते हैं; हाँ, ऐसे प्रस्ताव को उपस्थित करने को सूचना चौदह दिन पहले दी जानी चाहिए।

जब स्पीकर का पद रिक्त हो तो डिप्टी-स्पीकर; और उसका भी पद रिक्त होने की दशा में गवर्नर द्वारा नियुक्त किया हुआ सदस्य, इस पद का कार्य सम्पादन करता है। स्पीकर और डिप्टी-स्पीकर को प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल द्वारा निर्धारित वेतन दिया जाता है; और, जब तक मंडल द्वारा निर्धारित न हो, उन्हें गवर्नर द्वारा निर्धारित वेतन दिया जाता है। प्रान्त के अन्य व्यय की भांति इस वेतन की भी स्वीकृति व्यवस्थापक सभा से प्रति वर्ष ली जाती है।

व्यवस्थापक सभा भंग होजाने पर जब तक नया चुनाव होकर नई व्यवस्थापक सभा का प्रथम अधिवेशन आरम्भ न हो, स्पीकर बराबर सभापति का काम करता है। यद्यपि उसके अधिकार विशेष नहीं होते, परन्तु क्योंकि वह व्यवस्थापक सभा की सब कार्रवाई का संचालन करता है, और जब तक वह अपने पद से पृथक् न हो, उसके निर्णय मान्य होते हैं, अतः उसके पद का प्रभाव और महत्व बहुत होता है।

व्यवस्थापक सभा की तरह, व्यवस्थापक परिषद भी अपना सभापति और उपसभापति चुनती है; ये प्रेसीडेंट और डिप्टी-प्रेसीडेंट कहलाते हैं। इनके सम्बन्ध में नियम उसी प्रकार के हैं, जैसे स्पीकर और डिप्टी-स्पीकर के विषय में ऊपर बताए गए हैं। हाँ, जब दोनों सभाओं का संयुक्त अधिवेशन होता है तो सभापति व्यवस्थापक परिषद का प्रेसीडेंट होता है।

सभाओं में मत-प्रदान—इन सभाओं में से प्रत्येक की बैठक में, एवं दोनों की संयुक्त बैठक में प्रस्तुत प्रश्नों का निर्णय उपस्थित सदस्यों के बहुमत के अनुसार होता है। मन्त्री उस सभा में मत दे

सकते हैं, जिसके वे सदस्य हों। सभापति या उनके स्थान पर कार्य करनेवाले व्यक्ति को प्रथम मत देने का अधिकार नहीं होता; हाँ, जब किसी प्रश्न के पक्ष और विपक्ष में समान मत हों तो उपर्युक्त पदाधिकारी को निर्णायक मत देना होता है।

ये सभाएँ अपने सदस्यों के कुछ स्थान रिक्त होने की दशा में भी, अपना कार्य कर सकती हैं, और इनकी कार्यवाही उस दशा में भी नियमित मानी जाती है, जब कि पीछे यह ज्ञान होजाय कि कोई ऐसा व्यक्ति वहाँ बैठा और उसने उनमें भाग लिया, जो ऐसा करने का अधिकारी न था। अगर किसी समय प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा की मीटिंग में कुल सदस्यों के छूटे भाग से कम उपस्थित हो, या परिषद में दस मेम्बर्स से कम हों तो सभापति या उसके स्थान पर कार्य करनेवाले व्यक्ति का यह कर्तव्य होता है कि वह सभा की कार्यवाही को उस समय तक स्थगित कर दे, जब तक कि ऊपर लिखी कमी दूर न हो जाय।

सदस्य न होते हुए भी प्रत्येक मंत्री तथा एडवोकेट जनरल अपने प्रान्त की व्यवस्थापक सभा, तथा व्यवस्थापक परिषद को, और इन दोनों संस्थाओं की संयुक्त-सभा की कार्यवाही में भाग ले सकता है। मंत्री उसी सभा में मत दे सकते हैं, जिसके वे सदस्य होते हैं। एडवोकेट जनरल को मत देने का अधिकार नहीं होता।

सदस्यों सम्बन्धी नियम—कोई व्यक्ति दोनों सभाओं का सदस्य नहीं हो सकता। जो व्यक्ति दोनों सभाओं का सदस्य चुना जाय, उसे किसी एक में अपना स्थान रिक्त कर देना होता है। अगर किसी सदस्य में निर्धारित अयोग्यता हो जाय या वह गवर्नर को लिखित त्यागपत्र देदे, तो उसका स्थान रिक्त हो जाता है। अगर किसी सभा का सदस्य, सभा की अनुमति बिना, साठ दिन तक सभा की सब बैठकों से अनुपस्थित रहे तो सभा उसके स्थान को रिक्त घोषित कर सकती है। इन साठ दिनों में वे दिन नहीं गिने जाते, जो दो अधिवेशनों के बीच में हों, या जिनमें लगातार चार से अधिक दिन तक कार्य स्थगित रहा हो।

व्यवस्थापक मण्डल की कार्यपद्धति—व्यवस्थापक मंडलों की कार्यप्रणाली के नियम बहुत विस्तृत हैं। हम यहाँ उनमें से कुछ खास-खास का ही उल्लेख कर सकते हैं। दोनों सभाओं में से प्रत्येक के भवन में आदमियों के बैठने के लिए अलग-अलग 'ब्लॉक' होते हैं। यह पहले ही निश्चय कर लिया जाता है कि कम-से-कम कितने सदस्यों के होने से उनका एक दल माना जायगा। भिन्न-भिन्न दलों का निर्माण हो जाने पर प्रत्येक दल का नेता स्पीकर को उस दल के सदस्यों की संख्या सूचित कर देता है। इस पर उस दल को सभा-भवन में एक ब्लॉक मिल जाता है। सरकारी पक्ष के लोग स्पीकर को दायीं ओर बैठते हैं। उनकी जगहों को 'ट्रेज़री बेंच' कहते हैं। सरकारी पक्ष से दूसरे नम्बर पर जिस दल का बहुमत होता है, वह सरकारी पक्षवालों के सामने, स्पीकर के बायीं ओर बैठता है। उसे विरोधी दल ('ओपोजिशन पार्टी') और उसके बैठने की जगहों को 'ओपोजिशन बेंच' कहते हैं। बैठने की इस व्यवस्था से सरकारी पक्ष तथा विरोधी पक्ष के, एवं भिन्न-भिन्न दलों के मत गिनने में सुविधा होती है।

भवन में दर्शकों और पत्र-प्रतिनिधियों के बैठने की भी व्यवस्था होती है, उनकी जगहों को 'दशक गेलरी' और 'प्रेस गेलरी' कहा जाता है। प्रत्येक दर्शक को एक प्रवेशपत्र या 'पास' लेना होता है। 'पास' अपने परिचय के किसी सदस्य द्वारा लिया जा सकता है; यह जिस व्यक्ति के लिए होता है, वही इसका उपयोग कर सकता है; यह दूसरे व्यक्ति के काम नहीं आ सकता।

जिस दिन सभा में कोई नया सदस्य उपस्थित होता है, उस दिन का पहला कार्य उस सदस्य का निर्धारित शपथ लेना होता है। यह कार्य कभी-कभी ही होता है। साधारणतया दैनिक कार्यक्रम में पहली बात प्रश्नोत्तरो की होती है; यह कार्य थोड़ी ही देर का होता है। इसके बाद कानूनी मसविदों या प्रस्तावों पर विचार होता है। (सार्वजनिक महत्व के विषय की बहस करने के लिए) अधिवेशन स्थगित करने के

प्रस्ताव का विचार शाम के चार बजे होता है ।

गवर्नर को अधिकार है कि ग़ैर-सरकारी कार्य के लिए समय और क्रम निश्चय करे । सभापति को अधिकार है कि किसी प्रश्न के पूछे जाने की अनुमति, इस आधार पर देने से इनकार करदे कि इसका प्रांतिय सरकार से विशेष सम्बन्ध नहीं है । सार्वजनिक महत्व के किसी खास विषय को बहस करने के लिए परिषद के अधिवेशन को, स्थगित करने का प्रस्ताव किया जा सकता है । सभापति को अधिकार है कि वह किसी सदस्य के भाषण में पुनरुक्ति या अप्रासंगिक विषय का उल्लेख करे, और, उसको बोलने से रोके ।

सदस्य जब स्पीकर अथवा मंत्रिमंडल के किसी कार्य का विरोध करना चाहते हैं, तो वे सामूहिक रूप में, सभा-भवन से बाहर चले जाते हैं । इसे 'वाक-आउट' कहते हैं ।

शासन-विधान के नियमों का पालन करते हुए, प्रत्येक सभा अपना कार्यपद्धति के नियम बना सकता है ।

संयुक्त अधिवेशन—जिस प्रांत में व्यवस्थापक परिषद भो हो, उसमें गवर्नर दोनों सभाओं के संयुक्त अधिवेशन तथा पारस्परिक विचार-विनिमय के नियम उनके सभापतियों का परामर्श लेकर बनाता है । संयुक्त अधिवेशन में प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषद का अध्यक्ष सभापति होता है, और उसकी अनुपस्थिति में वह व्यक्ति सभापति का कार्य करता है जो कार्यपद्धति के नियमों के अनुसार निश्चित हो ।

व्यवस्थापक मंडल का कार्यक्षेत्र—प्रत्येक प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल तीन प्रकार के कार्य करता है—(१) शासन-कार्य की जाँच के लिए आवश्यक प्रश्न पूछना और प्रस्ताव करना । (२) कानून बनाना । (३) सरकारी आय-व्यय निश्चित करना । इसके सम्बन्ध में आवश्यक बातें आगे दी जाती हैं ।

प्रश्न और प्रस्ताव शासन-कार्य की जाँच के लिए व्यवस्थापक मंडल के सदस्यों को प्रश्न पूछने और प्रस्ताव करने का वैसा

ही अधिकार है, जैसा भारतीय व्यवस्थापक मण्डल के सम्बन्ध में, हम पाँचवें परिच्छेद में बता आये हैं। प्रश्न पूछ कर सरकार का ध्यान जनता की शिकायतों की ओर आकर्षित किया जाता है, और महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला जाता है।

प्रस्ताव तीन प्रकार के होते हैं, इस विषय में खुलासा पार्लिमेंट के प्रसंग में लिखा जा चुका है। मंडल में संघ-न्यायालय, या हाईकोर्ट के किसी जज के, अपने कर्तव्य को पालन करने के समय के, व्यवहार पर वादानुवाद नहीं हो सकता। मंडल में पेश होने वाले प्रस्ताव तीन तरह के होते हैं,—(१) साधारण नीति का प्रस्ताव, (२) सार्वजनिक महत्व के विषय की बहस के लिए कार्यवाई स्थगित करने का अर्थात् 'काम-रोको' प्रस्ताव, और (३) सरकारी नाति से असन्तोष प्रकट करने के लिए मंत्रिमंडल के प्रति निन्दा या अविश्वास का प्रस्ताव। मंडल में किसी प्रस्ताव या उसके किसी भाग के उपस्थित किए जाने से रोकने का अधिकार उस प्रांत के गवर्नर को होता है।

प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल के कानूनों का क्षेत्र—

विधान के अनुसार कानून सम्बन्धी विषयों की तीन सूचियाँ हैं:—
(क) केन्द्रीय सूची, (ख) सम्मिलित सूची, और (ग) प्रांतीय सूची। केन्द्रीय और सम्मिलित सूची के विषय 'भारतीय पार्लिमेंट'-शीर्षक परिच्छेद में बताए जा चुके हैं, प्रान्तीय सूची के विषय संक्षेप में निम्नलिखित हैं:—

१—सार्वजनिक शान्ति [सेना छोड़कर], अदालत का संगठन और फ़ीस [संघ-न्यायालय छोड़कर]। २—संघ-न्यायालय को छोड़कर, अन्य न्यायालयों का इस सूची के विषयों के सम्बन्ध में निर्णय देने का अधिकार, माल की अदालतों की कार्यपद्धति। (३) पुलिस। (४) जेल। (५) प्रांत का सार्वजनिक ऋण। (६) कुछ प्रांतीय सरकारी नौकरियों, नौकरी-कमीशन। (७) प्रांतीय पेंशन। (८) प्रांतीय निर्माण-कार्य, भूमि और इमारतें। (९) सरकारी तौरसे भूमि प्राप्त करना। (१०) पुस्तकालय

तथा अजायबघर । (११) प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल के चुनाव । (१२) प्रांतीय मंत्रियों, तथा व्यवस्थापक सभाओं और परिषदों के सभापति, उपसभापति, और सदस्यों का वेतन और भत्ता । (१३) स्थानीय स्वराज्य संस्थाएँ । (१४) सार्वजनिक स्वास्थ्य और सफाई: अस्पताल, जन्म और मृत्यु का लेखा । (१५) तार्य-यात्रा । (१६) कब्रिस्तान । (१) शिक्षा । (१८) सड़के, पुल, घाट और आवागमन के अन्य साधन, [बड़ी रेलों को छोड़कर] । (१९) जल प्रबन्ध, आब-पाशी, नहर, बांध, तालाब और, जल से उत्पन्न होनेवाली शक्ति । (२०) कृषि, कृषि-शिक्षा और अनुसंधान, पशु-चिकित्सा, तथा मवेशी-खाना । (२१) भूमि, मालगुजारी और किसानों के पारस्परिक सम्बन्ध । (२२) जंगल । (२३) खान, तेल के कुओं का नियंत्रण, और खनिज उन्नति । (२४) मछलियों का व्यवसाय । (२५) जंगली पशुओं की रक्षा । गैस, और गैस के कारखाने । (२७) प्रांत के अन्दर का व्यापार, वाणिज्य, मेले-तमाशे, साहूकारा और साहुकार । (२८) सराय । (२९) उद्योग धंधों की उन्नति, माल की उत्पत्ति, पूर्ति और वितरण । (३०) खाद्य पदार्थों आदि में मिलावट; तौल और नाप । (३१) शराब, और अन्य मादक वस्तुओं सम्बन्धी क्रय-विक्रय, और व्यापार [अफीम की उत्पत्ति छोड़ कर] । (३२) गरीबों का कष्ट-निवारण, बेकारी । (३३) कारपोरेशनों का संगठन, संचालन और परिसमाप्ति, अन्य व्यापारिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, धार्मिक आदि संस्थाएँ; सहकारी समितियाँ । (३४) दान, और दान देनेवाली संस्थाएँ । (३५) नाटक, थियेटर और सिनेमा । (३६) जुआ और सट्टा । (३७) प्रांतीय विषयों सम्बन्धी कानूनों के विरुद्ध होनेवाले अपराध । (३८) प्रांत के काम के लिए आंकड़े तैयार करना । (३९) भूमि का लगान, और मालगुजारी सम्बन्धी पैमाइश । (४०) आबकारी, शराब, गांजा अफीम आदि पर कर । (४१) कृषि सम्बन्धी आय पर कर । (४२) भूमि, इमारतों पर कर । (४३) कृषि-भूमि के उत्तराधिकार सम्बन्धी कर । (४४) खनिज अधिकारों

पर कर । (४५) व्यक्ति-कर । (४६) व्यापार, पेशे, धंधे पर कर । (४७) पशुओं और किशित्यो पर कर । (४८) माल की विक्री और विज्ञापनो पर कर । (४९) चुंगी । (५०) विलासिता की वस्तुओं पर कर; इसमें दावत, मनोरंजन, जुए-सट्टे पर का कर सम्मिलित है । (५१) स्टाम्प । (५२) प्रांत के भीतर के जलमार्गों में जानेवाले माल और यात्रियों पर कर (५३) मार्ग-कर [टोल] । (५४) अदालती फीस को छोड़कर किसी प्रांतीय विषय सम्बन्धी फ़ैस ।

इन विषयों के अतिरिक्त, सम्मिलित विषयों के सम्बन्ध में भी प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल कानून बना सकता है; परन्तु केवल उसी दशा में, जबकि पार्लिमेंट न बनाए । ये विषय पहले बताए जा चुके हैं । यदि प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल और पार्लिमेंट के बनाए, किसी विषय के कानूनों में परस्पर विरोध हो तो पार्लिमेंट का बनाया कानून ठोक समझा जाता है ।

कानून कैसे बनते हैं ?—आय-व्यय सम्बन्धी मसविदों के विशेष नियमों का उल्लेख आगे किया जायगा । उन्हें ध्यान में रखते हुए किसी कानून का मसविदा व्यवस्थापक सभा में, और जिस प्रान्त में व्यवस्थापक परिषद भी है, वहाँ किसी सभा में, उसके सदस्य द्वारा उपस्थित किया जा सकता है । मसविदा किसी ऐसे विषय के ही सम्बन्ध में हो सकता है, जो प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल के अधिकार में हो । सरकारी मसविदा सरकार के उस सदस्य द्वारा उपस्थित किया जाता है, जो मसविदे के विषय का अधिकार रखता हो । जब कोई गैर-सरकारी सदस्य कोई मसविदा उपस्थित करना चाहता है तो उसे अपने इस विचार की, पहले सूचना देनी होती है । जब कोई मसविदा नियमानुसार उपस्थित हो चुकता है, तो वह प्रायः एक विशेष कमेटी में भेजा जाता है; इस कमेटी का चेयरमेन वह सरकारी सदस्य होता है, जिसे इस विषय का अधिकार हो । उसकी रिपोर्ट उस सभा में पेश की जाती है, जिसका कि उक्त प्रस्तावक सदस्य हो । पश्चात् मसविदे के

प्रत्येक वाक्यांश पर पृथक्-पृथक् विचार किया जाता है। सर्वसम्मति या बहुमत द्वारा स्वीकृत होने पर मसविदा उस सभा में पास हुआ कहा जाता है। यदि उस प्रान्त में दूसरी व्यवस्थापक सभा हो तो उपर्युक्त, पहली सभा में पास हुआ, मसविदा दूसरी सभा में भेजा जाता है। जब वह इस सभा में भी उसी रूप में पास हो जाता है, या ऐसे संशोधनों सहित पास हो जाता है, जिन्हें पहली सभा स्वीकार करले, तो यह मसविदा दोनों सभाओं में, अर्थात् व्यवस्थापक मंडल में, पास हुआ कहा जाता है।

यदि कोई मसविदा जो व्यवस्थापक सभा में पास हो गया है, और व्यवस्थापक परिषद में भेज दिया गया है, परिषद में आने के बारह महीने समाप्त होने से पूर्व गवर्नर की स्वीकृति के लिए न भेजा जाय तो गवर्नर उस पर विचार करने और मत लेने के लिए दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक करा सकता है। यदि दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक में मसविदा (यदि कोई संशोधन दोनों सभाओं द्वारा स्वीकृत हो तो उसके सहित) दोनों सभाओं के उपस्थित, और मत देनेवाले सदस्यों के बहुमत से पास होजाय तो वह दोनों सभाओं में (पृथक्-पृथक्) पास हुआ समझा जाता है।

संशोधन किस प्रकार उपस्थित किए जा सकते हैं, इसके सम्बन्ध में नियम निर्धारित हैं, और उनके सम्बन्ध में सभापति का स्थान ग्रहण करनेवाले व्यक्ति का निर्णय अन्तिम माना जाता है।

प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा द्वारा, या जिस प्रान्त में व्यवस्थापक परिषद भी है, दोनों सभाओं द्वारा पास किया हुआ मसविदा गवर्नर के सामने रखा जाता है। गवर्नर को यह अधिकार है, कि वह उसको स्वीकार करे; या अपनी स्वीकृति को रोकले, उसे गवर्नर-जनरल के विचारार्थ रख छोड़े। गवर्नर को यह भी अधिकार है कि वह मसविदे को इस संदेश सहित लौटादे कि सभा या सभाएँ मसविदे या उसके किन्हीं अंशों पर पुनः विचार करे, विशेषतया उसके द्वारा सूचित संशोधन

को उपस्थित करने का विचार करें। इस पर सभा या सभाओं को उस मसविदे के सम्बन्ध में पुनः विचार करना पड़ता है।

जब कोई मसविदा प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल से पास होजाने पर, गवर्नर-जनरल के विचारार्थ रख छोड़ा जाता है, तो गवर्नर-जनरल को अधिकार है कि वह उसे स्वीकार करे या अपनी स्वीकृति को रोके। गवर्नर-जनरल चाहे तो गवर्नर को यह हिदायत कर सकता है कि वह उस मसविदे को सभा या सभाओं में, निर्धारित संदेश सहित भेज दे। जब मसविदा इस प्रकार लौटा दिया जाता है तो सभा या सभाओं को उस पर तदनुसार विचार करना होता है, और अगर ये उसे मूल रूप में, या संशोधनो सहित, पास करदे तो यह पुनः गवर्नर-जनरल के विचारार्थ रखा जायगा।

इस प्रकार प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल द्वारा पास किया हुआ मसविदा, जब उसे गवर्नर स्वीकार कर ले, अथवा, यदि गवर्नर उसे गवर्नर-जनरल की स्वीकृति के लिए रख छोड़े तो जब क्रमशः इनकी स्वीकृति मिल जाय, कानून बन जाता है।

व्यवस्थापक सभा भंग होने पर कानूनों सम्बन्धी कार्यवाई—किसी प्रान्त की व्यवस्थापक सभा भंग होने के समय कानूनों के जो मसविदे उस सभा में विचाराधीन होंगे, या वहाँ पास होकर व्यवस्थापक परिषद में विचाराधीन होंगे वे रद्द हो जायेंगे। उन पर पुनः विचार उसी दशा में होगा, जब उनके सम्बन्ध में सब कार्यवाई फिर नए सिरे से की जायगी। इस प्रकार व्यवस्थापक सभा में स्वीकृत जिन मसविदों पर व्यवस्थापक परिषद में विचार हो रहा होगा, उनको व्यवस्थापक सभा का नया चुनाव होने पर पुनः नियमानुसार पास करना होगा, तब जाकर व्यवस्थापक परिषद में उन पर विचार हो सकेगा। इसके विपरीत, व्यवस्थापक परिषद के जो मसविदे परिषद में विचाराधीन होंगे, और व्यवस्थापक सभा में पास न हुए होंगे, वे व्यवस्थापक सभा के भंग होने पर रद्द नहीं होंगे।

गवर्नर के आर्डिनेंस—जब किसी प्रांत के व्यवस्थापक मण्डल का कार्यकाल न हो, यदि गवर्नर को यह निश्चय हो जाय कि तत्कालीन परिस्थिति में तुरंत कार्रवाई करना आवश्यक है तो वह आवश्यक आर्डिनेंस या फरमान जारी कर सकता है। इस प्रकार बनाये हुए आर्डिनेंस का वही बल और प्रभाव होता है जो प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल द्वारा बनाये और गवर्नर से स्वीकृत कानून का होता है। परन्तु, ऐसा प्रत्येक आर्डिनेंस प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल के सामने रखा जायगा, और मण्डल की आगामी सभा होने से छः सप्ताह समाप्त होने पर अमल में आना बन्द हो जायगा; यह आर्डिनेंस इस अवधि से पहले भी अमल में आना बन्द हो जायगा, यदि उसको नापसंद करने का प्रस्ताव प्रांतीय व्यवस्थापक सभा में (और अगर उस प्रांत में व्यवस्थापक परिषद हो तो उसमें भी) पास हो जाय, या यदि गवर्नर उसे वापिस लेले।

प्रांतीय व्यवस्थापक मंडलों का अधिकार—सन् १९३५ के विधान के अनुसार प्रांतीय व्यवस्थापक मंडलों के कार्य-सम्पादन के सम्बन्ध में अनेक बाधाएँ तथा सीमाएँ थीं। अब उनका अन्त हो गया है। अब ब्रिटिश पार्लिमेंट प्रांतों के सम्बन्ध में कोई कानून नहीं बना सकता, और न सम्राट् प्रांतीय व्यवस्थापक मंडलों द्वारा बनाए हुए कानूनों को रद्द कर सकता है। पहले गवर्नर-जनरल अपने विवेक और व्यक्तिगत निर्णय से सम्बन्धित अधिकारों के कारण प्रांतीय व्यवस्थापक मंडलों के कानून-निर्माण में कई प्रकार की रुकावटें डाल सकता था। अब उसके वे अधिकार लुप्त होगए। पहले कई विषयों के प्रस्ताव प्रांतीय व्यवस्थापक मंडलों में उपस्थित नहीं किए जा सकते थे, और कुछ को उपस्थित करने के लिए गवर्नर-जनरल या गवर्नर की पूर्व अनुमति लेना अनिवार्य था। सन् १९४७ के (भारतीय स्वतंत्रता) विधान द्वारा ये सब रुकावटें हटा दी गई हैं। अब प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल अपने क्षेत्र के लिए यथेष्ट कानून बना सकते हैं। उनके अधिकार उनके तथा भारतीय पार्लिमेंट का कार्य विभाजित करने

वाले नियमों से ही सीमित हैं, किसी अन्य बाह्य नियंत्रण से नहीं।

आय-व्यय के विषयों सम्बन्धी कार्य-पद्धति— गवर्नर प्रति वर्ष प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल के सामने उस वर्ष के अनुमानित आय-व्यय का नक्शा उपस्थित कराता है। उसमें व्यय का दो प्रकार की मदों की रकमें पृथक्-पृथक् दिखाई जाते हैं। (१) वह व्यय जो पूर्व निश्चित है, जो प्रांतीय कोष से करना ही पड़ता है, जिस पर प्रांतीय व्यवस्थापक सभा का मत नहीं लिया जाता, और, (२) वह व्यय जिस पर व्यवस्थापक सभा का मत लिया जाता है। कर-निर्धारण तथा व्यय के लिए माँग के प्रस्तावों पर व्यवस्थापक परिषदों का मत नहीं लिया जाता।

व्यय की निम्नलिखित मदों पर प्रांतीय व्यवस्थापक सभा को मत देने का अधिकार नहीं है :—

(क) गवर्नर का वेतन और भत्ता, तथा उसके कार्यालय सम्बन्धी निर्धारित व्यय।

(ख) प्रांतीय ऋण सम्बन्धी व्यय, सूद आदि।

(ग) मंत्रियों और एडवोकेट-जनरल का वेतन और भत्ता।

(घ) हाईकोर्ट के जजों का वेतन और भत्ता।

(च) 'पृथक्' क्षेत्रों का शासन सम्बन्धी व्यय।

(छ) अदालती निर्णयों के अनुसार होनेवाला व्यय।

(ज) अन्य व्यय जो शासन-विधान या किसी प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल के कानून के अनुसार किया जाना आवश्यक हो।

इनमें से (क) को छोड़ कर अन्य मदों पर व्यवस्थापक मण्डल में वादानुवाद हो सकता है, (मत नहीं लिए जाते)। उपर्युक्त (क) से (ज) तक की मदों को छोड़ कर अन्य विषयों के खर्च के प्रस्ताव व्यवस्थापक सभा के मत के लिए, गवर्नर के नाम से, माँग के रूप में रखे जाते हैं। इस सभा को अधिकार है कि यह किसी माँग को स्वीकार करे, अस्वीकार करे, या उसे कुछ घटाकर स्वीकार करे। इस सभा द्वारा स्वीकृत व्यय

की मटे गवर्नर द्वारा प्रमाणित की जाकर सभा में रखदी जाती हैं । इनके बाहर किसी प्रकार का व्यय नहीं किया जाता ।

व्यय का पूरक नक्शा—यदि किसी वर्ष निर्धारित व्यय से अधिक खर्च करने की आवश्यकता हो तो गवर्नर सभा या दोनों सभाओं के सामने उस अधिक खर्च को सूचित करनेवाला पूरक नक्शा उपस्थित कराएगा, और पूर्वोक्त नियम का बाते उस नक्शे और उस खर्च के सम्बन्ध में उसी प्रकार लागू होंगे, जैसे वार्षिक आय-व्यय-अनुमान-पत्र और उसमें उल्लिखित व्यय के सम्बन्ध में लागू होता है ।

कर-निर्धारण सम्बन्धी विशेष नियम—निम्नलिखित प्रकार के कानून के मसविदे या उनके संशोधन का प्रस्ताव गवर्नर की सिफारिश बिना व्यवस्थापक सभा में नहीं रखा जाता—(क) जिसमें कर लगाने या बढ़ाने की व्यवस्था हो । (ख) जो प्रांतीय सरकार द्वारा रुपया उधार लिए जाने के सम्बन्ध में हो । (ग) जो किसी व्यय को प्रांतीय आय से चुकाया जानेवाला अनिवार्य व्यय घोषित करता हो, या उसे बढ़ाता हो ।

बजट अधिवेशन—व्यवस्थापक मण्डल की एक मुख्य बैठक फरवरी के अन्त और मार्च के आरंभ में होती है । इसमें आगामी वर्ष के प्रांतीय आय-व्यय का अनुमान-पत्र उपस्थित किया जाता है; वैसे, वास्तव में यह अनुमान-पत्र सदस्यों के पास १५ दिन पहले भेज दिया जाता है । सदस्य भिन्न-भिन्न खर्चों का विचार करते हैं, और यदि उन्हें किसी खर्च में कुछ कटौती की सूचना देना हो तो वे, सभा में बजट उपस्थित किये जाने से तीन दिन पहले, उस सूचना को सेक्रेटरी के पास भेज देते हैं । यदि किसी खास मद में खर्च की कमी न करते हुए केवल उस विभाग की कार्य-प्रणाली की आलोचना या शिकायत करनी हो तो उस मद में कटौती करके, एक रुपये की स्वीकृति सूचित की जाती है । इस से उस कटौती सम्बन्धी चर्चा के प्रसंग में सदस्य उस विभाग के विषय में अपना विचार प्रकट कर सकते हैं ।

बजट बड़ा होता है; वह सभा में पढ़ा नहीं जाता। उसे उपस्थित करते समय अर्थ-मन्त्री उसके सम्बन्ध में अपना भाषण देता है। पश्चात् (अगले दिन) उस बजट पर चर्चा होती है, इसमें सदस्य कुल बजट पर अपने साधारण विचार प्रकट करते हैं। इसके बाद एक हफ्ते तक सदस्यो द्वारा प्रस्तुत, भिन्न-भिन्न मदों की कटौतियों की चर्चा होती है। पहले किसी विभाग की नीति की आलोचना करने के उद्देश्य से प्रस्तुत की हुई कटौतियों पर विचार होता है। पश्चात्, अन्य कटौतियों का विचार होकर, एक-एक मद के खर्च को माँग की जाती है। बजट की बहस के लिए निश्चित किये हुए सप्ताह के अन्तिम दिन के पाँच बजे कटौतियों की समाप्ति ('गिलोटिन') हो जाती है; इसके बाद किसी कटौती पर बहस नहीं होती। सदस्य के आग्रह करने पर कटौती की रकम पर मत लिये जाते हैं, और यदि वह स्वीकार हो जाय तो उस मद की रकम को उसमें आवश्यक कमी करके मंजूर किया जाता है। इस प्रकार सारा शेष कार्य थोड़ी देर में ही निपटा लिया जाता है।

विशेष वक्तव्य—सन् १९३५ के विधान से गवर्नर को आर्थिक विषयों में अनेक अधिकार थे, जिनका उपयोग वह अपने विवेक या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार, गवर्नर-जनरल के नियंत्रण में, करता था। भारतीय स्वतंत्रता-विधान द्वारा उन अधिकारों का अन्त होजाने से प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों के आर्थिक अधिकार बढ़ गए हैं, और प्रान्तों में, केन्द्र की तरह, आर्थिक स्वराज्य की स्थापना हो गई है।

तेरहवाँ परिच्छेद देशी रियासतें

पिछले दो परिच्छेदों में प्रान्तों के सम्बन्ध में लिखा गया है। अब देशी रियासतों के सम्बन्ध में विचार करना है। भारत के स्वतंत्र होने से पहले रियासतें दोहरी अधीनता में थीं, — राजाओं की तथा अंगरेजों की। रियासतों की जागीरी जनता तो तेहरी अधीनता में थी, कारण वह जागीरदारों के भी अधीन थी। भारत के स्वतंत्र होने पर रियासतों के शासन-प्रबन्ध में विलक्षण परिवर्तन हुआ है। वे क्रमशः प्रान्तों के स्तर पर आ रही हैं। इसे अच्छी तरह समझने के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि सन् १९४७ से पहले उनकी क्या स्थिति थी।

(१)

भारत के स्वतंत्र होने से पहले

रियासतों का साधारण परिचय—अंगरेजों के शासन-काल में भारत का खासा बड़ा भाग देशी रियासतों में बंटा रहा है, इसे कुछ आदमी 'भारतीय भारत' भी कहते थे। यहाँ के निवासियों पर अंगरेजी सभ्यता और रंग-दंग का प्रभाव कम पड़ा और यहाँ की शासन-पद्धति में भी ब्रिटिश भारत से बहुत अन्तर रहा। सन् १९३५ के विधान के अनुसार, देशी रियासत ('स्टेट') भारतवर्ष के ऐसे किसी भी भाग को कह सकते थे, जो ब्रिटिश भारत का भाग न हो, और जिसे सम्राट् ने रियासत मान लिया हो, चाहे वह राज्य कहा जाय या रियासत, या जागीर या और कुछ। इस प्रकार देशी रियासत का

मुख्य लक्षण यही था कि सम्राट् ने उसे रियासत माना है। अस्तु, यहाँ देशी रियासतों से भारतवर्ष के उन भागों का प्रयोजन था, जिनका आन्तरिक शासन यहाँ के ही राजा या सरदार, विविध संधियों के अनुसार, सम्राट् की अधिनता में रहते हुए, करते थे। छोटी-बड़ी ये सब रियासत लगभग ५६० थीं। इनमें से हैदराबाद, बड़ौदा, मैसूर, कश्मीर और गवालियर आदि कुछ तो अपने विस्तार और जनसंख्या में योरोप के एक-एक राष्ट्र के समान, तथा दो-दो करोड़ रुपए से अधिक आय वाली थीं, और बहुत सा रियासतें साधारण गाँव सरोखी थीं। जिन्हें वास्तव में रियासत कहा जाना चाहिए था, उनकी संख्या दो सौ से भी कम थी, शेष सनदी जागिरे ('इस्टेट्स') थीं, जिनके अधिपति सरदार या 'चोफ' कहलाते थे। केवल ३० ही रियासतें ऐसी थीं, जिनकी आबादी, क्षेत्रफल और साधन यहाँ के औसत जिले के समान थे।

शासन-प्रबन्ध—अधिकतर देशी रियासतों में कोई शासन-विधान नहीं था। उनका शासन, शासक की व्यक्तिगत इच्छा, रुचि या योग्यता आदि के अनुसार बदलता रहता था। जिन रियासतों का शासन-प्रबन्ध कुछ निश्चित था, उनमें भी परस्पर में समानता नहीं थी, प्रायः सबका अपना-अपना निराला ढंग था। कहीं-कहीं तो महाराजा (प्रधान शासक) के बाद मुख्याधिकारी दीवान होता था, और सब बड़े-बड़े अधिकारी उसके अधीन रहते थे। कहीं-कहीं दीवान प्रधान-मंत्री होता था, और विविध विभागों का प्रबन्ध करनेवाले मंत्री उसके सहायक होते थे। किसी-किसी रियासत में प्रबन्धकारिणी कौंसिल थी, इसके सदस्य भिन्न-भिन्न विभागों का संचालन करते थे, परन्तु सब पर महाराजा का नियंत्रण रहता था।

केवल तीस रियासतों में व्यवस्थापक सभाएँ थीं। इनकी सभाओं में से भी अधिकतर में सरकारों सदस्यों की काफी संख्या थी, तथा गैर-सरकारी सदस्य भी जनता द्वारा निर्वाचित न होकर नामज़द होते थे; अथवा म्युनिसिपलिटियों आदि द्वारा चुने जाते थे। वास्तव में देशी

रियासतों में निर्वाचन-प्रथा का बहुत ही कम उपयोग हुआ । जनता को कानून-निर्माण कार्य के लिए अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं था । फिर, देशों रियासतों की अधिकतर व्यवस्थापक सभाओं को कानून बनाने या बजट को मर्दें स्वीकार करने का विशेष अधिकार न होने से, वे एक प्रकार की परामर्श देने वाली संस्थाएँ थीं; उनका शासकों पर कुछ नियंत्रण नहीं था ।

अधिकांश रियासतों में निराले-निराले कानून प्रचलित थे । कुछ में तो न्याय सम्बन्धी कानून का अभाव ही कहा जा सकता था; शासकों की इच्छा ही कानून थी । लगभग चालीस रियासतों में हाईकोर्ट कुछ-कुछ ब्रिटिश भारत के ढंग पर संगठित थे । कुछ रियासतों में न्याय-विभाग शासन विभाग से पृथक् था; परन्तु ऐसा रियासतों को संख्या केवल ३४ के ही लगभग थी ।

कुछ थोड़ी-सी उन्नत रियासतों को छोड़ कर अन्य रियासतों में म्युनिसिपैलिटियों आदि स्थानीय संस्थाओं की भी बहुत कमी थी । कितनी ही रियासतों की तो राजधानी में भी म्युनिसिपैलिटी नहीं थी; अथवा, यदि थी भी, तो उसमें नागरिकों का यथेष्ट प्रतिनिधित्व न होकर, राजवर्मचारियों का ही प्रभुत्व रहता था ।

आय-व्यय—अधिकांश देशों रियासतें अपना वार्षिक शासन-विवरण या रिपोर्ट प्रकाशित नहीं करती थीं, और, जो रिपोर्ट प्रकाशित भी होती थीं वे अङ्गरेजी में तो होते ही थीं, इसके अतिरिक्त वे सर्व-साधारण को सुज्ञ नहीं होते थीं । इसलिए यह ठीक-ठीक व्योरेवार मालूम नहीं हो सकता था कि किसी खास वर्ष में किसी रियासत को किस-किस मद से कितनी-कितनी आय हुई तथा वह किस प्रकार खर्च की गई । कुछ रियासतें अपनी आय के अन्दर खर्च करती थीं, कुछ उससे अधिक भी करती थीं । कुछ रियासतों पर ऋण-भार बहुत अधिक था, यद्यपि उन्होंने किसी विशेष उत्पादक कार्य में पूँजी नहीं लगाई थी । हाँ, किसी-किसी रियासत के खजाने में अच्छी सम्पत्ति थी, पर वह

जनता के काम नहीं आती थी ।

अधिकतर राजा प्रजा के प्रति कुछ भी उत्तरदायी नहीं थे, वे स्वच्छानुमार भौति-भौति के कर लगाते थे, और जब चाहते वे उन्हें बढ़ा देते थे; किसी व्यवस्थापक सभा आदि का कुछ नियंत्रण नहीं था । खर्च के विषय में भी वे प्रायः स्वच्छन्द थे । वे आय का अधिकांश भाग शिकार, नाच, तमाशे, विलायत-यात्रा, शौकीनो या विलासिता में, और, भारत-सरकार के पदाधिकारियों के स्वागत-सत्कार आदि में खर्च करते थे । उनका स्वयं अपने लिए या राजपरिवार के वास्ते लिया जाने वाला द्रव्य निर्धारित नहीं था, और यदि कहीं निर्धारित भी था तो उसकी मात्रा काफी अधिक थी । अवश्य ही त्रावंकोर आदि किसी-किसी रियासत में ऐसा नही होता था; पर कुल रियासतों को देखते हुए इनका संख्या अत्यल्प थी । प्रायः नरेश अपने कृपा-पात्रों को उच्च पदाधिकारी बनाकर खूब वेतन आदि देते थे । जिन थोड़े से राजाओं की रुचि सत्कार्यों में होती थी, उनके द्वारा दान-धर्म आदि लोकोपकारी कार्यों में भी अच्छा खर्च हो जाता था ।

राजाओं का सम्मान—भारत-सरकार की ओर से राजा दो प्रकार से सम्मानित होते थे—(१) उपाधियां तथा अवैतनिक सैनिक पदों से, और, (२) तोपों की सलामी से । कुछ उपाधियाँ पैत्रिक और स्थायी रहती थीं, तथा कुछ अस्थायी और व्यक्तिगत रहती थीं । ब्रिटिश सरकार कभी-कभी राजाओं को अवैतनिक सैनिक पद भी देती थी, जैसे लेफ्टिनेंट-जनरल या कर्नल आदि । देशी नरेशों में से ११८ को सलामी का सम्मान प्राप्त था । इनमें से जब कोई नरेश अपनी रियासत से बाहर जाता था, या बाहर से आता था, अथवा राजा की हैसियत से ब्रिटिश भारत में आता था, या यहाँ से लौटता था, तो उसके सम्मान के लिए निर्धारित संख्या में तोपें छोड़ी जाती थीं; यह संख्या ६ से २१ तक होती थी । सलामी के तीन भेद थे—स्थायी, व्यक्तिगत, और स्थानीय अर्थात् केवल राज्य के भीतर मिलनेवाली सलामी ।

देशी रियासतों के अधिकार—देशी रियासतों के निवासी अपने-अपने नरेश की प्रजा थे। साधारणतया इन पर, अथवा इनके शासकों पर, ब्रिटिश भारत का कानून नहीं लग सकता था। हाँ, देशी रियासत में रहनेवाली ब्रिटिश प्रजा पर, तथा रेज़िडेंसी, छावनी, रेल या नहर की भूमि में, अथवा राजकोट या बड़वान (गुजरात) जैसे स्थानों में, जहाँ व्यापार आदि के कारण बहुत से अंगरेज रहते थे, ब्रिटिश भारत के ही कानून का व्यवहार होता था। ब्रिटिश भारत का कोई अपराधी यदि किसी देशी रियासत में भाग जाता तो वह उस राजा की आज्ञा से पकड़ा जाकर, ब्रिटिश भारत में भेज दिया जाता था। देशी रियासतों की प्रजा अपनी रियासत की सीमा के बाहर ब्रिटिश प्रजा की तरह मानी जाती थी। यदि कोई व्यक्ति हिन्दुस्तान से बाहर जाना चाहता तो उसे भारत-सरकार से 'पासपोर्ट' लेना पड़ता था। साधारणतः राजा अपनी प्रजा से कर लेते थे, तथा उसके दीवानी और कौजदारी मामलों का फैसला करते थे। कुछ राजा अपने यहाँ आने-वाले मान पर चुड़ी लेते थे; कुछ अपने रुपए आदि सिक्के भी ढालते थे; परन्तु इन्हें अपने यहाँ अंगरेज़ी रुपए को वही स्थान देना पड़ता था; जो उसे ब्रिटिश भारत में मिला था।

देशी रियासतों के प्रति भारत-सरकार की नीति यह थी कि जब तक ये उसके प्रति राजभक्ति बनाए रखें और पहले की हुई संधियाँ या शर्तों का यथोचित पालन करती रहें, तब तक सरकार इनकी रक्षा करे, और इनका अस्तित्व बनाए रखे। साधारण दशा में राजा अपनी रियासतों का स्वयं प्रबन्ध करते थे, परन्तु आवश्यक समझने पर भारत-सरकार इनके प्रबन्ध में हस्तक्षेप कर सकती थी। राजा सरकार के परामर्श की अवहेलना नहीं कर सकते थे। भारत-सरकार जिस राजा को अयोग्य या असमर्थ समझती, उसे गद्दी से उतार कर, उसके किसी सम्बन्धी को पदारूढ़ कर देती। सन् १८५७ के बाद निरस्तान राजाओं को उत्तराधिकारी या वारिस गोद लेने की इजाजत दी जाती रही।

वारिस को नाशलग्नी की हाजत में भारत-सरकार देशी रियासत के शासन का प्रबन्ध करती थी। इन रियासतों को इस बात का अनुमति नहीं रहती थी कि सरकार का आज्ञा बिना परस्पर एक-दूसरे से, अथवा किसी विदेशी राष्ट्र, से, किसी प्रकार का राजनैतिक व्यवहार कर सके, अथवा किसी विदेशी को अपने यहाँ नौकर रख सके। इन रियासतों की रक्षा का जिम्मा भारत-सरकार ने अपने ऊपर ले रखा था, और इन्हें सरकार की सहायता के लिए कुछ सेना रखनी पड़ती थी। ये थोड़ी सी सेना अपने आन्तरिक शान्ति अथवा दिखावे के लिए भाँख सकते थे, परन्तु किसी पर चढ़ाई करने, अथवा किसी की चढ़ाई से अपने को बचाने के लिए ये कोई फौज नहीं रख सकती थीं। कोई राजा अपनी रियासत में किला नहीं बना सकता था; पुराने किले की मरम्मत के लिए भी सरकार की अनुमति लेनी होती थी। यदि सरकार को किसी राज्य में तार, रेल या फज के लिए जमीन की आवश्यकता होती, तो वह उसे बिना मूल्य दी जातो था। बड़ी-से-बड़ी देशी रियासत के शासक को यह अधिकार नहीं था कि किसी अंगरेज या अमराकन अपराधी को फाँसी दे सके।

भारत-सरकार का नियंत्रण—सन् १९१७ तक थोड़ी सी ही रियासतों का सम्बन्ध सधे भारत-सरकार से था। मॉटफोर्ड-रिपोर्ट में सिफारिश की गई कि सब बड़ा-बड़ी रियासतों का सम्बन्ध सधे केन्द्रीय सरकार के साथ कर दिया जाय। इस सिफारिश पर क्रमशः अमल होता रहा। यहाँ तक कि केवल आसाम की रियासत को छोड़कर भारतवर्ष की किसी भी रियासत का सम्बन्ध प्रान्तीय शासक (गवर्नर) से नहीं रहा; सब का सम्बन्ध सम्राट्-प्रतिनिधि (वायसराय) से हो गया। अधिकांश रियासतों का सम्बन्ध राजनैतिक विभाग से, और कुछ का विदेश-विभाग से था। कश्मीर, हैदराबाद, ग्वालियर और मैसूर में एक-एक रेजिडेंट था, वह विशेषतया इन्हीं रियासतों सम्बन्धी काम के लिए था। इनमें से किसी रियासत का सम्राट्-प्रतिनिधि से जो पत्र-

व्यवहार आदि होता, वह उसके रेजीडेंट द्वारा ही होता था। अन्य रेजीडेंट कई-कई रियासतों या किसी रियासती समूह सम्बन्धी काम करते थे। इनके अधीन प्रायः दो-तीन पोलिटिकल एजेंट या छोटे रेजीडेंट होते थे, जो बहुत सों छोटी-छोटी रियासतों का कार्य निपटाते थे। इन रियासतों तथा सम्राट्-प्रतिनिधि में होनेवाला पत्र-व्यवहार क्रमशः पोलिटिकल एजेंट और रेजीडेंट के द्वारा होता था। यह तो राजनैतिक विभाग से सम्बन्ध रखनेवाले रियासतों की बात हुई। अन्य (विदेश विभाग से सम्बन्धित) राज्यों में से भूटान और सिक्किम में पोलिटिकल अफसर थे, बलोचिस्तान में रेजीडेंट था, और, पश्चिमोत्तर सोमा-प्रान्त की रियासतों में उस प्रान्त का गवर्नर ही पोलिटिकल एजेंट था।

जाँच-कमीशन—ऐसे भगड़ों के विषय में, जो दो या अधिक रियासतों में, किसी रियासत और किसी प्रान्तीय सरकार में, या किसी रियासत और भारत-सरकार में उपस्थित होता, एवं जब कोई रियासत सरकार अथवा उसके किसी प्रतिनिधि के आदेश से असन्तुष्ट होती, वायसराय एक कमीशन नियुक्त कर सकता था, जो भगड़े वाले मामले की जाँच करके अपनी सम्मति उसके सामने उपस्थित करे। अगर वायसराय इस सम्मति को मंजूर न कर सके तो वह उस मामले को फैसले के लिए भारत-मन्त्री के पास भेज दे। जाँच-कमीशन की व्यवस्था सन् १६२० ई० से हुई थी। सन् १६४२ तक इसके प्रयोग का अवसर नहीं आया। [सन् १६४२ में महाराज रीवा की, संगीन जुमों के सम्बन्ध में एक कमीशन द्वारा इन्दौर रेजीडेन्सी में, जाँच की गई थी।] जब कभी भारत-सरकार को किसी राजा के विरुद्ध बहुत शिकायत हुई, उसने अन्ततः 'स्वेच्छा-पूर्वक' राज्य-त्याग करना उचित समझा। ऐसा प्रतीत होता था कि राजा अपने दोषों पर प्रकाश नहीं पड़ने देना चाहते थे, तथा वे कमीशन के परिणाम का पहले से अनुमान कर, उससे बहुत आशंकित रहते थे।

नरेन्द्र मण्डल—सन् १६१६ के सुधारों के अनुसार, १६२१ से नरेन्द्र-मंडल (चेम्बर-आफ-प्रिंसेज) नामक एक समिति बनाई गई इसमें १२१ सदस्य थे। बड़ी-बड़ा १०६ रियासतों के नरेशों को एक-एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था और १२ सदस्य १२६ नरेशों के प्रतिनिधि थे। शेष छोटी-छोटी रियासतों को इसमें कोई स्थान प्राप्त नहीं था। जिन विषयों का प्रभाव कई रियासतों पर पड़ता, अथवा जिनका सम्बन्ध ब्रिटिश साम्राज्य या ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों से होता, उन पर इस संस्था की सम्मति माँगी जाती थी। इसका सभापति वायसराय होता था; उसकी अनुपस्थिति में राजाओं में से ही कोई प्रधान का कार्य करता था। मंडल के नियम वायसराय, राजाओं की सम्मति लेकर, बनाता था। मंडल प्रति वर्ष एक छोटी-सी स्थायी समिति बनाता था, जिससे वायसराय या सरकार का विदेश-और राजनैतिक विभाग देशी रियासतों सम्बन्धी आवश्यक विषयों में सम्मति लेता था।

मंडल का प्रधान कार्यालय देहली में था। अधिवेशन प्रायः साल में एक बार होता था, उसमें वायसराय द्वारा स्वीकृत विषयों पर ही वादानुवाद होता था। सन् १६२८ ई० तक अधिवेशन को सब कार्रवाई सुप्त रखा जाती थी, पाछे इसमें कुछ दर्शकों को भी उपस्थित होने की अनुमति मिलने लगी।

नरेन्द्र मण्डल ने जनता का कोई हित-साधन नहीं किया। इसमें प्रायः उन्हीं राजाओं की आवाज सुनी जाती थी, जो भारत-सरकार के विशेष कृपा-पात्र होते थे। हैदराबाद, बड़ौदा और मैसूर आदि के बड़े-बड़े राजा इस मंडल के अधिवेशनों में सम्मिलित नहीं हुए।

संघ विधान और देशी राज्य—सन् १६२७ में ब्रिटिश भारत के शासन-सुधारों के सम्बन्ध में जाँच करने के लिए साइमन-कमीशन की नियुक्ति हुई तो देशी नरेशों को यह चिन्ता सताने लगी कि कहीं वे भविष्य में ऐसी भारत-सरकार की अधीनता या नियंत्रण में न आजायें, जो भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी

हो। उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता का, तथा सम्राट् से सीधा सम्बन्ध रखने का दावा किया।

राजाओं की माँग पर सन् १९२८ ई० में ब्रिटिश सरकार ने देशी रियासतों के सम्बन्ध में जाँच करने के लिए एक कमेटी नियुक्त की, जिसे उनके सभापति के नाम पर 'बटलर कमेटी' कहते हैं। इस कमेटी ने अपनी जाँच के फल-स्वरूप प्रधानतया ये सिफारिशें कीं कि (१) राजाओं को ब्रिटिश भारत की, आयात-कर आदि उन मदों की आय में से कुछ हिस्सा दिया जाय, जिनका आय देशी रियासतों की जनता से वसूल होता है। (२) देशी रियासतों का सम्बन्ध भारत-सरकार से न रहकर सम्राट् से रहे, अर्थात् ब्रिटिश-भारत के गवर्नर-जनरल से न रहकर सम्राट्-प्रतिनिधि से रहे। (३) रियासतों की कोई स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति नहीं है।

सन् १९३५ ई० में भारतवर्ष का नया (संघ-शासन) विधान बना। इसके सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है। इसमें इस कमेटी की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए राजाओं को बहुत सुविधाएँ दी गई थीं। ब्रिटिश सरकार राजाओं का उपयोग, भारत की बढ़ती हुई राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता के विरुद्ध करना चाहती थी पर विधान का केन्द्र सम्बन्धी भाग अमल में ही नहीं आया।

नई योजना—सन् १९४६-४७ में भारत के लिए नए विधान की योजना बनाने के जो प्रयत्न हुए, उनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। ३ जून १९४७ को ब्रिटिश योजना ने रियासतों के लिए तीन मार्ग छोड़ दिए (१) वे भारतीय संघ में शामिल हों, (२) पाकिस्तान में शामिल हों, या (३) १५ अगस्त को ब्रिटिश सत्ता का अन्त होने पर वे स्वतन्त्र हो जायें। हाँ, वायसराय ने यह स्पष्ट कर दिया था कि 'अपने हिता की रक्षा करने का भार स्वयं देशी राज्यों पर रहेगा, हम भारतवर्ष की सार्वभौम सत्ता भारतीयों के हाथ में दे रहे हैं, देशी राज्यों को भारत (या पाकिस्तान) सरकार से बात करनी चाहिए। सम्राट् की सरकार और

राजाओं के बीच किसी प्रत्यक्ष समझौते या संधि की बात न हो सकेगी। राजाओं की सहायता के लिए ब्रिटिश सेनाएँ नहीं रहेंगी।' इस प्रकार राजाओं के लिए उपर्युक्त तीन रास्ता में से आग्वरी रास्ता कुछ बन्द सा हो गया। तथापि कुछ शासक अपनी 'स्वतंत्रता' का स्वप्न देखने लगे, और वे उसे चरितार्थ करने के लिए कूटनीतिक उपाय काम में लाए।

(२)

भारत के स्वतंत्र होने पर

रियासतों का भारतीय संघ में प्रवेश भारतीय स्वतंत्रता-विधान, सन् १९४७, में ऐसी व्यवस्था की गई थी कि रियासतें भारतीय संघ में प्रवेश-पत्रों द्वारा सम्मिलित होंगी। इन प्रवेश-पत्रों में रियासतों के राजा यह वचन देंगे कि वे निर्धारित शर्तों पर भारतीय संघ में मिलना चाहते हैं, और गवर्नर-जनरल, भारतीय व्यवस्थापक मंडल (पार्लिमेंट), संघ-न्यायालय तथा संघ के अन्य अधिकारी उनकी रियासतों में संघ के लिए उन सब अधिकारों का उपयोग कर सकेंगे, जो उन्हें सन् १९४७ के विधान द्वारा प्रवेश-पत्रों की शर्तों के अन्तर्गत प्राप्त हैं। इन्हीं पत्रों में वे यह भी वचन देंगे कि वे विधान की, अपनी रियासतों में लागू होनेवाली सब बातों को अमल में लायेंगे। प्रवेश-पत्रों में यह स्पष्ट कर दिया जायगा कि किन-किन बातों में रियासतों के सम्बन्ध में भारतीय व्यवस्थापक मंडल और शासनाधिकारियों के अधिकार सीमित होंगे। संघ के अधिकारों को बढ़ाने के लिए राजाओं को प्रथम प्रवेश-पत्र के अतिरिक्त एक दूसरा प्रवेश-पत्र दाखिल करने का अधिकार है। प्रवेश-पत्रों को स्वीकार करने का अधिकार गवर्नर-जनरल को है। स्वीकृत हो जाने के पश्चात् प्रवेश-पत्रों की नकलें भारतीय व्यवस्थापक मंडल में दाखिल कर दी जायंगी, और सब न्यायालयों द्वारा मान्य समझी जायंगी।

इस व्यवस्था के अनुसार भारतीय संघ के क्षेत्र की रियासतें क्रमशः भारतीय संघ में शामिल होती गईं: उन्होंने रत्ना, वैदेशिक मामले और यातायात का विषय भारत-सरकार को सौंप दिया। भोपाल, इन्दौर, त्रावणकोर ने कुछ ढील की, और जूनागढ़, कश्मीर और हैदराबाद का रुख विरोधात्मक रहा। अन्त में ये भी भारतीय संघ में शामिल हो गईं।

रियासतें और राष्ट्रीय एकता—अब ज़रूरत थी कि रियासतों की शासनपद्धति को उत्तरदायी और लोकतन्त्रात्मक बनाकर सारे भारतवर्ष को समान वैधानिक स्तर पर लाया जाय। रियासती जनता बहुत समय से उत्तरदायी शासन के लिए आन्दोलन कर रही थी।* १५ अगस्त १९४७ को अंगरेजों के भारत छोड़ने पर रियासतों में जन-आन्दोलन ने और भी जोर पकड़ा। भारत-सरकार की इससे सहानुभूति होना स्वाभाविक ही था, पर उसकी नीति यह रही कि रियासतों में उत्तरदायी शासन स्थापित होने के साथ आवश्यकतानुसार राजाओं का अस्तित्व और निजी अधिकार बने रहें।

रियासतों में प्रजातन्त्री शासन स्थापित करने में सबसे बड़ी बाधा यह थी कि रियासतों की संख्या दस-बीस नहीं, लगभग छः सौ थी, अधिकांश रियासतें तो मामूली गाँव सरीखी थीं, बहुत सी रियासतों का क्षेत्रफल, जनसंख्या और आय अच्छे शासन की सुविधा की दृष्टि से काफी नहीं थीं। इसका विचार करके स्वतंत्र भारत-सरकार ने रियासतों को प्रान्तों में मिलाने, या उनके संघ बनाने आदि की योजना हाथ में ली। इस विषय में रियासती कार्यकर्ताओं तथा राजाओं से मिलकर समझौते का रास्ता निकालने और योजना को अमल में लाने में रियासती विभाग ने, सरदार पटेल की अध्यक्षता में, अद्भुत कौशल का परिचय दिया।

* इस विषय का विस्तारपूर्वक विवेचन हमारी 'देशी राज्यों की जन-जागृति' में किया गया है।

रियासती विभाग का महत्वपूर्ण कार्य—

रियासती विभाग ५ जुलाई १९४७ को स्थापित किया गया था। जैसा कि इसके सेक्रेटरी श्री एम० के० वेलोदा ने कहा है, यह विभाग अपने प्रारम्भ काल से एक सुदृढ़ और संयुक्त भारत के निर्माण में लगा है। यह विभाग किसी भी पहले वाले अर्थ में राजनैतिक विभाग का उत्तराधिकारी नहीं है, जिसका ध्येय देश के कोने-कोने में बिम्बरी हुई और पिछड़ी हुई लगभग छः सौ रियासतों को बनाए रखना था, जो देश में राजनैतिक जायति के विरुद्ध एक मजबूत मोर्चा बनाए हुए थीं। इस विभाग ने रियासतों के आर्थिक, राजनैतिक, और शासन-व्यवस्था सम्बन्धी जीवन को प्रान्तों के स्तर पर लाने का प्रयत्न किया। इसने अपना यह सिद्धान्त बनाया कि किसी भी ऐसी रियासत को, जो शासन की स्वावलम्बी इकाई न हो सके, अलग न छोड़ा जाय। इस सिद्धान्त के अनुसार इसने पहले उड़ीसा की रियासतों को, जो बहुत ही पिछड़ी हुई थीं, और जो अलग रह कर अपना विकास नहीं कर सकती थीं, उड़ीसा प्रान्त में मिलाया। गुजरात की रियासतों को मिजा कर सौराष्ट्र-संघ की रचना की गई। सैनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के कारण हिमाचल प्रदेश को केन्द्र द्वारा शासित किया जाने लगा। इसी प्रकार अन्य परिवर्तन किए गए।

कहीं भी छोटी रियासतों को बड़ी रियासतों में नहीं मिलाया गया; उन्हें या तो पास के प्रान्तों में मिलाया गया, या रियासती संघों के निर्माण के लिए उनका एकीकरण किया गया। उन रियासतों ने जो रियासती संघों के रूप में एक बनी हैं अपना अलग अस्तित्व समाप्त करना और अपने साधनों और अपनी सार्वभौमिकता को उस नव निर्मित संघ को सौंपना स्वोकार कर लिया है।

प्रान्तों में विलीन रियासतें—पहले कहा जा चुका है कि भारत की अनेक रियासतें बहुत ही छोटा-छोटी थीं, यहाँ तक कि कितनी ही तो मामूली गाव जैसी थीं। इन्हें शासन की इकाई बनाना

सम्भव नहीं था। इसलिए उड़ीसा, मध्यप्रान्त बरार, बिहार, मदरास, संयुक्तप्रान्त, पूर्वी पंजाब, और बम्बई की कुल मिलाकर लगभग सवा दो सौ छोटी-छोटी रियासतें उनके पास के प्रान्तों में मिला दी गईं। बड़ौदा की रियासत ऐसी छोटी नहीं थी। इसका क्षेत्रफल आठ हजार वर्ग मील और जनसंख्या २५ लाख से अधिक तथा वार्षिक आय लगभग ५ करोड़ रुपये थी। पर इसने बम्बई में विलीन होना स्वीकार किया।

इन रियासतों के प्रान्तों में मिलने से प्रायः रियासती जनता को प्रान्तों की जनता के समान राजनैतिक अधिकार और स्वतंत्रता मिलने लगी; हाँ, पिछड़ी हुई रियासतों के प्रान्त में मिलने का तात्कालिक असर प्रान्त पर बोझ बढ़ना ही हुआ। इसके विपरीत, बड़ौदा जैसी प्रगतिशील रियासत को प्रान्त में मिलाने पर प्रान्त की शक्ति बढ़ी, और उसे लाभ पहुँचा है।

प्रान्तों में विलीन रियासतों का शासन प्रान्तों के एक भाग के रूप किया जायगा, अर्थात् इन राज्यों के जो विषय केन्द्रीय सरकार से सम्बन्धित हैं, उनका प्रबन्ध केन्द्र से होगा तथा प्रान्तीय मामलों का प्रबन्ध सम्बन्धित प्रान्तीय सरकार द्वारा किया जायगा।

शासन की दृष्टि से रियासतों के भेद—भारत - सरकार रियासतों का जो पुनर्गठन कर रही है, वह जल्दी ही पूरा होजाने वाला है। फिर वह कुछ स्थायी रूप ग्रहण कर लेगा। इस समय जो स्थिति है, उसको व्यापारिक बातों में परिवर्तन होने की सम्भावना है। स्थूल रूप से उसके भेद इस प्रकार हैं—

१. केन्द्र द्वारा शामिल क्षेत्र
२. रियासती संघ
३. पृथक् पृथक् रियासतें।

केन्द्र द्वारा शासित क्षेत्र—जो रियासतें या रियासती संघ इस

समय केन्द्रीय सरकार के अधीन हैं, उनके नाम और क्षेत्रफल आगे दिए जाते हैं :—

हिमालय प्रदेश	१०,५०० वर्गमील
विन्ध्य प्रदेश	२४,६१० ,,
हैदराबाद	८२,००० ,,
कच्छ	८,४७० ,,
विलासपुर	४५६ ,,
भोपाल	६,६०० ,,
रामपुर	६०० ,,

भारत के स्वतंत्र होने के समय केन्द्रीय शासन में केवल कुछ छोटे-छोटे प्रान्त ही थे, जिन्हे चीफ-कमिश्नरों का प्रान्त कहा जाता था। उनका क्षेत्रफल ७,७०० वर्गमील और जनसंख्या १७ लाख थी। इस समय केन्द्र द्वारा शासित क्षेत्र कितना बढ़ा हुआ है, यह उपर्युक्त व्योरे से स्पष्ट है। इसकी आबादी चार करोड़ है। हाँ, इसमें से बहुत सा भाग वर्तमान विशेष परिस्थिति के कारण ही केन्द्र के अधीन है; आवश्यक सुधार होने पर यह केन्द्र द्वारा शासित न रहेगा। उदाहरण के लिए हैदराबाद की बात लें। यहाँ गत वर्षों में कासिम रिजवी के नेतृत्व में रजाकारों ने बहुत उपद्रव, हत्या, लूटमार, आगजनी, तथा बलात्कार आदि दुष्कृत्य किए थे। भारत-सरकार ने निजाम को चेतावनी दी, पर कुछ नतीजा न निकला। आखिर, सितम्बर १९४८ में भारत-सरकार ने सेना भेजकर सुव्यवस्था स्थापित की। कासिम रिजवी और हैदराबाद के मंत्रि-मंडल को कैद कर लिया गया। निजाम ने आत्मसमर्पण कर दिया। अभी हैदराबाद में साधारण अवस्था वाली सरकार काम नहीं करने लगी है। वह केन्द्र द्वारा नियुक्त फौजो गवर्नर के अधीन है।

सैनिक शासन के समय यहाँ विविध सुधार किए गए हैं। नौकरियों का पुनर्गठन हो रहा है। निजाम की निजी जागीर 'सर्फ-ए-खास' जिसकी वार्षिक आय दो-तीन करोड़ रु० है, अब उसकी निजी

सम्पत्ति नहीं रही है। रियासत में जागीरदारी और 'पैगा' को मिटाने का प्रयत्न हो रहा है।

हैदराबाद का भावी शासन वहाँ स्थापित की जानेवाली विधान-सभा के द्वारा निश्चित किया जायगा। कुछ लोगों का सुझाव है कि हैदराबाद के मराठी, तेलगू तथा कन्नड़ भाषा-भाषी क्षेत्र महाराष्ट्र, आन्ध्र तथा कर्नाटक प्रान्तों में बाँट दिए जायें, और सिकन्दराबाद से युक्त हैदराबाद शहर का निर्माण एक कमिश्नर के प्रान्त के रूप में किया जाय और निजाम को उस प्रान्त का वैधानिक प्रधान बनाया जाय। बहुत से लोगों की इच्छा है कि निजाम की जगह उनका पुत्र 'बरार का युवराज' ले, जो उदार विचारों का है।

विन्ध्य प्रदेश का शासन केन्द्र को इस लिए अपने हाथ में लेना पड़ा कि यहाँ मंत्रिमंडल उचित व्यवस्था नहीं कर सका।

केन्द्र द्वारा शासित प्रदेशों में या तो चीफ-कमिश्नर अथवा शासन-प्रबन्धक हैं, या केन्द्र के प्रति उत्तरदायी और उसी के द्वारा नियुक्त मंत्रिगण हैं।

रियासती संघ—जो रियासते पास-पास होने के अलावा ऐसी थीं कि उन्हें मिला कर शासन की दृष्टि से एक स्वावलम्बी संघ बन सकता था, उनके राजाओं से विचार-विनिमय और समझौता करके संघ बनाए गए हैं। समझौता करने का काम धीरे-धीरे और कुछ दशाओं में कई मंजिलों में हुआ है। उदाहरण के लिए राजपूताना में पहले अलवर, धौलपुर, करौली और भरतपुर ने मिल कर १८ मार्च १९४७ को मत्स्य-संघ का निर्माण किया। पीछे २१ मार्च १९४८ को कोटा, बून्दी, भालावाड़, टोंक, किशनगढ़, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, प्रतापगढ़ और शाहपुरा ने मिल कर राजस्थान के संयुक्त राज्य का निर्माण किया। १८ अप्रैल १९४८ को उदयपुर के सम्मिलित हो जाने पर राजस्थान के संयुक्त राज्य का पुनर्गठन किया गया। इसके बाद जयपुर, जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर पूर्व स्थापित राजस्थान के संयुक्त राज्य

में और सम्मिलित हो गए और ३० मार्च १९४६ को रियासती सचिवालय के अध्यक्ष और भारत के उपप्रधानमंत्री सरदार पटेल ने इस नवीन पुनर्संगठित राजस्थान के संयुक्त राज्य का उद्घाटन-समारोह सम्पन्न किया। १५ मई १९४६ को मत्स्य-संघ (अलवर, धौलपुर, करौली और भरतपुर) भी संयुक्त राजस्थान में सम्मिलित हो गया। अस्तु, वर्तमान रियासती संघ ये हैं:—

- (१) सौराष्ट्र संघ
- (२) मध्यभारत संघ
- (३) कोचीन-त्रावणकोर संघ
- (४) विन्ध्य प्रदेश
- (५) पटियाला और पूर्वी पंजाब रियासती संघ
- (६) संयुक्त राजस्थान।

प्रत्येक रियासती संघ में सम्मिलित होने वाली रियासतों के राजाओं में से एक को उस संघ का राजप्रमुख और एक या अधिक को उप-राजप्रमुख नियुक्त कर दिया गया है तथा लोकप्रिय मंत्रिमंडल स्थापित है। राजप्रमुख प्रान्त के गवर्नर की तरह एक वैधानिक अध्यक्ष है, और उसे सेना को छोड़कर हर मामले में अपने मंत्रियों की सलाह माननी पड़ती है। जनता द्वारा निर्वाचित नई व्यवस्थापक सभाएँ बनने तक मंत्री केन्द्रीय सरकार के प्रति उत्तरदायी होंगे। राजप्रमुख की अनुपस्थिति में उप-राजप्रमुख कार्यवाहक राजप्रमुख का कार्य करेगा।

इन रियासती संघों में से विन्ध्य प्रदेश, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इस समय केन्द्र द्वारा शासित है।

पटियाला और पूर्वी पंजाब रियासती संघ के मंत्रिमंडल में कांग्रेस का बहुमत है। यद्यपि वहाँ की कांग्रेस ने उनके विरुद्ध अनुशासन-भंग की कार्यवाही की, वह उन्हें पद-त्याग करने के लिए बाध्य नहीं कर सकती। इस क्षेत्र के शासन की जिम्मेदारी भी बहुत-कुछ केन्द्र पर है। कुछ लोग इस संघ के, पूर्वी पंजाब प्रान्त में विलीन किए जाने की मांग

कर रहे हैं ।

राजस्थान संघ निर्माण के विलय-पत्र में जोड़ी गई एक विशेष धारा के अनुसार संघ की सरकार केन्द्र के प्रति उत्तरदायी होगी । जून १९४६ में राजस्थान-प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी ने मंत्रिमंडल के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव पाम किया । पर उसका कोई वैधानिक महत्व नहीं रहा, क्योंकि मंत्रिमंडल केन्द्रीय सरकार के प्रति उत्तरदायी है; और कितना व्यवस्थापक सभा के अभाव में मंत्रिमंडल का निर्माण अथवा भंग करना रियासती विभाग के हाथ की बात है ।

[खबर है कि भारत-सरकार ने सौराष्ट्र और राजस्थान के कुछ उत्तर-पश्चिमी भागों को मिलाकर एक नया सीमा-प्रान्त बनाने और उसका शासन-प्रबन्ध एक फौजी गवर्नर के सुपुर्द करने का विचार किया है । यह नया प्रान्त सौराष्ट्र के उन हिस्सों का होगा जो अरब सागर के तट पर हैं, तथा इसमें सिरोही का आबू शैल-शिखर तथा जैसलमेर और बीकानेर के, पाकिस्तान को सरहद्द पर आए हुए हिस्से रहेंगे । सौराष्ट्र के जो हिस्से बाकी बचेंगे, वे सम्भवतः बम्बई प्रान्त में मिला दिए जायेंगे ।]

पृथक्-पृथक् रियासतें—ऐसी रियासतें जो अपने विस्तार, जनसंख्या और साधनों के बल पर अलग-अलग शासन की इकाई बन सकती हैं, केवल तीन हैं—मैसूर, हैदराबाद और कश्मीर । मैसूर के विषय में कोई खास बात कहनी नहीं है और हैदराबाद के सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है । यहाँ कश्मीर के बारे में ही कुछ कहना है ।

कश्मीर की भौगोलिक स्थिति बड़े महत्व की है । इसकी सीमा कई दूसरे राष्ट्रों के अलावा भारतीय सङ्घ और पाकिस्तान दोनों ही राज्यों से मिलती है । यहाँ के महाराजा ने इसे स्वतन्त्र रखने का विचार किया । इधर, पाकिस्तान ने इसे अपने में मिलाने के लिए जोर-जबरदस्ती करना शुरू कर दिया । उसने कश्मीर पर सीमा-प्रान्त के रास्ते आधुनिक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित अफरीदी क्वाइलियों के हमले कराए और

स्वयं भी हमला किया। इस पर कश्मीर भारतीय सङ्घ में मिल गया। शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में वहाँ अस्थायी राष्ट्रीय सरकार बनो, उसकी माँग पर भारतीय सङ्घ ने कश्मीर की रक्षा में सहायता पहुँचाने के लिए अपनी सेनाएँ भेजीं। कश्मीर का मामला संयुक्त राष्ट्र संघ में भेजा गया था, उसने अभी तक उचित निर्णयात्मक कार्रवाई नहीं की। आशा है यह मामला अधिक समय तक नहीं अटक रहेगा। कश्मीर शीघ्र भारतीय संघ का एक सुन्दर और सबल इकाई बनेगा। जून १९४६ से उसके चार प्रतिनिधि भारतीय विधान सभा में भाग ले रहे हैं। भारत सरकार ने इस रियासत को पूर्ण फौजी मदद दी है, जिसमें कभी-कभी लाखों रुपए प्रति दिन खर्च हुए हैं। इसके अलावा इसे ३२० करोड़ रु० का ऋण भी दिया गया है। जम्मू-पठानकोट सड़क तैयार की गई है। अस्तु, अब रियासतों के शासन सम्बन्धी विविध प्रश्नों का विचार करें।

राजाओं का निजी खर्च—राजाओं का निजी खर्च निर्धारित करने में रियासतों विभाग ने बहुत उदारता दिखाई है। उसको रकम इस दर पर निश्चित की गई है कि राजा को औसत वार्षिक मालगुजारी के प्रथम लाख पर १५ प्रतिशत, २ से ५ लाख तक १० प्रतिशत, तथा उसके ऊपर ७। प्रतिशत। व्यक्तिगत खर्च के लिए प्रायः अधिक से अधिक १० लाख तक दिया गया है। केवल कुछ बड़े राज्यों के मामला में यह सोमा तोड़ दी गई है। जो धन इस परिमाण से अधिक निर्धारित किया गया है वह केवल वर्तमान शासक को दिया जायगा। आगामी पीढ़ी में कोई शासक १० लाख से अधिक व्यक्तिगत खर्च के लिए नहीं पाएगा। इस व्यक्तिगत खर्च में शासक, उसके परिवार के निवास-स्थान सम्बन्धी और विवाह तथा अन्य संस्कारों के खर्च भी सम्मिलित हैं।

केन्द्र का रियासतों से सम्बन्ध—केन्द्र तथा प्रांतों के बीच जो सम्बन्ध है, उसमें तथा केन्द्र और राज्यों के वर्तमान सम्बन्ध में अंतर

है। प्रान्तों का केन्द्र से जो सम्बन्ध है, वह वैधानिक है तथा १९३५ के कानून की व्यवस्थाओं के अन्तर्गत है। केन्द्र तथा राज्यों का सम्बन्ध केन्द्र और राजप्रमुखों के बीच हुए समझौतों के अनुसार चल रहा है। रियासतों की स्थिति अभी पिछड़ी हुई है तथा वहाँ शासन की कोई उचित व्यवस्था नहीं है। इसलिए सरकार ने रियासती संघों पर आम नियंत्रण रखने की आवश्यकता महसूस की। एक प्रकार से केन्द्रीय सरकार का नियंत्रण प्रान्तों की अपेक्षा रियासती संघों पर अधिक कहा जा सकता है।

रियासतों को प्रान्तों के दर्जे पर लाने का विचार—

भारतीय संघ में प्रवेश करते समय रियासतों और भारत-सरकार में जो समझौता हुआ है, उसके अनुसार रियासतें केवल रक्षा, विदेशी मामले और यातायात (डाक-तार आदि) के प्रश्नों को छोड़कर शेष सब मामलों में केन्द्र से स्वाधीन रह सकती हैं; जब कि प्रान्तों ने बड़ी मात्रा में अपने अधिकार केन्द्र को सौंप दिए हैं। रियासतों को प्रान्तों के दर्जे पर लाने के लिए यह आवश्यक है कि अब जो रियासती इकाइयाँ हैं, उनको साधारण तौर से भारत-सरकार के नियंत्रण में रखने के उद्देश्य से इन समझौतों में आवश्यक परिवर्तन किया जाय। संयुक्त राजस्थान सम्बन्धी समझौते में एक धारा यह रखी गई है कि जब तक इस संघ की विधान-सभा द्वारा तैयार किया जाने वाला विधान कार्यान्वित नहीं होता, तब तक राजप्रमुख और मंत्रिमंडल, उस अहमदनामे की धाराओं के अन्तर्गत प्राप्त अधिकारों के अनुसार, भारत-सरकार के नियंत्रण में रहकर कार्य करेंगे और समय-समय पर भारत-सरकार द्वारा जारी किए जाने वाले आदेशों का पालन करते रहेंगे। आशा है, इस प्रकार की नई धारा अन्य रियासतों तथा रियासती संघों के साथ हुए या होने वाले समझौतों में भी जोड़ी जायगी, जिससे जब तक भारतीय विधान के एक अंग के रूप में इन रियासतों इकाइयों का विधान तैयार न हो, तब तक वहाँ पर अच्छी सरकारें स्थापित की जा सकें।

आर्थिक व्यवस्था—आर्थिक दृष्टि से रियासतों तथा केन्द्र के एकीकरण का विचार करने के लिए नियुक्त कमेटी की मिकारिशों के अनुसार, भारत-सरकार ने १ अप्रैल १९५० से सब रियासतों तथा रियासती संघों का नियंत्रण अपने हाथ में लेने का निश्चय किया है। इसके अनुसार रियासतों में आय-कर, आवकारी तथा अन्य केन्द्राय कर भारत-सरकार लागू करेगी, तथा रेलवे, डाक, तार, अन्तरिक्ष विज्ञान, रेडियो आदि विषय केन्द्रीय सरकार के सन्धि नियंत्रण में रहेंगे। यह योजना धारे-धारे दस वर्ष में लागू होगी। इस योजना के पूरा होने पर सारे भारत में एक ही प्रकार का अर्थ-व्यवस्था तथा प्रणाली हो जायगी। रियासतों की आय के मुख्य साधन इस समय आयात-निर्यात-कर, आवकारी, और रेल आदि हैं। आशा है, दस वर्ष की अवधि में वे अपनी आर्थिक व्यवस्था ऐसा बना लेंगी कि केन्द्र के विषयों की आय निकल जाने पर उन्हें विशेष कठिनाई न होगी; हाँ उस समय उन्हें केन्द्र से विशेष सहायता भी मिल सकेगी।

रियासती सेना—१५ अगस्त १९४७ से पहले लगभग ५० रियासतों में अपनी-अपनी सेनाएँ थीं। राजाओं के साथ किए गए समझौतों में इन सेनाओं को यथा-पूर्व बने रहने देने का निश्चय किया गया था। रियासती संघों में इन सेनाओं पर राजप्रमुखों को पूर्ण अधिकार है। यह प्रयत्न किया जा रहा है कि रियासती सेना को केन्द्र के अधीन लेकर भारत की रक्षा-व्यवस्था में नियुक्त कर दिया जाय।

रियासतें और जनसत्तात्मक शासन—रियासती संघों के मंत्रियों में लोकप्रिय मंत्रियों को ही स्थान दिया गया है, परन्तु इन पदों के सम्बन्ध में रियासती नेताओं में आपस में फूट और संघर्ष है। विरोधी व्यक्ति इन मंत्रियों को हटाने में ही शक्ति और समय खर्च करते रहते हैं। शासन-संचालन ठीक तरह नहीं होता। इसी लिए विन्ध्यप्रदेश का शासन केन्द्र को अपने हाथ में लेना पड़ा। मध्यभारत संघ में जोशी-मंत्रिमंडल का थोड़े ही समय में पतन होकर उसकी जगह विजयवर्गीय

मंत्रिमंडल ने लेली। राजस्थान में श्री हीरालाल शाम्बी के मंत्रिमंडल के प्रति वहाँ की कांग्रेस द्वारा अविश्वाम का प्रस्ताव पास कराने में कई प्रसिद्ध जन-नेताओं का हाथ था। यह अवस्था चिन्तनीय है। सरदार पटेल रियासती संघों के नेताओं को चेतावनी देते हुए यह संकेत कर चुके हैं कि यदि रियासतों के जन-नेताओं ने इसी प्रकार पद हथियाने की मनोवृत्ति दिखाई तो रियासती संघों को सीधे केन्द्र द्वारा 'शासित प्रदेश' बनाना पड़ेगा। जब तक रियासती संघों में जनता द्वारा निर्वाचित व्यवस्थापक सभाएँ स्थापित न हो, तब तक इनके शासन और सुव्यवस्था का उत्तरदायित्व केन्द्रीय सरकार और उसके रियासती विभाग पर हो है। आशा है, इन संघों में व्यवस्थापक सभाओं के संगठन की व्यवस्था जल्दी की जायगी।

रियासतों और रियासती संघों का विधान—पहले कहा गया है कि बड़ी रियासतों तथा रियासती संघों का विधान उनकी विधान-सभाओं द्वारा बनाए जाने का प्रयत्न हो रहा है। ये रियासतें तथा रियासती संघ, प्रान्तों की तरह, भारतीय संघ के अंग हैं और भारतीय विधान सभा, केन्द्र के अलावा प्रान्तों का भी विधान बना रही है। सब यह स्वाकार करते हैं कि भावी भारतीय जनतंत्र में प्रान्तों और रियासतों की इकाइयों में विशेष अन्तर नहीं रहना चाहिए। भारतीय विधान सभा ने रियासतों तथा रियासती संघों के विधान का नमूना तैयार करने के लिए एक उपसमिति बनाई थी, उसने भी प्रान्तीय विधान को ही कुछ आवश्यक संशोधनों सहित रियासतों और रियासती संघों पर लागू करने की सिफारिश की है। ऐसी स्थिति में अच्छा हो कि रियासती इकाइयों का अलग-अलग विधान न बन कर सबके लिए एक ही प्रकार का विधान बनाया जाय। सौराष्ट्र संघ की विधान-सभा का विधान बनाने का अधिकार भारतीय विधान सभा को देकर इस विषय में बहुत अच्छा उदाहरण उपस्थित किया है।

विशेष वक्तव्य—भारत के स्वतंत्र होने को अभी दो वर्ष ही

हुए हैं; इतने समय में ही खासकर देशी रियासतों की स्थिति में विनक्ष्ण अन्तर हो गया है। लगभग छः सौ रियासतों में से दो सौ से अधिक तो पास के प्रान्तों में ही मिल गई हैं, और शेष की केवल आधी दर्जन चीफ-कमिश्नरियों और आधी दर्जन रियासती संघ बनकर केवल तीन ही रियासते पृथक् पृथक् इकाई के रूप में रह गई हैं। पहले रियासते अनन्त थीं, और अधिकांश रियासतें बहुत छोटी-छोटी भी थीं। उनके प्रबन्ध और काम के तरीके जुदा-जुदा प्रकार के थे। उनके निवासी परिमित क्षेत्र में काम करनेवाले और सामित दृष्टिकोण से विचार करनेवाले होते थे। अधिकतर रियासतों के साधन इतने अल्प थे कि उनसे जनता को शिक्षा, स्वास्थ्य, आजीविका आदि की साधारण आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं हो पाती थीं; विकास का मार्ग पूर्ण रूप से रुका हुआ था।

अब रियासतों का एकीकरण हो गया है। वर्तमान रियासती इकाइयों का क्षेत्र विस्तृत है। इस से अधिकारियों तथा कार्यकर्त्ताओं के दृष्टिकोण में उदारता आएगा और वे लोकहित का कार्य अधिक योग्यता, क्षमता तथा मितव्ययिता पूर्वक कर सकेंगे। हाँ, इन बातों में समय लगेगा। अभी तो संधि-काल है। कुछ अधिकारियों में यथेष्ट अनुभव की कमी है, और कितने ही कार्यकर्त्ता अपने आप को इतना ऊँचा नहीं उठा सके, जितना नयी परिस्थिति में आवश्यक था। कोई अपने प्राप्त पद को बनाए रखने को फिक्र में है, और कोई किसी पद की प्राप्ति के लिए भले-बुरे उपायों को काम में ला रहा है, और कुछ अपना पुरानी सेवाओं का फल जल्दी-से-जल्दी प्राप्त करने तथा अपना और अपने भाई वंधुओं या इष्ट-मित्रों का स्वार्थ पूरा करने में लगे हैं। [यह बात प्रान्तों में भी है]। कहीं-कहीं जागीरदारों प्रथा कानून द्वारा हटा दी गई है, पर जहाँ ऐसा नहीं हुआ, वहाँ जागीरदारों ने प्रायः समय की गति को नहीं पहिचाना है; वे पुराने ढर्रे पर जनता का शोषण और दमन कर रहे हैं, यद्यपि यह स्पष्ट है कि ऐसी बात अधिक समय

चलनेवाली नहीं है। अस्तु अभी रियासतो जनता विशेष सुखी नहीं हुई है। तथापि इसमें सन्देह नहीं है कि रियासतो सम्बन्धी उक्त परिवर्तन महत्वपूर्ण हैं और उस से जनता का यथेष्ट हित होगा। अधिकारियों और कार्यकर्त्ताओं को इस संधि-काल में अपना कर्तव्य अच्छी तरह पालन करना चाहिए।



चौदहवाँ परिच्छेद ज़िले का शासन

प्रान्त और रियासतें— पिछले परिच्छेदों में प्रान्तों और रियासतों की शासनपद्धति बताई गई है। भारत के स्वतंत्र होने से पहले देश के इन दो प्रकार के भागों की शासनपद्धति एक दूसरे से बहुत ही भिन्न थी। भारतीय स्वतंत्रता-विधान, सन् १९४७, से भी यह भिन्नता दूर नहीं हुई। तथापि भारत सरकार रियासतों के अधिकारियों और कार्यकर्त्ताओं के साथ विचार-विनिमय करके इस भिन्नता को क्रमशः हटा रही है, इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। भारत के नये विधान के अनुसार देश के इन दोनों प्रकार के भागों के लिए लगभग एक ही प्रकार की शासनपद्धति निश्चित की जायगी; यहाँ तक कि दोनों के नाम में भी भिन्नता न होगी, दोनों ही 'राज्य' कहे जायेंगे; हाँ, इस प्रकार की शासनपद्धति को पूरे तौर से अमल में आने में कुछ समय लगना स्वाभाविक है।

प्रान्तों के भाग; जिले का महत्व—भारत के प्रान्तों में से मदरास प्रान्त को छोड़कर प्रत्येक बड़े प्रान्त में चार-पाँच कमिश्नरियाँ हैं। कमिश्नरी के अफसर को कमिश्नर कहते हैं। यह शासन सम्बन्धी कोई कार्य स्वयं नहीं करता, केवल ज़िला-अफसरों के काम की जाँच-पड़ताल करता है। ज़िलों से जो रिपोर्ट या पत्रादि प्रान्तीय सरकार के

पास जाते हैं, वे सब कमिश्नरों के हाथ से गुजरते हैं। कमिश्नरों को म्युनिसिपैलिटियों का काम देखने-भालने के भी कुछ अधिकार हैं; परन्तु इनका विशेष सम्बन्ध मालगुजारी से रहता है। ये मालगुजारी के बन्दोबस्त* में परामर्श देते हैं, और, विशेष दशा में उसे वसूल करने के कार्य को स्थगित कर सकते हैं। ये माल के मुकदमों की अपील भी सुनते हैं।

[मालगुजारी के बन्दोबस्त के लिए पूर्वी पंजाब और मध्यप्रात में फाइनैन्शल (अर्थ) कमिश्नर हैं; और संयुक्तप्रान्त, बिहार और बंगाल में 'रेवन्यू बोर्ड' हैं। ये कलेक्टरों और कमिश्नरों के इस विषय सम्बन्धी कार्य का निरीक्षण करते हैं।]

प्रत्येक कमिश्नरी में तीन या अधिक जिले होते हैं। प्रत्येक जिले का औसत क्षेत्रफल चार हजार वर्गमील तथा उसकी औसत मनुष्य-संख्या नौ लाख है। कोई जिला छोटा होता है, कोई बड़ा। इसी प्रकार किसी की आबादी कम है, कहीं की बहुत अधिक। जिलों की सीमा निश्चित करने में प्रायः यह विचार रखा जाता है कि प्रत्येक जिले के शासक को मालगुजारी तथा प्रबन्धादि का काम बहुत-कुछ समान हो करना पड़े।

प्रान्तों में शासन की इकाई जिला की है। राज्य को कल जैसी एक जिले में चलती दिखलाई पड़ता है, वैसी ही प्रायः अन्य जिलों में भी है। जैसे अफसर एक जिले में काम करते हैं, वैसे ही दूसरे में भी हैं। जनता के कामकाज का मुख्य स्थान और लोक-व्यवहार का केन्द्र जिला है। जो मनुष्य अन्य जिलों या प्रान्तों से कुछ सम्बन्ध नहीं रखते, उन्हें भी बहुधा अपने जिले के भिन्न-भिन्न स्थानों में, शासन या न्याय सम्बन्धी कुछ-न-कुछ काम पड़ जाता है। यहाँ के प्रबन्ध को देखकर जन-साधारण समस्त देश के राजप्रबन्ध का अनुमान किया करते हैं।

रियासतों के जिले—भारत की रियासतों में से सैकड़ों रियासतें तो मामूली कस्बे या गांव के बराबर भी नहीं थीं। जो कुछ बड़ी थीं,

उनमें से भी दो-तीन को छोड़कर, कोई रियासत भारत के एक प्रान्त की तुलना नहीं कर सकती थी। तथापि कई रियासतों ने भारत की नकल कर, अपने हिस्सों को प्रान्त या सूबा कहा। रियासतों के प्रान्त कितने छोटे होंगे, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। अस्तु, उन सभी रियासतों में जो बहुत छोटी नहीं थी, कुछ-कुछ ज़िले या निज़ामतें रहीं हैं। अब जो रियासतों का पुनर्गठन हो रहा है, उसके अनुसार सम्भवतः उनके ये भेद होंगे—लगभग आधी दर्ज़न चीफ कमिश्नरियों, आधी दर्ज़न रियासती संघ और तीन बड़ी रियासतें। इन सभी रियासती इकाइयों में से हर एक में कुछ जिले होंगे। साधारणतया ये जिले पहले के रियासती जिलों से आकार-प्रकार में बड़े होंगे।

जिले का शासन; जिलाधीश—अब हम यह बतलाते हैं कि जिलों का शासन किस प्रकार होता है। हमारा यह वर्णन बहुत-कुछ प्रान्तों के जिले के आधार पर है। पर रियासतें भी कुछ समय में इसी पद्धति को अपनाने वाली हैं, तथा क्रमशः अपना रही हैं।

प्रत्येक जिला एक जिलाधाश के अधीन होता है। जिलाधीश जिले का 'क्लेक्टर' भी होता है। क्लेक्टर का अर्थ है, वसूल करने-वाला। उसका एक मुख्य कार्य मालगुजारी वसूल करना होने के कारण उसे साधारण बोलचाल में 'क्लेक्टर' कहते हैं। (पूर्वी पंजाब, अवध और मध्यप्रान्त में वह डिप्टी कमिश्नर कहलाता है।)

ज़िले के लोगों के लिए जिलाधीश ही सरकार का प्रतिनिधि है। उच्च कर्मचारियों को वे भले ही न जानें, जिलाधीश से तो उन्हें काम पड़ता ही रहता है। इसी की योग्यता पर सरकार के नियमों से प्रजा का यथेष्ट लाभ होना, अथवा न होना निर्भर है; और, जैसा इसका बर्ताव रहता है, उसी से अधिकांश जन-समाज सरकार की नीति का अन्दाज लगाते हैं। यह जो कार्य करता है, उसे सरकार का कार्य कहा जाता है; इसकी कही हुई बात सरकार की कही हुई बात समझी जाती है। सरकार को बहुत-सी बातों का ज्ञान उतना या वैसा ही होता है,

जैसा यह करता है। इससे यह कहा जा सकता है कि जिलाधीश सरकार का केवल हाथ-मुँह ही नहीं, आंख-कान भी है।

उसके अधिकार—उसकी संयुक्त उपाधि 'क्लेक्टर-मजिस्ट्रेट' उसके डबल कार्य की बोधक है। क्लेक्टर की हैसियत से वह ज़िले की मालगुजारी वसूल करता है। वह अपनी अमलदारी में भूमि सम्बन्धी मामलों पर विचार करता है, सरकार और प्रजा के सम्बन्ध का ध्यान रखता है, और ज़मींदारों और किसानों आदि के झगड़ों का फैसला करता है। दुर्भिक्ष अथवा अन्य आवश्यकता के समय कृषकों को सरकारी सहायता उसी की सम्मति के अनुसार मिलती है। इसके अतिरिक्त, स्थानाय आचकारी, स्टाम्प ड्यूटी आदि भी उसी के सुपुर्द हैं। जिले के खज़ाने का भी वही उत्तरदाता है। जिला-मजिस्ट्रेट की हैसियत से वह ज़िले भर की छोटी अदालतों का निरोक्षण करता है। उसे अ वल दर्जे की मजिस्ट्रेटों के अधिकार होते हैं, जिनसे वह एक अपराध पर साधारणतः दो साल तक की कैद और एक हजार रुपए तक का जुर्माना कर सकता है। जिले की सब प्रकार की सुख शान्ति का वही उत्तरदाता है। वह स्थानीय पुलिस का निरोक्षण भी करता है। उसे म्यूनिसिपैलिटियों तथा ज़िलाबोर्डों की निगरानी का अधिकार है। इस बात के निश्चय करने में, कि कहाँ पुल, सड़क इत्यादि बनने चाहिए, कहाँ सफाई का प्रबन्ध होना चाहिए, तथा ज़िले के किन-किन भागों को स्थानीय स्वराज्य का अधिकार मिलना चाहिए, उसी की सम्मति प्रामाणिक मानी जाती है। ज़िले में जो भी प्रबन्ध ठीक न हो, उसका सुधार करना, और हरेक बात की रिपोर्ट उच्च कर्मचारियों के पास भेजना, उसी का कर्तव्य है। ज़िले की आन्तरिक दशा जानने तथा उसे सुधारने के विचार से उसे देहातों में दौरा करना होता है।

इस प्रकार इतने भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य उसके सुपुर्द हैं कि उसके लिए, उन सब को स्वयं भली प्रकार चलाना दुस्तर है। इसीलिए बहुत से काम उसके अधीन कर्मचारी ही कर डालते हैं, और वह उनके

कागजों पर हस्ताक्षर कर देता है। हाँ, इससे उसकी जिम्मेवारी कम नहीं होती; जिले के शासन सम्बन्धी सब कार्य का उत्तरदाता वही होता है। आजकल सरकारी काम में कागजी कार्रवाई बहुत बढ़ गई है, इससे जिलाधीश को जनता की वास्तविक दशा जानने के लिए, उससे सीधे सम्पर्क में आने का अवकाश बहुत कम मिलता है। वह प्रायः अपने अधीन कर्मचारियों की रिपोर्ट या कुछ ग्वास-ग्वास लोगों की बातों के आधार पर ही अपनी राय कायम कर लेता है।

जिलाधीश का प्रभाव—जिलाधीश को शासन-प्रबन्ध के सम्बन्ध में कुछ स्वतंत्र अधिकार नहीं हैं, वह प्रान्तीय सरकार के आदेशानुसार कार्य करनेवाला कर्मचारी है, तथापि जिले भर में उसका प्रभाव बहुत अधिक होता है। वह सब बड़े-बड़े धनी प्रतिष्ठित व्यक्तियों के सीधे सम्पर्क में आता है, सेठ, साहूकार, जमींदार या महन्त सब उसको प्रसन्न रखना चाहते हैं। बहुत से आदमी उसके नाम पर कुछ सार्वजनिक कार्य करने के इच्छुक रहते हैं। यदि उसमें लोक-सेवा की अभिलाषा हो और उसका व्यक्तित्व ऊँचा हो तो वह उन्हें विविध हितकर योजनाओं के लिए प्रोत्साहन दे सकता है, और जिले के निवासियों की सामूहिक उन्नति करने में बहुत सफलता प्राप्त कर सकता है। इसके विपरीत, यदि उसे जनता पर अपना रौबदौब या आतंक जमाने की ही चिन्ता हो तो उसका प्रबन्ध-काल जिले के लिए एक अभिशाप ही होगा।

शासन और न्याय का पृथक्करण—पहले कहा जा चुका है कि जिलाधीश को शासन सम्बन्धी अधिकार भी हैं; और न्याय सम्बन्धी भी। वह अपने जिले की शान्ति का उत्तरदाता है, इस लिए पुलिस पर उसका नियंत्रण रहता है। पुलिस उसे इस बात की सूचना देती रहती है कि जिले में किस-किस व्यक्ति का व्यवहार या आचरण उसकी दृष्टि से आपत्तिजनक है। जिस व्यक्ति को पुलिस अपराधी ख्याल करती है, उसकी गिरफ्तारी के लिए वह जिलाधीश की अनुमति ले सकती है,

अथवा जिलाधीश भी जिस व्यक्ति को चाहे पुलिस द्वारा गिरफ्तार करा सकता है। जब जिलाधीश या कलेक्टर ऐसे मुकदमों का फैसला करता है तो मानो वार्दी स्वयं ही न्यायाधीश बनने का ढोंग रचता है। ऐसी दशा में न्याय-कार्य स्वतंत्रता-पूर्वक न होना, पुलिस की बात रखने का प्रयत्न होना और अभियुक्त के साथ अन्याय होना स्वाभाविक है। इसलिए यह आवश्यक है कि शासन और न्याय-कार्य पृथक्-पृथक् हो, जिलाधीश या उसके सहायक या अधीन पदाधिकारियों को मजिस्ट्रेट के अधिकार न रहें। फौजदारी मुकदमों का फैसला (दीवानी मुकदमों की तरह) मुन्सिफों की अदालतों द्वारा हुआ करे; कारण, मुन्सिफ जिलाधीश के अधीन नहीं होते, वे स्वतंत्रता-पूर्वक फैसला कर सकते हैं।

इससे यह भी लाभ होगा कि जिलाधीशों को अपने अन्य कर्तव्यों का पालन करने के लिए अधिक अवकाश मिलेगा। निस्सन्देह इस सुधार को अमल में लाने के लिए कुछ खर्च अधिक होगा, परन्तु न्याय और जनहित के लिए वह आवश्यक ही है। अब प्रान्तीय सरकारें क्रमशः इस सुधार को अमल में ला रही हैं।

जिले के अन्य कार्यकर्ता—जिले में अनेक प्रकार के कार्य होते हैं, यथा :—शान्ति रखना, झगड़ों का फैसला करना, माचगुजारी वसूल करना, सड़क, पुल आदि बनवाना, अकाल में लोगों की सहायता करना, रोगियों का इलाज करना, म्यूनिसिपल और लोकल बोर्डों की निगरानी, जेलखाना और पाठशाला आदि का निरीक्षण करना इत्यादि। इन विविध कार्यों के लिए जिले में कई एक अफसर रहते हैं, जैसे पुलिस-सुपरिण्टेण्डेंट, डिस्ट्रिक्ट-जज, मुन्सिफ, एग्जीक्यूटिव इंजिनियर, सिविल सर्जन, जेल-सुपरिण्टेण्डेंट, तथा स्कूल-इन्स्पेक्टर आदि। ये अफसर अपने पृथक्-पृथक् विभागों के उच्च कर्मचारियों के अधीन होते हैं, परन्तु शासन के विचार से, जिला-जज और मुन्सिफ आदि को छोड़कर, सब पर जिला-मजिस्ट्रेट ही प्रधान होता है। 'जिले का

हाकिम' वही कहा जाता है। उसके कार्य में सहायता देने के लिए डिप्टी और सहायक मजिस्ट्रेट रहते हैं।

ज़िले के कार्यकर्ताओं को कानून बनाने का अधिकार नहीं होता। इनका मुख्य काम यह है कि ये प्रान्तीय सरकार के कानून को व्यवहार में लावे, तथा उसकी आज्ञाओं का पालन करे; हाँ, कानून बनाने में अप्रकट रूप से इतना भाग इनका अवश्य रहता है कि इनकी रिपोर्ट के आधार पर सरकार स्थानीय परिस्थिति का अनुमान करती है, और तदनुसार कानून बनाती है।

ज़िले के भाग, और उनके अधिकारी—शासन की दृष्टि से प्रत्येक जिले के जो भाग होते हैं, उन्हें सबडिविजन कहते हैं। हरेक सबडिविजन एक डिप्टीकलेक्टर, अथवा 'एक्सट्रा एसिस्टेंट कमिश्नर' के अधीन रहता है। अपनी-अपनी अमलदारी में, सबडिविज़नों के अफसरों के अधिकार थोड़े-बहुत भेद से, कलेक्टर-मजिस्ट्रेटों के समान ही होते हैं। इन्हें एस० डी० ओ० भी कहते हैं, यह 'सबडिविज़नल आफ़ीसर' का संक्षेप है। पूर्वी बंगाल, तथा बिहार को छोड़कर, अन्यत्र प्रत्येक जिले के अन्तर्गत ५-६ तहसील (या ताल्लुके) हैं। जिले के ये भाग सब-डिप्टी-कलेक्टरों या तहसीलदारों के अधीन हैं; ये कर्मचारा प्रजा और सरकार को एक दूसरे के विषय में आवश्यक सूचना देते रहते हैं, और, अपने इलाके के माल और फौजदारी के काम के भी उत्तरदाता हैं। ये अपने हल्के में दौरा करके म्युनिसिपैलिटियों और जिला-बोर्डों का भी काम देखते हैं। इनके सहायक कर्मचारी नायब तहसीलदार, पेशकार, कानूनगो, रेवन्यू-इन्स्पेक्टर आदि होते हैं। प्रायः एक तहसील में एक या अधिक परगने, और कई सर्कल या हल्के होते हैं। परगने का अधिकारी 'हाकिम परगना' कहलाता है।

गाँवों के अधिकारी—तहसीलदारों के अधीन, गाँवों में नम्बरदार (पटेल), चौकीदार और पटवारी रहते हैं। नम्बरदार गाँव का सबसे बड़ा अधिकारी होता है। यह जमींदारों से मालगुजारी तथा

आत्रपाशी की रकम वमूल करके तहसील में भेजता है; वहाँ से वह ज़िले में भेजी जाती है। यह अपने गाँव में शांति रखने का प्रयत्न करता है। चौकोदार पहरा देता है और चौकसी करता है। वह पुलिस में प्रति सप्ताह यह खबर देता है कि गाँव में उस सप्ताह के भीतर कितनी मृत्यु हुईं, और कितने बालकों का जन्म हुआ। वह गाँव की चोरी, कत्ल तथा अन्य अपराधों की भी रिपोर्ट करता है। चौकीदारों का अफसर 'मुखिया' कहलाता है। पटवारी अपने हल्के (ग्राम या ग्राम-समूह) के किसानों और जमींदारों के भूमि सम्बन्धी अधिकारों के कागज़ तथा रजिस्टर आदि रखता है। कोई खेत या उसका कुछ हिस्सा बिक जाय या किसी खेत का मालिक बदल जाय या मर जाय तो पटवारों इस बात की रिपोर्ट तहसील में करता है, और अपने कागज़ों में उचित सुधार कर लेता है। वह खेतों के नक्शे तथा 'खेवट' 'खतौनी' आदि रखता है। इन सब कर्मचारियों के यथेष्ट कर्तव्य-पालन पर ही तहसील और ज़िले का शासन अच्छा होना निर्भर है।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद न्याय-कार्य

प्रान्तों और रियासतों के शासन और व्यवस्था-कार्य का विचार किया जा चुका। अब न्याय-कार्य का विषय लिया जाता है। इस विषय की सिद्धान्त सम्बन्धी कुछ आवश्यक बातें पहले परिच्छेद में बताई जा चुकी हैं।

हाईकोर्ट—किसी प्रान्त, रियासत या रियासती संघ में न्याय करनेवाली संस्थाओं में सर्वोच्च हाईकोर्ट या इसका-सा अधिकार रखनेवाली दूसरे नाम की संस्था होती है। इसका संघ-न्यायालय से क्या सम्बन्ध है, यह पहले बताया जा चुका है।

भारतवर्ष में कलकत्ता, मदरास, बम्बई, इलाहाबाद पटना और

नागपुर के हाईकोर्ट तो इस देश के स्वतंत्र होने से पहले की व्यवस्था के अनुसार हैं। उस समय सपरिषद् सम्राट् को अधिकार था कि वह किसी न्यायालय को हाईकोर्ट के अधिकार दे या नया हाईकोर्ट बनावे। सन् १६४७ से यह अधिकार गवर्नर-जनरल को है। इस वर्ष के भारतीय स्वतंत्रता-विधान के अनुसार आसाम और पूर्वी पंजाब में हाईकोर्ट बनाने की व्यवस्था हुई है। इसके अलावा इस समय अनेक रियासतों के प्रान्तों में विलीन होने के बाद जो तीन बड़ी-बड़ी रियासतें तथा आधे दर्जन रियासतें संघों का निर्माण हुआ है, उनमें भी एक-एक हाईकोर्ट रहेगा। साधारणतया प्रत्येक प्रान्त के लिए एक पृथक् हाईकोर्ट होता है, परन्तु इस समय पटना का हाईकोर्ट बिहार के अतिरिक्त उड़ीसा के प्रान्त के लिए भी है।

जजों की संख्या और नियुक्ति—प्रत्येक हाईकोर्ट में एक चीफ-जस्टिस और कुछ जज होते हैं। उनकी संख्या निश्चित करने का अधिकार पहले सम्राट् को था, अब गवर्नर-जनरल को है। पहले प्रान्तों के हाईकोर्टों के जजों की अधिकतम संख्या निम्नलिखित निर्धारित थी—

कत्ता हाईकोर्ट २०, मदरास १६, बम्बई १४, इलाहाबाद १३, पटना १२, नागपुर ८। अब कलकत्ता हाईकोर्ट का क्षेत्र कम हो गया है (पूर्वी बंगाल का प्रान्त अलग होकर पाकिस्तान में चला गया है), तथा इलाहाबाद हाईकोर्ट का क्षेत्र बढ़ गया है (अवध का चीफ कोर्ट अब इसके ही अन्तर्गत होगया है), इसलिए इन हाईकोर्टों के जजों की संख्या में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। पूर्वी पंजाब, आसाम, तथा रियासतों इकाइयों के हाईकोर्टों के जजों की संख्या गवर्नर-जनरल द्वारा निर्धारित होगी।

जजों की नियुक्ति पहले सम्राट् द्वारा होती थी, अब भारत के स्वतंत्र होने पर गवर्नर-जनरल द्वारा होती है। नियुक्ति के लिए निर्धारित पहले की योग्यताएँ बदल गई हैं।

जजों का वेतनादि—प्रत्येक जज साठ वर्ष की आयु तक कार्य

कर सकता है। जजों का वेतन, भत्ता, मार्ग-व्यय, छुट्टी का वेतन और पेन्शन आदि समय-समय पर गवर्नर-जनरल निश्चय करता है। जज की नियुक्ति हो जाने पर, उसके वेतन या छुट्टी में, अथवा पेन्शन आदि के अधिकार में कमी नहीं की जाती। सन् १९४७ तक कलकत्ता हाईकोर्ट के चीफ-जस्टिस का वार्षिक वेतन ७२,०००) निर्धारित था; मदरास, बम्बई, इलाहाबाद और पटना के हाईकोर्टों के चीफ-जस्टिसों में से प्रत्येक का ६०,०००), और इन सब हाईकोर्टों के जजों में से प्रत्येक का ४८,०००) था। नागपुर हाईकोर्ट के चीफ-जस्टिस का वार्षिक वेतन ५०,०००) और उसके जजों में से प्रत्येक का ४०,०००) था।

जो हाईकोर्ट जिस प्रान्त में स्थित है, उसका व्यय उस प्रांत का गवर्नर स्वीकार करता है; उस पर प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा का मत नहीं लिया जाता। जो हाईकोर्ट एक से अधिक प्रान्तों के लिए काम करते हैं। उनका व्यय उन प्रांतों में बँट जाता है।

हाईकोर्टों का अधिकार-क्षेत्र—हाईकोर्टों के क्षेत्र और अधिकार कानून से निश्चित हैं, और गवर्नर-जनरल की आज्ञा से उनमें परिवर्तन हो सकता है। प्रत्येक हाईकोर्ट में दो भाग होते हैं। 'आरिजिनल' और अपील भाग। साधारणतया 'आरिजिनल' भाग का कार्य-क्षेत्र हाईकोर्ट वाले नगर की सीमा से बाहर नहीं होता। इस भाग में उस स्थान के सब दीवानी मामले जाते हैं, जो 'स्माल काज़ कोर्ट' अर्थात् अदालत खफ़ीफ़ा में नहीं जा सकते; तथा ऐसे सब फ़ौजदारी मुकदमे जाते हैं, जिनका फैसला अन्य स्थानों में सेशन जज की अदालतों में हो। इसी भाग में फ़ौजदारी मामलों के उन अपराधियों का विचार होता है, जिनका विचार मुफ़स्सिल अदालतों में नहीं हो सकता। हाईकोर्ट वादी-प्रतिवादी की प्रार्थना पर अथवा न्याय के विचार से, मुकदमों को सबजजों की अदालतों से उठाकर अपने इस (आरिजिनल) भाग में ले सकते हैं।

अपील भाग में 'आरिजिनल' भाग की तथा मुफ़स्सिल अदालतों

की अपील सुनी जाती है।

हाईकोर्ट अपनी नियमित सभा की सब दीवानी तथा फौजदारी अदालतों का नियंत्रण व निरोक्षण करते हैं। प्रांतीय सरकारों की स्वोक्ति से वे उनकी कार्य-प्रणाली के नियम बना सकते हैं; 'अटर्नी', अमीन, और मोहररि आदि का फस की दर ठहरा सकते हैं। वे किसी मुकदमे को या उसकी अपील को एक अदालत से दूसरी, उसके समान या उससे बड़ी, अदालत में बदल सकते हैं; एवं कोर्ट की 'रिटन' अर्थात् लेखा माँग सकते हैं। प्रायः माल (लगान) सम्बन्धी मुकदमों का, हाईकोर्ट के 'आरिजिनल भाग में फैसला होने का रिवाज नहीं है। हाईकोर्टों का सब काम अंगरेजों भाषा में होता है।

रेवन्यू कोर्ट—मालगुजारी सम्बन्धी सब बातों का फैसला करने के लिए कहीं-कहीं रेवन्यू कोर्ट, और कहीं-कहीं सेटलमेंट (बन्दोबस्त) कमिश्नर हैं। इनके अधीन कमिश्नर, कलेक्टर, तहसीलदार आदि रहते हैं, जिन्हें लगान, मालगुजारी और आबपाशी आदि के मामलों का फैसला करने का निर्धारित अधिकार है।

दीवानी अदालतें—हाईकोर्टों के नीचे दीवानी और फौजदारी की अदालतें हैं। भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इनके संगठन तथा नियमों में कुछ-कुछ भेद हैं। प्रायः हर एक ज़िले में एक ज़िला-जज होता है। उसकी अदालत ज़िले में सब से बड़ी दीवानी अदालत है। उसमें नीचे की अदालतों के फैसलों की अपील हो सकती है। ज़िला-जज के नीचे सबार्डिनेट जज या सबजज होते हैं। (इन्हें संयुक्तप्रान्त में सिविल जज कहते हैं)। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास तथा कुछ अन्य स्थानों में 'स्माल काज़ कोर्ट' या अदालत खर्फ़ा स्थापित हैं, जो छोटे-छोटे मामलों में जल्दी तथा कम खर्च से अंतिम निर्णय सुना देती हैं।

फौजदारी अदालतें—प्रत्येक ज़िले में, या कुछ ज़िलों के एक समूह में, एक 'सेशन्स कोर्ट' रहता है। इसका प्रधान भी ज़िला-जज ही

होता है; जो फ़ौजदारी के अधिकार रखने से, सेशन जज का कार्य सम्पादन करता है। उसे अन्य सहकारी सेशन जजों से इस काम में सहायता मिल सकती है। फ़ौजदारी के मामले में सेशन कोर्टों के अधिकार हाईकोर्टों सरीखे ही हैं; हाँ, मृत्यु सम्बन्धी हुक्म की पुष्टि हाईकोर्ट से होनी चाहिए। इनमें फ़ौसला जूरी या असेसरों की सहायता से होता है। असेसर जज को अपनी सम्मति पर चन्ने के लिए बाध्य नहीं कर सकते।

सेशन जजों के नीचे मजिस्ट्रेट रहते हैं। बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में 'प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट', छावनियों में 'छावनी-मजिस्ट्रेट' एवं कुछ नगरों और कस्बों में 'आनरेरो' अर्थात् अवैतनिक मजिस्ट्रेट और पहले, दूसरे, या तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट रहते हैं। आनरेरो मजिस्ट्रेटों का पद अब कई स्थानों में तोड़ दिया गया है। प्रेसीडेन्सी-मजिस्ट्रेटों तथा अव्वल दर्जे के मजिस्ट्रेटों को दो साल तक की कैद और एक हजार रुपए तक का जुर्माना करने का अधिकार होता है। दूसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट छः मास तक की कैद और दो सौ रुपए तक जुर्माना कर सकते हैं। तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट एक मास तक की कैद और पचास रुपए तक का जुर्माना कर सकते हैं।

अपील पद्धति—यहाँ दूसरे और तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट के फ़ौसले के विरुद्ध, जिला मजिस्ट्रेट के सामने अपील हो सकती है; और, अव्वल दर्जे के मजिस्ट्रेट के फ़ौसले की अपील सेशन कोर्ट में चल सकती है। जिन मनुष्यों को मुकदमे की प्रारम्भिक दशा में सेशन कोर्ट ने दोषी ठहराया हो, उनकी अपील उस प्रान्त के चीफ़ कोर्ट या हाईकोर्ट में हो सकती है। [जब मृत्यु का हुक्म दे दिया जाता है तो प्रान्त के शासक या वायसराय के पास दया के लिए दर्खास्त दी जा सकती है।] दीवानी के मुकदमों में भी अपील के लिए कम स्थान नहीं है। मुग़िसफ़ के फ़ौसलों की अपील जिला-जज के यहाँ हो सकती है, जो यदि चाहे तो उसे सबजज के पास भेज सकता है। सबजज या

जिला-जज के फ़ैसलों की अपील कुछ दशाश्रों में जुडीशल कमिश्नर्स कोर्ट में, या हाईकोर्ट में हो सकती है। हाईकोर्टों के कुछ फैसलों की अपील संघ-न्यायालय में हो सकती है।

पंचायतें—अब प्रत्येक प्रान्त में पंचायतों का विस्तार हो रहा है, इन्हें कुछ छोटे-छोटे दीवानी और फौजदारी मामलों का फैसला करने का अधिकार है। इनमें प्रायः पाँच या अधिक सदस्य होते हैं, उनमें एक सरपंच होता है। पंचायत में पेश होनेवाले मुकदमों में किसी पक्ष की ओर से कोई वकील पैरवी नहीं कर सकता। ये वादी-प्रतिवादी से कुछ फीस ले सकते हैं। इनके द्वारा फैसला कराने में अन्य ग्वर्च नाम मात्र का होता है; और इनके फैसलों की अपील भी नहीं होती। ये अपराधियों पर कुछ जुर्माना कर सकते हैं, इन्हें कैद करने का अधिकार नहीं होता।

संयुक्तप्रान्त का उदाहरण—आगे संयुक्तप्रान्त की पंचायतों के संगठन के विषय में आवश्यक बातें दी जाती हैं; दूसरे प्रान्तों में भी इससे मिलती-जुलती व्यवस्था है। इस प्रान्त की सरकार ने सन् १९४७ में संयुक्तप्रान्त का पंचायत-राज कानून बनाया है। इसके अनुसार सब गाँवों या ग्राम-समूहों में ग्राम-सभाएँ स्थापित की गई हैं, जिनके आजीवन सदस्य ग्राम-क्षेत्र के सब प्रौढ़ (इक्कीस वर्ष या अधिक आयु के) व्यक्ति—पुरुष और स्त्री—होते हैं। ग्राम-सभा अपने सदस्यों में से एक सभापति और एक उप-सभापति चुनती है, जो तीन-तीन वर्ष तक अपने पदों पर रहते हैं। इस ग्राम सभा-की कार्यकारिणी ग्राम-पंचायत होती है। इसके निर्वाचित सदस्यों की संख्या प्रधान और उप-प्रधान के अतिरिक्त, गाँव की जनसंख्या के अनुपात से ३० से ५१ तक होती है। ग्राम-सभा के सभापति और उपसभापति ग्राम-पंचायत के भी सभापति और उपसभापति होते हैं। पंचायत के निर्वाचित सदस्य तीन वर्ष तक सदस्य रहते हैं, मरन्तु कुल सदस्यों में से एक-तिहाई हर वर्ष अवकाश ग्रहण करते जाते हैं।

पंच-मंडल तथा बेंच का निर्माण—साधारणतया तीन से लेकर पाँच गाँवों तक के क्षेत्र का एक सर्कल होता है। प्रत्येक सर्कल में एक पंचायती अदालत स्थापित होती है। किसी क्षेत्र की प्रत्येक ग्राम-सभा उस क्षेत्र की पंचायती अदालत के लिए निर्धारित योग्यता वाले तथा प्रौढ़ आयु के पाँच पंच चुनती है। उस क्षेत्र की सब ग्राम-सभाओं के इस प्रकार चुने हुए पंचों का पंचमंडल ('पेनल') होता है। सब पंच अपने-अपने से एक ऐसे व्यक्ति को सरपंच चुनते हैं जिसमें कार्यवाही लिखने की योग्यता हो। इस प्रकार एक सर्कल के लिए २५ पंच चुने जाते हैं और ये पंच सरपंच का चुनाव करते हैं। पंच ऐसा व्यक्ति चुना जाता है जो आसानी से हिन्दी पढ़-लिख सकता हो; उसका चुनाव तान साल के लिए होता है।

सरपंच प्रत्येक मुकदमे के लिए पंच-मंडल में से पाँच पंचों का एक बेंच नियुक्त करता है; उसमें कम-से-कम एक पंच ऐसा होता है जो गवाही और कार्रवाई लिख सके। प्रत्येक बेंच के दो पंचों में से एक-एक पंच ग्राम-सभा के ऐसे इलाकों का रहनेवाला होता है जिसमें वादी और प्रतिवादी रहते हैं।

पंचायती अदालत के अधिकार—पंचायती अदालतों को दीवानी, फौजदारी तथा माल के निर्धारित अधिकार हैं। दावे लिखित या ज़बानी हो सकते हैं। अदालत के फैसले की अपील नहीं होती। परन्तु यदि किसी मामले में अन्याय हो तो उसकी निगरानी—दीवानी के मामले की मुन्सिफ, माल की हाकिम-परगना-माल, और फौजदारी की हाकिम-परगना-फौजदारी के यहाँ—होती है। कोई वकील पंचायती अदालत में पैरवी नहीं कर सकता। यदि कोई गवाह सम्मन तामील होने पर हाज़िर न हो तो उम पर मुकदमा चलाया जा सकता है और २५) तक का ज़मानती वारन्ट भी जारी हो सकता है। अदालत अपनी डिगरी वसूल करा सकती है और आवश्यकतानुसार दूसरी पंचायती अदालत या मुन्सिफ के पास भी भेज सकती है। जो मुकदमा पंचायती

अदालत के अधिकार का होता है, उसे कोई दूसरी अदालत नहीं करती। यदि दावा करनेवाले के बयान लेने पर उसे यह विश्वास हो जाय कि मुकदमा निरर्थक, परेशान करनेवाला या झूठा है तो पंचायती अदालत दीवानी या माल के मुकदमे को खारिज कर सकती है। पंचायती अदालत को दीवानी के (१००) तक की मालियत का मुकदमा करने का अधिकार होता है। सरकार इस अधिकार को ५०० तक बढ़ा सकती है। अदालत १०० तक के दावे जो चल सम्पत्ति या उसके मूल्य या उसकी हानि के सम्बन्ध में हो या मवेशियों द्वारा की गई क्षति की पूर्ति के लिए हों, कर सकती है। परन्तु वह सामेदारी के, वसीयत या गैर-वसीयत जायदाद के, सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध, नाबालिग की ओर से या उसके विरुद्ध, या कब्ज़ा-आराज़ी के दावे नहीं सुन सकती।

फौजदारी के कुछ मुकदमों के उदाहरण ये हैं:—सार्वजनिक मार्ग पर लड़ाई, सम्मन तामिल न करना या उल्लंघन करना, अश्लील क्रिया या गीत, मारपीट, हमला, किसी को बन्द करने के लिए हमला, ज़बर-दस्ती बेगार, ५० से कम मूल्य की चोरी, भूमि या मकान में अनधिकार-प्रवेश या अधिकार कर लेना, धमकी, स्त्री की लज्जा अपहरण करने की चेष्टा आदि। जुर्माने में अदालत वादी को खर्चा दिला सकती है और क्षति-पूर्ति भी दिला सकती है। यदि अदालत को विश्वास हो जाय कि दावा निरर्थक, झूठा या केवल परेशान करने को किया गया है तो वह अभियुक्त को वादी से मुआवजा दिला सकती है, जो ५ से अधिक न हो। यदि अदालत की राय में कोई मुकदमा ऐसा हो जिसे सुनने का उसे अधिकार नहीं है, अथवा वह अपराधी को उचित दण्ड नहीं दे सकती, तो वह उस मुकदमे के वादी को उसका दावा वापिस कर देती है ताकि वह उसे किसी मजिस्ट्रेट के सामने पेश करे। यदि अदालत के सरपंच को ऐसा विश्वास हो कि किसी व्यक्ति की ओर से शान्ति-भंग की जाने की आशंका है तो जॉच के बाद पंचायत उस व्यक्ति से १००)

तक की ज़मानत मुचलका, १५ दिन तक के लिए, ले सकती है। पंचायती अदालत को कैद की सजा देने का अधिकार नहीं है; वह केवल १००) तक जुर्माना कर सकती है।

विशेष वक्तव्य—भारत के विविध प्रान्तों से जमींदारी प्रथा हट रही है। इससे जमींदारों और किसानों के बीच होने वाले मुकदमों में बन्द हो जायेंगे। इसके अलावा पंचायतों के विस्तार से भी मुकदमों में बन्द होने में अच्छी सहायता मिलेगी। गाँव वालों को चाहिए कि पंचायतों का संगठन सोच-विचार कर, तथा निस्पक्ष और निस्वार्थ भाव से करे और मुकदमों में बन्द होने वाली हानि को रोके। नगर और शहरों में रहने वालों को भी मुकदमों में बन्द होने से यथा-सम्भव बचते रहना चाहिए। नागरिकों में आपस में सहयोग का भाव बढ़ने से इस दिशा में अच्छी प्रगति होगी।

सोलहवाँ परिच्छेद स्थानीय संस्थाएँ

‘स्थानीय स्वराज्य’—अगस्त १९४७ से भारत स्वतंत्र है। सन् १९३५ से यहाँ प्रान्तीय शासन में कुछ स्वराज्य की स्थापना हुई थी, तथापि केन्द्रीय विषयों में तो परतंत्रता बनी ही रही। अंगरेजों के शासन-काल में, खासकर सन् १८७० से जनता स्थानीय मामलों में कुछ स्वाधीन हुई। किसी पराधीन देश में, जिन विषयों का सम्बन्ध किसी एक शहर, कस्बे या गाँव से हो, उनके प्रबन्ध के लिए तथा वहाँ की जनता की सामूहिक सुविधाओं की व्यवस्था करने के वास्ते, वहाँ के ही आदमियों का अधिकार प्राप्त होना स्थानीय स्वराज्य कहलाता है। और, इन अधिकारों का उपयोग करने के लिए बनाई हुई संस्थाओं को स्थानीय-स्वराज्य-संस्थाएँ कहते हैं। इस प्रकार ‘स्थानीय स्वराज्य’ और ‘स्थानीय स्वराज्य संस्थाएँ’, शब्द उस समय के चले हुए हैं, जब देश

पराधीन था। पर शब्द चल पड़े हैं, आदमी इनका प्रयोग करने में विशेष तर्क से काम नहीं लेते। यदि विचार किया जाय तो अब स्वतंत्र होजाने पर इन शब्दों को जगह हमें क्रमशः 'स्थानीय शासन' और 'स्थानीय शासन-संस्थाएँ' या 'स्थानीय संस्थाएँ' शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

स्थानीय संस्थाओं का महत्व—इन संस्थाओं का बड़ा महत्व है। भिन्न-भिन्न शहरों और देहातों की परिस्थिति तथा आवश्यकताएँ अलग-अलग होती हैं। केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार को उनके विषय में व्योरेवार ज्ञान नहीं होता, और वे इन कार्यों की ऐसी अच्छाई तथा मितव्ययिता-पूर्वक व्यवस्था नहीं कर सकतीं, जैसी स्थानीय व्यक्तियों की संस्थाएँ कर सकती हैं। प्रत्येक स्थान के आदमियों को अपने यहाँ की समस्याओं और आवश्यकताओं का ज्ञान अधिक होता है, और उन्हें उनकी पूर्ति करने में रुचि भी विशेष होती है। वे स्थानीय कार्यों को बड़े उत्साह से करते हैं, और उनका अनुभव प्राप्त करके प्रान्त और देश के विविध राजनैतिक कार्य करने के अधिक योग्य हो जाते हैं। स्थानीय संस्थाओं के द्वारा अनेक आदमियों को लोकसेवा का अवसर सहज ही मिल सकता है।

स्थानीय संस्थाओं की एक और विशेषता है। गाँव या नगर में हर एक आदमी अपने यहाँ के बहुत से आदमियों को निजी तौर पर जानता है, और उनके गुण-दोषों तथा स्वभाव आदि से परिचित रहता है। इसलिए स्थानीय संस्था का कोई कर्मचारी जनता से अपने व्यवहार की बातें छिपी नहीं रख सकता, वह सहज ही धोखा-धड़ी नहीं कर सकता, वह रिश्वत या घूस आदि नहीं ले सकता तथा किसी प्रकार का अनैतिक व्यवहार करने का साहस नहीं कर सकता। वह जानता है कि ऐसा करने से तुरन्त ही स्थानीय लोकमत उसके विरुद्ध हो जायगा, जिसे कोई भला आदमी कभी पसन्द नहीं करता।

आज कल लोगो का जीवन बड़ा व्यस्त हो चला है। शहरों के

तीन-तीन चार-चार या अधिक मंजिलों वाले बड़ी-बड़ी विशाल इमारतों में रहने वाले आदमी प्रायः एक दूसरे से अपरिचित से रहते हैं, यहाँ तक कि वे उनका नाम या पेशा आदि भी नहीं जानते। फिर आजकल शहरों के उत्तरोत्तर बढ़ते रहने की प्रवृत्ति है। उनका आकार-प्रकार बढ़ता ही रहता है। कितने ही शहर इतने बड़े हो गए हैं कि वहाँ के एक आदमी को दूसरे अनेक योग्य व्यक्तियों से महीना या वर्षों मिलने-भेटने का अवसर नहीं आता। ऐसी परिस्थिति में स्थानीय संस्था की उक्त विशेषता जाती रहती है। विचारशील सज्जनों के लिए यह चिन्ता का विषय है। उनका मत है कि बड़े-बड़े नगरों को ऐसे कई-कई हिस्सों में बांट दिया जाय, कि एक बस्ती के आदमी आपस में अधिक-से-अधिक सम्पर्क रख सकें। अस्तु, वर्तमान अवस्था में भी अधिकांश स्थानीय संस्थाओं में उपर्युक्त विशेषता बहुत-कुछ बनी हुई है।

प्राचीन व्यवस्था—प्राचीन समय में यहाँ चिरकाल तक स्थानीय कार्य गाँवों में ग्राम-संस्थाओं, और नगरों में व्यापार या व्यवसाय-संघों आदि द्वारा होता रहा। भारतवर्ष की पंचायतें बहुत प्रसिद्ध रही हैं। प्रत्येक गाँव या नगर स्वावलम्बी होता था; पंचायत उसकी रक्षार्थ पुलिस रखती थी, छोटे-मोटे झगड़ों का निपटारा करती थी, भूमि-कर वसूल करके राजकोष में भेजती थी, तालाब, पाठशाला, मन्दिर, पुल, सड़क आदि सार्वजनिक उपयोगिता के कामों की व्यवस्था करती थी। गाँवों का जीवन सामूहिक तथा स्वावलम्बी होता था। हर गाँव में कितने ही कार्यकर्त्ता तो पुरतैनी होते थे, जैसे पुजारी, महाजन, मुनार, तेली, नाई, लुहार, धोत्री, जुलाहा, चमार, भंगी, और बहुधा भिखारी भी। हरेक पेशेवाला सबकी भलाई के लिए काम करता था। पंचायत सबकी देख भाल करती थी। अपने क्षेत्र में वह यथेष्ट शक्ति-शाली होती थी। सरकारी कर्मचारी उसका आदर करते थे। राजा बादशाह तक उसके मामलों में दखल नहीं देते थे। सरकारी कर्मचारी मुखिया द्वारा गाँव का हाल मालूम करते, और शासक को उसकी

सूचना देते थे। प्रजा को इससे विशेष मतलब नहीं होता था कि प्रधान शासक कौन है, और उसको क्या नीति है। क्रमशः राजवंश बदले, क्रान्तियाँ हुई, बारी-बारी से हिन्दू (क्षत्रीय, राजपूत), पठान, मुगल, मराठे, सिक्खा का प्रभुत्व हुआ। परन्तु सब विघ्न-बाधाओं का सामना करते हुए भी ग्राम्य संस्थाओं ने अपना अस्तित्व और स्वतन्त्रता बनाए रखी।

प्रायः लोगों की धारणा है कि प्राचीन काल में यहां गांवों में तो पंचायते खूब थीं, परन्तु नगरों या शहरों में स्थानीय संस्थाएँ विशेष प्रभावशाली न थीं। परन्तु प्राचीन ग्रन्थों से, खासकर कौटिल्य के अर्थशास्त्र से यह गलत धारणा सहज ही दूर हो जाती है। उस समय प्रत्येक शहर का प्रबन्ध करने के लिए वहाँ के निवासियों की एक संस्था थी, जिसकी कई कमेटियाँ होती थीं। प्रत्येक कमेटी अपने निर्धारित कार्यों को अच्छी तरह पूरा करती थी। नगर निवासियों की शिक्षा, स्वास्थ्य और व्यापार आदि की उचित व्यवस्था की जाती थी। गलियों, सड़कों और बाजारों की सफाई का पूरा प्रबन्ध था। कोई दुकानदार अपनी चीजों के अनुचित दाम नहीं ले सकता था, न वहाँ कोई मिलावट कर सकता था और न सड़ी-गली या खराब चीजे ही बेच सकता था। इस प्रकार नागरिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हितकारी नियंत्रण रखा जाता था। स्थानीय संस्थाओं की कर्तव्यपरायणता तथा शासकों द्वारा उन्हें यथेष्ट अधिकार तथा प्रतिष्ठा मिलने के कारण भारतीय जनता खूब सुखी और स्वस्थ थी।

अंगरेजों के शासन-काल में — अंगरेजों के प्रारम्भिक समय में ग्राम्य संस्थाओं की आय और अधिकार प्रान्तीय सरकारों द्वारा ले लिए जाने पर, ग्राम-संगठन का क्रमशः हास हो गया। यद्यपि कहीं-कहीं पञ्चायती मन्दिर और धर्मशाला आदि बनते रहे, ये प्राचीन व्यवस्था के स्मृति-चिन्ह मात्र थे। पीछे नवीन रूप से पञ्चायतें स्थापित की गईं। इसका विवेचन आगे किया जायगा।

अंगरेज अधिकारियों ने पहले नगरों या शहरों की ओर ध्यान दिया, और सन् १८४२ ई० से कुछ स्थानों में क्रमशः म्युनिसिपैलिटियों स्थापित कीं; इसके दो उद्देश्य थे—नगरों का सुधार होना और जन-साधारण को सार्वजनिक कार्य करने की व्यवहारिक शिक्षा मिलना। इन संस्थाओं की कुछ वास्तविक उन्नति सन् १८७० ई० (लार्डमेयो के समय) से हुई। सन् १८८४ ई० में लार्ड रिपन ने इनके अधिकार बढ़ाए, तब से इनका प्रचार बढ़ा। तथापि उन्नति की गति बहुत मन्द ही रही। सन् १९१८ ई० में सरकारी मन्तव्य प्रकाशित हुआ; उसमें, म्युनिसिपैलिटियों में निर्वाचित सदस्यों और निर्वाचकों की संख्या बढ़ाने, गैर-सरकारी सभापतियों के होने, तथा उनके अधिकार बढ़ाने पर, और ग्राम-पञ्चायतें स्थापित करने पर जोर दिया गया। सन् १९१९ ई० के शासन-सुधारों ने स्थानीय स्वराज्य को हस्तान्तरित विषय कर दिया अर्थात् इसे मंत्रियों को सौंप दिया। इससे इन संस्थाओं पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इनके कर्तव्य और अधिकार बढ़े। सन् १९२१ के लगभग प्रत्येक प्रान्त में पञ्चायत-कानून बनाया गया। इसके अनुसार उस प्रान्त की पञ्चायतों के अधिकार और संगठन सम्बन्धी नियम निर्धारित किए गए और बहुत से स्थानों में पञ्चायतें खुल गयीं। परन्तु स्मरण रहे कि इनके वर्तमान अधिकार पुरानी पञ्चायतों की अपेक्षा बहुत कम थे। इनके सदस्य नामज़द होते थे, ग्रामवालों के प्रतिनिधि नहीं। ये एक प्रकार की सरकारी संस्थाएँ ही थीं। इनका कार्य सरकारी कर्मचारियों की सहायता से, और उनके ही निरीक्षण और नियंत्रण में होता था।

सन् १९३५ के विधान के बाद, एक प्रकार से प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना हुई। तब प्रान्तीय सरकारों का ध्यान स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं की उन्नति और प्रगति की ओर जाना स्वाभाविक ही था। इस समय इनकी जांच के लिए विविध प्रान्तों में कमेटियाँ बैठाई गईं, उन्होंने प्रायः अपने-अपने प्रान्त की संस्थाओं के सम्बन्ध में बहुत असन्तोष ही प्रकट किया।

वर्तमान स्थानीय संस्थाएँ—भारतवर्ष की वर्तमान स्थानीय संस्थाएँ निम्नलिखित हैं :—

- १—पञ्चायते,
- २—जिला-बोर्ड आदि,
- ३—म्युनिसिपैलिटियों, कारपोरेशन, नोटीफाइड एरिया,
- ४—इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट, और पोर्ट-ट्रस्ट ।

इनके दो भेद किए जा सकते हैं । पञ्चायते और जिला-बोर्ड आदि गाँवों के लिए हैं, और अन्य संस्थाएँ शहरों के लिए । भारतवर्ष में गाँवों की अधिकता है, और इसे कभी-कभी गाँवों का देश कहा जाता है । आजकल बहुत से गाँवों का बड़ा हास हो रहा है; अधिकतर आदमी निर्धन और अशिक्षित हैं; सफाई का प्रायः अभाव है । विविध कारणों से लोगों में गाँव छोड़कर नगरों में आने की प्रवृत्ति बढ़ रही है । शहरों की आवादी बढ़ने से वहाँ मकान, पानी और ताजी हवा की, तथा गंदे पानी के बहाव आदि की, समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं । अस्तु, अब हम गाँवों और शहरों की वर्तमान स्थानीय संस्थाओं का क्रमशः विचार करते हैं ।

(१)

पंचायतें और जिला-बोर्ड आदि

स्वतंत्र भारत और पंचायत-राज—सन् १९४७ में भारत-वर्ष के स्वतंत्र हो जाने पर यहाँ की सरकार ने यह अनुभव किया कि यह देश गाँवों का देश है; यहाँ की ६० प्रतिशत जनता गाँवों में रहती है; उसमें नवजीवन का संचार करने के लिए गाँवों में पञ्चायत-राज कायम किया गया, जिससे आदमी अपने-अपने गाँव का शासन अपने हाथ में ले । वे अपने झगड़े अपने आप निपटा सकें; फौजदारी, दीवानी तथा माल के मुकदमों का बिना वकील की सहायता के फैसला कर सकें । यही

नहीं; वे शिक्षा, चिकित्सा और यातायात के लिए पाठशाला, औपधालय सड़कें आदि बनवा सकें, जिससे अपनी सार्वजनिक आवश्यकताएँ पूरी करते हुए वे उत्तरोत्तर उन्नति करते रहें।

संयुक्तप्रान्त का उदाहरण—अब हम पञ्चायतों के कार्य, अधिकार, और आय आदि की बातों को स्पष्ट करने के लिए संयुक्तप्रान्त की पञ्चायतों की मुख्य-मुख्य बातों का उल्लेख करते हैं। अन्य प्रान्तों की पञ्चायतों सम्बन्धी स्थिति इससे भिन्न-भिन्न होती है, अथवा बहुत-कुछ इस तरह की होने वाली है। इस प्रकार आगे के वर्णन से भारत की वर्तमान पञ्चायतों के सम्बन्ध में साधारण ज्ञान हो जायगा। पञ्चायतों के न्याय सम्बन्धी कार्यों या अधिकारों के विषय में हम पिछले परिच्छेद में लिख आए हैं, अतः यहाँ उनकी अन्य बातों का ही विचार किया जायगा।

ग्राम-सभा—पहले ग्राम-सभाओं के विषय में जान लेना चाहिए, क्योंकि इनसे ही ग्राम-पञ्चायतों का निर्माण होता है। साधारणतया लगभग एक-एक हजार आबादी वाले गाँव या ग्राम-समूह में ग्राम-सभा स्थापित की जाती है। यदि किसी गाँव की आबादी एक हजार से कम हो और उसे निकटवर्ती (तीन मील के भीतर) गाँव या गाँवों में न मिलाया जा सके, तो उसमें एक पृथक् ग्राम-सभा होती है। ग्राम-क्षेत्र के सब प्रांढ़ अर्थात् इक्कीस वर्ष या अधिक आयु के व्यक्ति ग्राम-सभा के आजीवन सदस्य होते हैं। लेकिन ऐसा कोई व्यक्ति किसी ग्राम-सभा का सदस्य नहीं होता—(क) जिसका दिमाग खराब हो, या (ख) जिसे कोढ़ हो, या (ग) जो दिवालियापन से बरी नहीं किया गया हो, या (घ) जो सरकारी कर्मचारी हो, या (च) जिसे चुनाव सम्बन्धी किसी अपराध के लिए दंड मिल चुका हो, या (छ) जो नैतिक अपराध का दोषी हो, और जिसे नेकचलनी के लिए जमानत जमा करने की आज्ञा दी गई हो। इसमें शर्त यह है कि (ग), (च) और (छ) प्रतिबन्ध सरकार द्वारा हटाए जा सकते हैं।

ग्राम-सभा की प्रति वर्ष दो बैठके अवश्य होती हैं—खरीफ़ की बैठक और रबी की बैठक। खरीफ़ की बैठक में अगले वर्ष के बजट पर विचार होकर उसे स्वीकार किया जाता है; रबी की बैठक में पिछले वर्ष के हिसाब पर विचार होता है। ग्राम-सभा अपने सदस्यों में से एक सभापति (प्रधान या सदर) और एक उपसभापति (उप-प्रधान या नायब सदर) चुनती है, जो तीन-तीन वर्ष तक अपने पद पर रहते हैं। सभा के सदस्यों की कार्य-निर्वाहक संख्या (कोरम) उनकी कुल संख्या का पाँचवाँ हिस्सा होती है।

गाँव-पंचायत की स्थापना और संगठन—प्रत्येक गाँव-सभा अपने मेम्बरो में से एक कार्यकारिणी कमेटी का चुनाव करती है। उसकी यह कमेटी गाँव-पंचायत कही जाती है। इसके निर्वाचित सदस्यों की संख्या सभा के प्रधान और उप-प्रधान के अतिरिक्ति, सभा के क्षेत्र की जन-संख्या के अनुपात से ३० से ५१ तक होती है—

(१) यदि जनसंख्या १००० से अधिक न हो.....३० सदस्य

(२) यदि जनसंख्या १००० से अधिक हो,

किन्तु २००० से अधिक न हो.....३६ ,,

(३) यदि जनसंख्या २००० से अधिक हो,

किन्तु ३००० से अधिक न हो... ..३६ ,,

(४) यदि जनसंख्या ३००० से अधिक हो,

किन्तु ४००० से अधिक न हो.....४५ ,,

(५) यदि जनसंख्या ४००० से अधिक हो.....५१ ,,

परिगणित जातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात से सुरक्षित स्थानों की संख्या का हिसाब लगाते समय आधे से कम राशि-भागो को छोड़ दिया जायगा और जो अपूर्णांक आधे से कम न हो, उन्हें पूर्णांक गिना जायगा। अल्पसंख्यक जाति का एक मेम्बर अवश्य होगा।

गाँव-सभा के सभापति तथा उपसभापति गाँव-पंचायत के भी

सभापति और उपसभापति होंगे ।

पंचायत के निर्वाचित सदस्य ३ वर्ष के लिए सदस्य रहेंगे परन्तु कुल सदस्यों में से एक-तिहाई हर वर्ष अवकाश ग्रहण करते जायेंगे किसी गाँव-सभा या उसके किसी निर्वाचित-क्षेत्र की गाँव-पंचायत के मेम्बरों का चुनाव संयुक्त निर्वाचन-पद्धति के अनुसार किया जायगा ।

निर्वाचन कार्य-क्रम—जिलाधीश प्रत्येक ग्राम-सभा के लिए एक निर्वाचन-अध्यक्ष की, और हरेक निर्वाचन क्षेत्र के लिए एक सहायक निर्वाचन-अध्यक्ष की नियुक्ति करता है, और उस क्षेत्र के अन्तर्गत पंचायत के प्रधान, उप-प्रधान तथा सदस्यों और पंचायती अदालत के पंचों की उम्मेदवारों तथा चुनाव के निमित्त इसकी बैठक के लिए एक तारीख, समय और स्थान नियत करता है और इसकी घोषणा डुग्गी पिटवाकर या अन्य प्रकार से की जाती है ।

निर्वाचन-अध्यक्ष प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए आवश्यक पोलिंग अफसरों (मत-गणनाधिकारियों) को नियुक्त करता है ।

उम्मेदवारी का प्रस्ताव साधारण कागज पर होता है, जिसमें उम्मेदवार का नाम, विवरण, तथा उस पद का नाम जिसके लिए वह खड़ा हो रहा है, दिया जाता है । उस पर उम्मेदवार के तथा प्रस्ताव और अनुमोदन करनेवाले दो प्रौढ़ व्यक्तियों के हस्ताक्षर होते हैं ।

विभिन्न पदों अर्थात् (क) सभा के प्रधान (ख) उप-प्रधान, (ग) पञ्चायत के सदस्य, और (घ) पञ्चायती अदालत के पञ्च के चुनाव की कार्रवाई अलग-अलग की जाती है ।

निर्वाचन-क्षेत्र के प्रत्येक मतदाता को उतने ही मत देने का अधिकार होता है, जितने कि उस क्षेत्र के पञ्चायत के सदस्यों तथा ग्राम-सभा के अन्य पदों के लिए, जैसा भी दशा हो, उम्मेदवार हों ।

प्रत्येक समूह का मत-गणनाधिकारी सभा के प्रधान, उप-प्रधान, पञ्चायत के सदस्य तथा पञ्चायती अदालत के पदों के लिए खड़े होने वाले प्रत्येक स्वीकृत उम्मेदवार के लिए हाथ उठवा कर मत लेता है,

और निर्वाचन-अध्यक्ष को लिखित सूचना देता है कि प्रत्येक उम्मेदवार को कितने मत प्राप्त हुए ।

जब उम्मेदवारों को मिलनेवाले मतों की समानता हो तो उनमें से कौनसा उम्मेदवार सफल घोषित किया जाय—इसका निर्णय लाटरी द्वारा (चिट्ठी डालकर) निर्वाचन-अध्यक्ष और उम्मेदवारों के सामने उस विधि से किया जाता है, जिसे निर्वाचन-अध्यक्ष निश्चित करे ।

पंचायत के कर्मचारी—पञ्चायत को अधिकार हैं कि वह तहसीलदार द्वारा स्वीकृत योजना के अनुसार कर्मचारियों को नियुक्त करे । नियुक्ति के समय कर्मचारी की आयु २० से ३५ वर्ष तक की होनी चाहिए । पञ्चायत के मंत्री की इंटरमिडियेट (एफ० ए०) तक की योग्यता होनी आवश्यक है, दूसरे कर्मचारियों को हिन्दुस्तानी मिडल या एंग्लो वर्नाक्यूलर की आठवीं कक्षा पास होना चाहिए ।

पंचायतों के कर्त्तव्य—प्रत्येक पञ्चायत का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने अधिकार-क्षेत्र में अपने कोष के अनुसार खासकर निम्नलिखित बातों की व्यवस्था करे :—

(क) जन-मार्ग बनवाना, उनको मरम्मत कराना, उन्हें अच्छी दशा में रखना, उनकी सफाई तथा उनमें रोशनी कराने का प्रबन्ध करना ।

(ख) चिकित्सा सम्बन्धी सहायता ।

(ग) सफाई के लिए संक्रामक रोगों को दूर करने के लिए चिकित्सा सम्बन्धी और रोक-थाम के उपायों को काम में लाना ।

(घ) गाँव-सभा को हमारतों आदि को अच्छी दशा में रखना, उनकी रक्षा करना और उनकी देख-भाल करना ।

(च) जन्म, मृत्यु और विवाहों के व्योरे रखना । [विवाहों सम्बन्धी व्योरे रखने का अभिप्राय बालविवाह की प्रथा को रोकना है ।]

(छ) मनुष्यों और पशुओं की लाशों तथा अन्य दुर्गन्ध वाले पदार्थों का ठीक प्रबन्ध करने के लिए स्थानों की व्यवस्था करना ।

(ज) अपने क्षेत्र के स्थानीय मेलो, बाजारों और हाटों को नियन्त्रित करना ।

(झ) बालक-बालिकाओं के लिए प्रारम्भिक शिक्षा के (प्राइमरी) स्कूल खोलना और कायम रखना ।

(ट) लोगों के सामान्य लाभ के लिए सार्वजनिक चरागाहों और भूमि को छोड़ना या कायम रखना और उनका प्रबन्ध तथा देख-भाल करना ।

(ठ) पीने, कपड़ा धोने, और नहाने के लिए पानी पहुँचाने के वास्ते सार्वजनिक कुआँ, तालाबों और पोखरों को बनवाना, सुधराना और अच्छी दशा में बनाए रखना ।

(ड) नई इमारतों के बनवाने और वर्तमान इमारतों के बढ़ाए जाने या उसमें परिवर्तन करने के नियम बनाना ।

(ढ) खेती-बारी, व्यापार और उद्योग-धन्धों की उन्नति में सहायता करना ।

(त) आग लग जाने पर उसे बुझाने और लोगों के जीवन और सम्पत्ति की रक्षा करने में सहायता देना ।

(थ) पशु-गणना, मनुष्य-गणना, और ऐसे दूसरे आँकड़ों के सम्बन्ध में निर्धारित विवरण रखना ।

(द) जच्चा-बच्चा का हित-साधन करना ।

(ध) खाद इकट्ठा करने के लिए स्थान नियत करना ।

पंचायत के अधिकार; जन-मार्गों आदि के सम्बन्ध में—

पंचायत का नियन्त्रण ऐसे सब सार्वजनिक मार्गों तथा जन-मार्गों पर है जो उसके अधिकार-क्षेत्र में हों । वह ऐसे सब काम करती है, जो उनको अच्छी दशा में बनाए रखने और उनकी मरम्मत करने के लिए आवश्यक हों; और वह

(क) नए पुल-या पुलिया बनवायगी, उन्हें आवश्यकतानुसार बदल देगी, छोड़ देगी या बन्द कर देगी ; उन्हें चौड़ा या गहरा करेगी ।

(ख) ऐसी भाड़ी या पेड़ की शाखा को काटेगी जो सार्वजनिक मार्ग पर झुक आई हो ।

(ग) सार्वजनिक उपयोग में आनेवाले किसी श्रोत (चश्मे) का पानी केवल पीने या खाना बनाने आदि के काम के लिए सुरक्षित रखने की घोषणा करेगी ।

सफ़ाई सम्बन्धी सुधार — गाँव-पंचायत को यह अधिकार है कि वह नोटिस द्वारा किसी भूमि या इमारत के मालिक को निम्न-लिखित बातें करने के लिए आदेश दे :—

(क) किसी पाखाने, पेशाबखाने, नाबदान, नाली, चहबूचा या दूसरी गन्दगी का बर्तन, मोरी का गन्दा पानी कूड़ा-करकट या मैल जमा करने की जगह, जो ऐसी भूमि या इमारत से संबंधित हो, बन्द करना, हटाना, उसमें परिवर्तन करना, उसकी मरम्मत करना, उसको सफ़ाई करना, कीटाणुनाशक दवाइयों द्वारा उसे शुद्ध करना या अच्छी दशा में रखना या किसी ऐसे पाखाना, पेशाबखाने या नाबदान को जो किसी सड़क या नाली पर खुलता हो, हटाना या उसके किसी दरवाज़े आदि को बदलना या उसके लिए नाली बनाना, या ऐसे पाखाना, पेशाबखाना या नाबदान को एक उपयुक्त छत और दीवार या आड़ द्वारा राहगीरों या पड़ोस में रहनेवालों की दृष्टि से छिपाए रखना ।

(ख) किसी निजी कुएँ, तालाब, हौज़, जोहड़ (पोखर) गड्ढा या खुदी हुई गहरी जगह को जो उस भूमि या इमारत में हो जो गाँव-पंचायत की राय में स्वास्थ्य के लिए हानि-कारक हो, पड़ोस में रहने-वालों के लिए नागवार हो, साफ़ करना, उसकी मरम्मत करना, उसे ढक देना, भरना, गहरा करना या उसमें से पानी निकालना ।

(ग) वहाँ से अनस्पति, पेड़ों के नीचे उगने वाली छोटी झाड़ियाँ नागफनी आदि को साफ़ करा देना ।

(घ) वहाँ से धूल, गोबर, गलीज़ खाद या किसी बदबूदार चीज़ को

हटाना और भूमि या इमारत की सफाई करना ।

कुछ अफसरों के दुराचार की रिपोर्ट—यदि किसी पंचायत को अपने क्षेत्र के भीतर रहनेवाले किसी आदमी से अमीन, टीका लगानेवाले, कान्स्टेबल, पटवारी, सिचाई-विभाग के पतरौल या किसी सरकारी विभाग के चपरासी के विरुद्ध सरकारी कर्तव्यों के पालन करने में दुराचार सम्बन्धी शिकायत मिले और उसका प्रगट रूप से प्रमाण हो तो उस पंचायत को, अधिकार है कि वह उस शिकायत को अपनी रिपोर्ट के साथ उपयुक्त अधिकारी के पास भेज दे। उस अधिकारी का कर्तव्य होगा कि वह आवश्यक जाँच करने पर उचित कार्रवाई करे और उसके नतीजे की सूचना पंचायत को भेज दे।

पंचायतों के ऐच्छिक कार्य—कोई गाँव-पंचायत नीचे दी हुई बातों के सम्बन्ध में भी व्यवस्था कर सकती है :—

(क) जन-मार्ग के दोनों ओर तथा दूसरे सार्वजनिक स्थानों में पेड़ों को लगाना और उन्हें अच्छी दशा में रखना ।

(ख) मवेशियों की नस्ल सुधारना, उनकी चिकित्सा और उनके रोगों की रोक-थाम करना ।

(ग) गन्दे गड्ढों को भरवाना और भूमि को समतल कराना ।

(घ) गाँव की रक्षा और चौकी-पहरे के लिए, पंचायत और पंचायती अदालतों को उनके काम में सहायता करने के लिए और उनके द्वारा जारी किए हुए सम्मनों और नोटिसों की तामील करने के लिए गाँव-स्वयंसेवक दल का संगठन करना ।

(च) सरकारी ऋण प्राप्त करने, उसे आपस में बाँटने और उसके चुकाए जाने के सम्बन्ध में किसानों की सहायता करना और उनको परामर्श देना ।

(छ) सहकारिता सम्बन्धी कामों की उन्नति और बढ़िया बीज और औज़ारों के गोदाम (भण्डार) स्थापित करना ।

(ज) दुर्भिन्न या दूसरी विपत्तियों के समय सहायता करना ।

(झ) आवादी के क्षेत्र को बढ़ाना ।

(ट) पुस्तकालय या वाचनालय स्थापित करना और उसे कायम रखना ।

(ठ) मनोरंजन और खेलों के लिए अखाड़े और क्लब आदि स्थापित करना और कायम रखना ।

(ड) खाद और कूड़ा-कर्कट जमा करने, हटाने और उसका प्रबन्ध करने के नियम बनाना ।

(ढ) आवादी के २२० गज़ के अन्दर चमड़े को साफ़ करने, कमाने और रंगने की मनाही करना या उसके सम्बन्ध में नियम बनाना ।

(त) विभिन्न जातियों में सद्भाव और सामाजिक एकता बढ़ाने के लिए संस्थाएँ स्थापित करना ।

(थ) सार्वजनिक रेडियो सेट और ग्रामोफोन का प्रबन्ध करना ।

(द) सार्वजनिक उपयोगिता के ऐसे अन्य कार्य करना जिससे गाँव-वालों की नैतिक और भौतिक उन्नति हो ।

(ध) जिला-बोर्ड की अनुमति से लोगों की भलाई के ऐसे अन्य कार्य करना जो जिला-बोर्ड के कार्यों के अन्तर्गत हो ।

गाँव-कोष—गाँव-पञ्चायत अपने विविध कार्यों के लिए खर्च गाँव-सभा के कोष (फंड) से करती है । इस कोष को गाँव-कोष कहते हैं । इसमें निम्नलिखित रकमें जमा होती हैं :—

(क) जो पञ्चायत द्वारा लगाए हुए टेक्सों से वसूल हो ।

(ख) जो प्रान्तीय सरकार गाँव-सभा के सुपुर्द करे ।

(ग) जो किसी अदालत के हुक्म से जमा की जाय ।

(घ) जो किसी अपराध के सम्बन्ध में राजीनामा हो जाने पर प्राप्त हो ।

(च) जो पञ्चायत के कर्मचारियों द्वारा इकट्ठा किया हुआ कूड़ा-कर्कट, गोबर, खाद, तथा मरे हुए जानवरों की लाशें बेचने से

प्राप्त हो ।

(छ) जो नजूल की ज़मीन के लगान आदि के भाग के रूप में प्राप्त हो ।

(ज) जो प्रान्तीय सरकार, जिला-बोर्ड या दूसरे स्थानीय अधिकारी दे ।

(झ) जो ऋण या दान के रूप में प्राप्त हो ।

पंचायतों की आर्थिक स्थिति—साधारण तौर पर पंचायतों की आय के साधन बहुत कम मालूम होते हैं, और उन्हें सरकार या जिला-बोर्ड की सहायता पर निर्भर रहना पड़ेगा । परन्तु पंचायतों को हिम्मत से काम लेना चाहिए और स्वावलम्बी बनना चाहिए । गाँव में जो आदमी सम्पन्न या धनवान हों उनसे दान के रूप में यथेष्ट सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए । यहाँ लोगों में दान-धर्म की प्रवृत्ति बहुत है, और जब उन्हें मालूम होगा कि उनके ही गाँव में पंचायत द्वारा लोकहित का कार्य हो रहा है तो वे उसमें भरसक सहायता करने से पीछे न हटेंगे । हाँ, यह आवश्यक है कि पंचायत के अधिकारी और कार्यकर्त्ता अपने सद्व्यवहार, ईमानदारी और मितव्ययिता से गाँव वालों के विश्वास-पात्र हों, और गाँव-फंड का एक-एक पैसा खूब सोच-समझ कर खर्च करें ।

गाँव वालों का उत्तरदायित्व—संयुक्त प्रान्त आदि में पंचायतों के काम की देखभाल के लिए एक 'पंचायत-राज-विभाग' स्थापित किया है । पंचायतों का काम करने वालों के शिक्षण की व्यवस्था की जाती है । गाँव वालों को चाहिए कि अपने उत्तरदायित्व को समझे और अपने नये अधिकारों का सोच-समझ कर सावधानी से उपयोग करें । तभी ग्राम-पंचायतों की स्थापना का उद्देश्य पूरा होगा । पंचायतों का कार्यक्षेत्र कितना विस्तृत है, यह पहले बताया जा चुका है । आजकल गाँवों की हालत इतनी खराब है, इतनी गन्दगी है और बीमारियाँ इतनी फैली हुई हैं कि वहाँ रहना कठिन है । इन गाँवों को

सुन्दर स्वच्छ और निरोग बनाना है, इन्हें भले आदमियों के रहने योग्य बनाना है, ग्राम-जीवन की महिमा बढ़ानी है। इस महान कार्य को करने के लिए गाँववाले और गाँव-पंचायते कटिबद्ध हो जायें।

जिला-बोर्ड आदि का संगठन—अब गाँवों में शिक्षा स्वास्थ्य आदि का कार्य करनेवाली दूसरी संस्था—जिला-बोर्ड—का विचार करते हैं। इसकी स्थापना सन् १८७० के बाद हुई है। पहले गाँवों का प्रबन्ध पंचायतों द्वारा होता था। अंगरेजों के शासन में उनकी शक्ति का हास होगया और उन्होंने अनेकानेक गाँवों के बड़े-बड़े क्षेत्रों का कार्य संगठित करने के लिए बोर्ड बनाए। बोर्ड शब्द का अर्थ संस्था या समिति है, चाहे वह किसी भी कार्य सम्बन्धी हो। परन्तु यहाँ इस से केवल उसी संस्था का आशय लिया जाता है, जो गाँव वालों की सुविधाओं और उन्नति की व्यवस्था करे तथा उनके दैनिक जीवन में सहायक हो। बोर्ड सब प्रान्तों में एक ही तरह के नहीं हैं। आसाम में तालुका बोर्ड ही है, जिला-बोर्ड नहीं है। [मध्यप्रान्त में जिला बोर्ड को जिला-कौंसिल कहा जाता था, सन् १९४८ से वहाँ जनपद सभाओं की स्थापना की गई है जिनका कार्यक्षेत्र ग्राम्य और शहरी दोनों प्रकार का होता है।]। प्रायः जिला-बोर्ड की अधीनता में दो-दो या अधिक अधीन-जिला-बोर्ड या तालुका-बोर्ड हैं। मदरास में कुछ गाँवों को मिलाकर उनकी यूनियन-कमेटियों बनाई गई हैं।

बोर्डों के निम्नलिखित तीन भेद हैं; किसी-किसी प्रान्त में तो इनमें से तीनों ही प्रकार के बोर्ड हैं; और कहीं-कहीं केवल दो या एक ही तरह के हैं:—

१—लोकल बोर्ड। यह एक गाँव में या कुछ ग्रामों के समूह में होता है।

२—ताल्लुका या सब-डिविजनल बोर्ड। यह एक ताल्लुके या सब-डिविजन में होता है। यह लोकल बोर्डों के काम की देख-भाल

करता है।

३—जिला-बोर्ड यह एक जिले में होता है, और जिले भर के अन्य बोर्डों का निरीक्षण करता है।

बोर्डों में चुने हुए सदस्य ही अधिक होते हैं। किस जिला-बोर्ड में कितने सदस्य हों, यह प्रत्येक प्रान्त के जिला-बोर्ड-कानून से निश्चित किया हुआ है। सभापति प्रायः चुना हुआ एवं गैर-सरकारी होता है। जिला-बोर्डों के सदस्यों (तथा सभापति) का चुनाव प्रायः चार वर्ष में होता है। सदस्यों के चुनाव के लिए प्रत्येक जिला कुल इलाकों या 'सर्कलों' में बंटा हुआ होता है, और यह निश्चित रहता है कि अमुक हलके से इतने सदस्य चुने जाने चाहिए। प्रत्येक निर्वाचक, सदस्य बनने के लिए, उम्मेदवार हो सकता है। मतदाता वही व्यक्ति हो सकता है, जो (क) भारतीय नागरिक हो, (ख) अपने जिले का निवासी हो, और (ग) आय-कर या निर्धारित लगान या मालगुजारी, या जिला-बोर्ड का कर देता हो, या निर्धारित परीक्षा पास हो। निम्न-लिखित व्यक्ति मतदाता या सदस्य नहीं हो सकते—पागल, दिवालिये, नाबालिग, जिसने गत वर्ष जिला-बोर्ड का कर न चुकाया हो।

बोर्डों के कार्य—बोर्डों का कर्तव्य अपने ग्राम्य क्षेत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य और सफाई आदि के अतिरिक्त, कृषि और पशुओं की उन्नति करना है। इनके कुछ अन्य कार्य ये हैं :—सड़के बनवाना और उनकी मरम्मत करवाना; उनपर पेड़ लगवाना तथा उन पेड़ों को रक्षा करना, पशुओं का इलाज करना और नस्ल सुधारना, मेले और नुमायशे आदि कराना। इन कार्यों के लिए तीन-तीन चार-चार सदस्यों की कई कमेटियाँ होती हैं। यथा शिक्षा-कमेटी, सफाई-कमेटी स्वास्थ्य कमेटी, आदि। कमेटियों का निर्माण बोर्ड के सभी सदस्य मिलकर करते हैं। प्रत्येक कमेटी का एक सभापति होता है। जिला-बोर्ड की मीटिंग प्रति मास होती है, आवश्यकता होने पर चाहे जबकी जासकती है। कमेटियों की मीटिंग आवश्यकतानुसार होती रहती है।

कुछ कार्यकर्ता, वेतन और भत्ता—जिला-बोर्ड की कमेटियों में शिक्षा-कमेटी बहुत महत्व-पूर्ण मानी जाती है, इसका सभापति शिक्षा-विभाग का चेयरमेन कहलाता है। जिले के गाँवों में हिन्दी (या अन्य प्रान्तीय भाषा) के सब स्कूल इसकी देख-रेख में काम करते हैं। नये स्कूल खोलने तथा अध्यापकों की नियुक्ति में इसका बड़ा हाथ रहता है। प्रत्येक जिला-बोर्ड का एक वैतनिक सेक्रेटरी होता है। दफ्तर का सब काम इसकी देख-भाल में होता है। इसके अधीन कई क्लर्क और चपरासी आदि काम करते हैं। बोर्ड में एक एंजिनियर, स्वास्थ्य-निरीक्षक और सफाई-निरीक्षक आदि भी होते हैं। ये सब कर्मचारी वैतनिक होते हैं, इन्हें नियमानुसार भत्ता भी मिलता है।

बोर्ड के सभापति और सदस्यों को वेतन नहीं मिलता। सभापति को दौरे का, प्रति मील के हिसाब से निर्धारित भत्ता मिलता है। सभापति और सदस्यों को नियमानुसार विशेष आय नहीं होती, तो भी इन पदों को प्राप्त करने के लिए प्रायः बहुत जोर का संघर्ष रहता है। कुछ आदमी इसलिए ही इन पदों के लिए चुनाव लड़ते हैं कि वे इनसे अनुचित लाभ उठा सकें,—अपने यार-दोस्त या सगे-सम्बन्धियों को सड़क आदि का ठेका दे सकें, या किसी प्रकाशक की पुस्तक अपने जिलों के स्कूलों में जारी करा सकें। यह भावना लोक-हित-घातक है।

बोर्डों की आय के साधन—बोर्डों की अधिकतर आय उस महसूल से होती है जो भूमि पर लगाया जाता है। इसे सरकारी वार्षिक लगान या मालगुजारी के साथ ही, प्रायः एक आना फी रुपए के हिसाब से, वसूल करके इन बोर्डों को दे दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, विशेष कार्यों के लिए सरकार कुछ रकम, कुछ शतों से, प्रदान कर देती है। आय के अन्य श्रोत ताजाब, घाट, सड़क का महसूल, पशु-चिकित्सा और स्कूलों की फीस, कौजो हौस की आमदनी, मेले या नुमायशों पर कर, तथा सार्वजनिक उद्यानों का भूमि-कर, हैं। (आसाम प्रान्त को छोड़कर) अधीन-जिला-बोर्डों का कोई स्वतन्त्र आय-श्रोत नहीं, उन्हें

समय-समय पर जिला-बोर्डों से ही कुछ मिल जाता है। वे उस रूप को उसकी सम्मति के विरुद्ध खर्च नहीं कर सकते।

विशेष वक्तव्य—लोकल बोर्ड, तालुका-बोर्ड और जिला-बोर्डों आदि के कर्तव्य अपने-अपने क्षेत्र में उसी प्रकार के हैं, जैसे पंचायतों के हैं। उनके कुछ कार्यों में तो पूर्ण रूप से समानता है। वास्तव में दो प्रकार की संस्थाओं के कार्यों में स्पष्ट भेद होना चाहिए जिससे एक क्षेत्र के एक कार्य की पूरी जिम्मेदारी एक ही संस्था पर हो। इस दृष्टि से बोर्डों का पुनः संगठन होना चाहिए। हमारा सुझाव है कि स्थानीय प्रबन्ध की सारी जिम्मेवारी गाँव-पञ्चायतों पर रहे, और जिला-बोर्ड अपने क्षेत्र की पञ्चायतों के ऊपर एक निरीक्षक संस्था हो। वह नीति निर्धारित करे और ऐसी योजनाओं में सहायक और पथ-प्रदर्शक हो जिनका सम्बन्ध कई पञ्चायतों के, क्षेत्र से, अथवा जिले भर से हो। ऐसा होने की दशा में जिला-बोर्ड का नाम जिला-पञ्चायत हो सकता है। यह जिला-पञ्चायत जिला-मजिस्ट्रेट के लिए ग्राम-सम्बन्धी विषयों में एक अच्छी सलाहकार कमेटी का काम दे सकती है।

अब हम कस्बों या शहरों की स्थानीय संस्थाओं का विचार करते हैं।

(२)

म्युनिसिपैलिटियाँ आदि

इन संस्थाओं का कार्यक्षेत्र आदि जानने के लिए कस्बों और शहरों की परिस्थिति ध्यान में रखना उपयोगी है।

शहरों की समस्याएँ—भारत में लगभग ८६ प्रतिशत जनता गाँवों में और शेष ११ प्रतिशत जनता शहरों में रहती है। परन्तु जैसा पहले कहा गया है कि शहरों में रहने वालों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। व्यापार, उद्योग-धंधों आदि की वृद्धि के कारण नए-नए शहर बनते जा रहे हैं। प्रायः हरेक शहर की आबादी बढ़ रही है, इससे

उनका विस्तार बहुत अधिक हो गया है। कुछ शहर अपनी पहली सीमा से बाहर इतने बढ़ गए हैं कि उनकी नई बस्ती पुरानी से भी अधिक हो गई है। शहरों को पुरानी चारदिवारियों को जगह-जगह से तोड़ कर पुरानो बस्ती को नई बस्तो से जोड़ा गया है। कुछ शहर तो अपने पास के गाँवों को भी अपने अन्दर मिला चुके हैं फिर भी उनमें वहाँ के आदिमियों के रहने के लिए जगह काफी नहीं है। मकानों का किराया वेहद बढ़ा हुआ है। अनेक आदमी बहुत अधिक किराया देने को तैयार रहने पर भी मकान नहीं पा रहे हैं और किसी तरह अपने यार-दोस्तों या सगे सम्बन्धियों के यहाँ अथवा धर्मशाला या होटलों आदि में गुजर करते हैं। यह बात थोड़े ही समय चल सकती है, इसलिए इन्हे बार-बार नए निवास-स्थान को तलाश करने की समस्या का सामना करना पड़ता है।

शहरों में मकान कई-कई मंजिलों के हैं। इनमें हवा और रोशनी की समुचित व्यवस्था नहीं होती। नोचे की मंजिल में रहनेवाला को गर्मी की मौसम में रात में सोने की बड़ी असुविधा रहती है, सब के लिए ऊपर छतों पर जगह नहीं होता। कितने ही मकानों की छतों का बहुत सा भाग टिन, छप्पर, कबेलुआ या खपरेलो से छाया हुआ होने के कारण सोने योग्य नहीं होता। इस प्रकार बहुत से आदमी रात को सड़को या गलियों में सोते हैं, जहाँ पास में ही गन्दे पानी की नालियाँ बहती रहती हैं। शहरों के मकानों में पानी का अलग ही कष्ट है। अधिकतर शहरों में अब कुँआ का तो चलन रहा ही नहीं, नलों का प्रबन्ध है, और वह काफी नहीं है। प्रायः पानी चौबीसो घंटे न आकर, निर्धारित समय में ही आता है। वह भी कहीं कहीं तो दूसरी मंजिल पर भी मुश्किल से पहुँच पाता है; फिर तीसरी या चौथी मंजिल की तो बात ही क्या !

शहरों में सड़के और नालियाँ कुछ खास-खास बाजारों में ही ठीक हैं। जरा अन्दरूनी या भीतरी हिस्सों में जाइए, तो आपको उनकी

दुर्गति स्पष्ट हो जायगी। बस्ती इतनी घनी हो गई है कि सड़के यातायात के लिए बहुत कम चौड़ी मालूम होती हैं। आदमी नागरिकता के ज्ञान से इतने रहित हैं कि नालियाँ और सड़को को हर समय साफ बनाए रखना एक बड़ी समस्या हो गई है। कहीं तक गिनावें, शहरो का बाहरी रूप चाहे जितना आकर्षक हो, यहाँ के जीवन में अनेक असुविधाएँ हैं, जिन्हें दूर करने का दायित्व म्युनिसिपैलिटियों आदि संस्थाओं पर है।

म्युनिसिपैलिटियाँ—ये नगरों में काम करती हैं। प्रत्येक म्युनिसिपैलटी की सीमा निश्चित की हुई है। जो लोग उसके अन्दर रहते और उसे टैक्स देते हैं, वे 'रेटपेयर' या कर-दाता कहाते हैं। म्युनिसिपैलिटियों का नया संगठन प्रायः चार साल में होता है। प्रत्येक प्रान्त में निर्वाचकों की योग्यता सम्बन्धी साधारण नियम एकसा है, व्योरेवार बातों में थोड़ा-बहुत भेद है। ग्राम तौर पर ऐसा हरेक आदमी निर्वाचक या मतदाता ('वोटर') हो सकता है, जो इक्कीस या अधिक वर्ष की उम्रवाला हो, म्युनिसिपैलटी की सीमा में कम-से-कम छः महीने से रहता हो, और जो निर्धारित किराए वाले मकान में रहता हो, या उसका मालिक हो, या जिसकी निर्धारित आय हो। स्त्रियों को भी मताधिकार है।

सदस्यों के चुनाव के लिए शहर को कई निर्वाचन-क्षेत्रों में बाँटा जाता है। प्रत्येक क्षेत्र को 'वार्ड' या हलका कहते हैं। हरेक वार्ड से दो-तीन सदस्य चुने जाते हैं। कुछ व्यक्ति अपने पद के कारण म्युनिसिपैलटी के सदस्य होते हैं और कुछ को प्रान्तीय सरकार नामज़द करती है।

म्युनिसिपैलिटियों के कुल सदस्य भिन्न-भिन्न शहरों में कुछ कम-ज्यादा होते हैं। सदस्यों को 'म्युनिसिपल कमिश्नर' कहा जाता है। बड़ी-बड़ी म्युनिसिपैलिटियों में अपना इन्जीनियर, ओवरसियर, स्वास्थ्य-अफ़सर, और सफ़ाई-निरीक्षक (सेनिटरी-इन्स्पेक्टर) आदि होते हैं। म्युनिसिपल-कर्मचारियों में सेक्रेटरी या एक्ज़ीक्यूटिव अफ़सर का पद बड़े महत्व का होता है।

इनके कार्य—म्युनिसिपैलिटियों के मुख्य कार्य, कहीं-कहीं कुछ भेद

होते हुए, माधारणतया ये हैं :—

(१) सर्वसाधारण की सुविधा की व्यवस्था करना—सड़के बनवाना, उनकी मरम्मत करना, और पेड़ लगवाना; डाक-बंगला या सराय आदि सार्वजनिक मकान बनवाना; कहीं आग लग जाय तो उसे बुझाना; अकाल, जल की बाढ़, या अन्य विपत्ति के समय जनता की सहायता करना ।

(२) स्वास्थ्य-रक्षा—अस्पताल या औपधालय खोलना, चेचक और प्लेग के टीके लगाने तथा मैले पानी बहाने का प्रबन्ध कराना, और छूतकी बीमारियों को रोकने के उचित उपाय काम में लाना, पीने के लिए स्वच्छ जल (नल आदि) की व्यवस्था करना, खाने के पदार्थों में कोई हानिकारक वस्तु तो नहीं मिलाई गई है, इसका निरीक्षण करना ।

(३) शिक्षा—विशेषतया प्रारम्भिक शिक्षा के प्रचार के लिए पाठ-शालाओं की समुचित व्यवस्था करना, मेले और नुमायशे कराना ।

(४) सड़को तथा गलियों में रोशनी करना; बिजली की रोशनी; ट्रामवे तथा छोटी रेलों के बनाने में सहायता देना ।

कार्य-पद्धति—सभापति और उप-सभापति सदस्यो द्वारा चुने जाते हैं । यह जरूरी नहीं है कि सभापति सदस्यो में से ही हो । उप-सभापति-पद के लिए कभी-कभी दो व्यक्ति भी चुने जाते हैं—एक सीनियर वाइस-चेयरमैन कहलाता है; दूसरा जिसका पद उससे छोटा होता है, जूनियर वाइस-चेयरमैन कहलाता है । म्युनिसिपेलटी अपने कार्य की सुविधा के लिए सारा प्रबन्ध विविध कमेटियों द्वारा करती है । प्रत्येक कमेटी में प्रायः ५ से १० तक सदस्य होते हैं । हर एक कमेटी का एक सभापति होता है । एक व्यक्ति दो या अधिक कमेटियों का भी सदस्य हो सकता है । कमेटियों की नियुक्ति बोर्ड स्वयं करता है । कमेटी में ऐसे आदमी भी मिला लिए जाते हैं जो म्युनिसिपेलटी के सदस्य न हों पर उस विषय में अनुभवी हों जिसकी कि वह

कमेटी है। ऐसे सदस्य को 'को-ऑप्टेड' या मिलाए हुए सदस्य कहते हैं। मुख्य कमेटियाँ निम्नलिखित होती हैं—(१) राजस्व (फाइनेन्स) कमेटी, (२) शिक्षा कमेटी, (३) स्वास्थ्य कमेटी, (४) निर्माण-कार्य (पब्लिक वर्क्स) कमेटी, चुङ्गी ('आक्द्राय) कमेटी।

प्रान्तीय सरकार म्युनिसिपलिटियों के काम का देख-भाल और नियन्त्रण करती है। कमिश्नर बजट को जाँच करता है और अनुचित समझे जाने वाले खर्च को रोक सकता है।

आमदनी के साधन—इन संस्थाओं की आमदनी के मुख्य-मुख्य साधन ये हैं :—(१) चुङ्गी। अधिकतर उत्तर भारत, बम्बई और मध्यप्रान्त में; यह इन संस्थाओं की सीमा के अन्दर आनेवाले माल तथा जानवरों पर लगती है। संयुक्तप्रान्त में इस कर की इतनी प्रधानता है कि कुछ जिलों में म्युनिसिपलिटियों का नाम ही चुङ्गी पड़ गया है। (२) मकान और जमीन पर कर (विशेषतया आसाम, बिहार, उड़ीसा, बम्बई, मध्यप्रान्त और पश्चिमी बंगाल में)। (३) व्यापार और पेशों पर कर (विशेषतया मद्रास, संयुक्तप्रान्त, बम्बई, मध्यप्रान्त और पश्चिमी बंगाल में)। (४) सड़को और नदियों के पुलों पर कर (विशेषतया मद्रास, बम्बई, और आसाम में)। (५) सवारियों, गाड़ी, बग्गी, साइकिल मोटर और नाव का शुल्क। (६) पानी, रोशनी, हाट-बाजार, कसाईखाने, पाखाने आदि का शुल्क (७) हैसियत, जायदाद और जानवरों पर कर। (८) यात्रियों पर कर; यह कर निर्धारित दूरी से अधिक के फासले से आने वालों पर लगता है और प्रायः रेलवे टिकट के मूल्य के साथ ही वसूल कर लिया जाता है। (९) म्युनिसिपल स्कूलों की फीस। (१०) कांजी हौस की फीस। (११) सरकारी सहायता या ऋण।

कुछ प्रान्तों में शिक्षा, अस्पतालों और पशु-चिकित्सा के लिए म्युनिसिपलिटियों को सरकारी सहायता मिलती है। जब किसी म्युनिसिपलिटि को मैले पानी के बहाव की नालियाँ बनानी होती हैं अथवा

जल-प्रबन्ध के लिए शहर में नल आदि लगाने होते हैं तो वह ऋण लेती है। यदि उचित समझा जाय तो इस खर्च का कुछ या सब भार प्रान्तीय सरकार कुछ शतों से अपने ऊपर ले लेती है।

कारपोरेशन—कलकत्ता, बम्बई और मदरास शहर में कारपोरेशन स्थापित हैं। इनके कार्य तथा कार्यपद्धति आदि म्युनिसिपैलिटियों के ही समान हैं; केवल इनका दर्जा ऊँचा है। बड़े शहरों की आवश्यकताओं की पूर्ति के विचार से इनका संगठन प्रभावशाली बनाया जाता है। इनके सदस्यों का चुनाव तीन साल के लिए होता है। कारपोरेशन के चेयरमेन को 'मेयर' और वाइस-चेयरमेन को 'डिप्टी मेयर' कहते हैं। ये दोनों पदाधिकारी इसके सदस्यों में से ही चुने जाते हैं। इनका चुनाव प्रतिवर्ष होता है। इन्हें वेतन नहीं दिया जाता। कारपोरेशन अपने सारे कामों की देखरेख के लिए एक वैतनिक पदाधिकारी नियुक्त करती है, जिसे एक्ज़ेक्यूटिव अफसर कहते हैं। इसके अतिरिक्त एक इन्जिनियर एक स्वास्थ्य-अफसर, एक सहायक एक्ज़ेक्यूटिव अफसर होते हैं। सब को कारपोरेशन स्वयं नियुक्त करती है, परन्तु प्रान्तीय सरकार से इनकी मंजूरी लेनी होती है। कारपोरेशन अपने सदस्यों की विविध कमेटियों का संगठन करके उन्हें भिन्न-भिन्न कार्य बांट देती है।

नागपुर और जबलपुर में भी कारपोरेशन स्थापित करने का विचार हो रहा है।

नोटीफाइड एरिया—ये अधिकतर पूर्वी पञ्जाब और संयुक्त-प्रांत में हैं। इन्हें म्युनिसिपैलिटियों के थोड़े-थोड़े से अधिकार होते हैं। ये उसी क्षेत्र में होते हैं, जहाँ बाजार या कस्बा अवश्य हो, और जिनकी जनसंख्या दस हजार से अधिक न हो। म्युनिसिपैलिटियों की अपेक्षा इनकी आय (एवं व्यय) कम है। इनके अधिकांश सदस्य नामज़द होते हैं।

इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट—बड़े-बड़े शहरों की उन्नति या सुधार के लिए कभी-कभी विशेष कार्य करने होते हैं, जैसे सड़कों को चौड़ी कराना,

घनी अस्तियों को हवादार बनाना, गरीबों और मजदूरों के लिए मकानों की सुव्यवस्था करना आदि। इन कामों को म्युनिसिपैलिटियों नहीं कर सकती; उन्हें तो अपना रोजमर्रा का काम ही बहुत है। अतः इनके वास्ते 'इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट' बनाये जाते हैं। ये कलकत्ता, बम्बई, इलाहाबाद लखनऊ और कानपुर आदि में हैं। इनके सदस्य प्रान्तीय सरकार, म्युनिसिपैलिटियाँ तथा व्यापारिक संस्थाओं द्वारा नामजद किए जाते हैं। इनकी नियुक्ति तीन वर्ष के लिए की जाती है। ट्रस्ट की बैठक साधारणतया प्रतिमास होती है। सदस्य अपने में से किसी को चेयरमैन चुन लेते हैं। ट्रस्ट एक वैतनिक सेक्रेटरी तथा अन्य कर्मचारियों को नियुक्त करता है। यह अपने अधिकारगत भूमि आदि का किराया या कीमत तथा आवश्यकतानुसार ऋण या सहायता लेता है।

इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट की स्थापना इसलिए की जाती है कि वह शहर को या उसके खास-खास हिस्सों को नए ढङ्ग से एक निर्धारित योजना के अनुसार बसाने का प्रबन्ध करे। घरों की बनावट, हवा और रोशनी का काफी ध्यान रखा जाय। जो सड़कें और गलिये बहुत तङ्ग हैं, जिनमें सूर्य का प्रकाश बहुत कम पहुँचता है, उन्हें चौड़ा करने का प्रयत्न किया जाय। भंगियों तथा अन्य गरीब लोगों के लिए मकान बनवाए जाँय। ट्रस्ट अपनी योजना प्रान्तीय सरकार के सामने रखता है और उसकी मंजूरी मिलने पर वह उसे अमल में लाता है। शहर को नए ढंग से बसाने या उसमें कुछ परिवर्तन करने में कुछ लोगों को बहुत हानि भी सहनी पड़ती है। उनके मकान गिराए जाते हैं और उन्हें मुआवज़े में मामूली रकम मिलती है। इसलिए अनेक स्थानों में इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट का बहुत विरोध भी होता है। परन्तु लोगों को लोकहित की भावना से एक सीमा तक अपनी निजी हानि सहने के लिए तैयार रहना चाहिए।

पोर्ट ट्रस्ट—कलकत्ता, बम्बई, मदरास, चटगाँव आदि बन्दरगाहों का स्थानीय प्रबन्ध करनेवाली संस्थाएँ 'पोर्ट ट्रस्ट' कहाती हैं।

ये घाटों पर मालगोदाम बनाती हैं, और व्यापार के सुभीते के अनुसार, नाव और जहाज़ की सुव्यवस्था करती हैं। समुद्र-तट, नगर के निकटवर्ती समुद्र-भाग, या नदी पर इनका पूरा अधिकार रहता है। इनकी पुलिस अलग रहती है। इनके सभासद कमिश्नर या ट्रस्टी कहाने हैं। सभासदों में चेम्बर-आफ-कामर्स जैसी व्यापार-संस्थाओं के प्रतिनिधि होते हैं। कलकत्ते में म्युनिसिपैलटी के भी प्रतिनिधि इनमें लिए जाते हैं। कलकत्ते के अतिरिक्त, सब पोर्ट ट्रस्टों में निर्वाचित सदस्यों की अपेक्षा नामजद ही अधिक रहते हैं। म्युनिसिपैलटियों की अपेक्षा पोर्ट ट्रस्टों में सरकारी हस्तक्षेप अधिक है। ये ही ऐसी स्थानीय संस्थाएँ हैं, जिनके सभासदों को कुछ भत्ता मिलता है। माल-लदाई और उतराई, गोदाम के किराए, तथा जहाज़ों के कर से जो आमदनी होती है, वह इनकी आय है। इन्हें आवश्यक कार्यों के लिए कर्ज लेने का अधिकार है।

विशेष वक्तव्य—हमारी स्थानीय संस्थाओं में, कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़ कर, ऊँची योग्यता या आदर्श वाले व्यक्ति कम जाते हैं; अनेक आदमी कोई खास कार्यक्रम लेकर नहीं पहुँचते; व्यक्तिगत स्वार्थ, कीर्ति या यश आदि के लिए जाते हैं, और दलबन्दी करते हैं, जिससे सार्वजनिक हित की उपेक्षा होती है। मतदाताओं को चाहिए कि मित्रता या रिश्तेदारी आदि का लिहाज छोड़कर, कार्य करनेवाले सदस्य निर्वाचित किया करे, और समय-समय पर इस बात की जाँच करते रहे कि सदस्य अपने कर्तव्य का समुचित पालन करते हैं या नहीं। पुनः हमारी अधिकांश म्युनिसिपैलटियों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। इनकी आय बहुत कम है, और इन्हें अपने कार्य के लिए, आवश्यक धन के वास्ते परमुखापेक्षी रहना पड़ता है। इसलिए इनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों का असन्तोषप्रद रहना स्वाभाविक ही है। यह भी उल्लेखनीय है कि यद्यपि इन संस्थाओं की स्थापना का कार्य आरम्भ हुए, सौ वर्ष होने को आए, अब तक इन्हें स्थानीय पुलिस आदि सम्बन्धी

नवीन अधिकार नहीं दिए गए। अब देश स्वतंत्र हो गया है, आशा है, ये अपने महान कर्तव्यों को पूरा करने योग्य बनाई जायेंगी। अन्य बातों में इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि इनके सदस्य अपने उत्तरदायित्व का ध्यान रखें। जनता में उन्हें 'नगर-पिता' कहा जाता है। उन्हें चाहिए कि वे नगर निवासियों के हित और उन्नति में उसी प्रकार लीन रहें, जैसे एक योग्य पिता अपनी संतान के लिए रहता है।

सतरहवाँ परिच्छेद सरकारी नौकरियाँ

शासन-कार्य का जनता के लिए यथेष्ट हितकर होना, या न होना कायदे-कानूनों के अतिरिक्त, बहुत-कुछ सरकारी कर्मचारियों की योग्यता, अनुभव और देश-हितैषिता पर निर्भर होता है। इसलिए, यहाँ देश की सरकारी नौकरियों के सम्बन्ध में विचार किया जाता है। भारत अब स्वतंत्र हो गया है, अब सरकारी नौकरों की नियुक्तियाँ करने में अंगरेजों का अधिकार नहीं रहा, और न अंगरेजों की विशेष नियुक्तियाँ ही होती हैं, तथापि सरकारी नौकरियों के सम्बन्ध में अंगरेजों की चलाई हुई कुछ दूषित परम्पराएँ यहाँ बुरी तरह घर किए हुए हैं। यह आगे बताया जायगा। पहले यह जानले कि अंगरेजों के समय में यहाँ सरकारी नौकरियों की क्या व्यवस्था थी।

अंगरेजों के समय में सरकारी नौकर—भारतवर्ष में सर्वोच्च पदों के लिए नियुक्तियाँ सम्राट् द्वारा होती थीं। इनमें गवर्नर-जनरल, कमांडर-इन-चीफ तथा बङ्गाल, बम्बई और मद्रास के गवर्नर आदि शामिल थे। इन पदों से नीचे इम्पीरियल सर्विस के सदस्यों का

दर्जा था। इन्हें प्रायः 'इण्डियन सिविल सर्विस' * (आई० सी० एस०) कहा जाता था। ये कर्मचारी प्रायः प्रांतों का ही काम करते थे, परन्तु क्योंकि इनकी भर्ती भारत-मंत्री द्वारा समस्त भारत के लिए होती थी, ये आल-इण्डिया (अखिल भारतवर्षीय) सर्विस वाले कहलाते थे। इनमें से ही जिला-मजिस्ट्रेट, कलेक्टर जिला-जज, सेशन जज, कमिश्नर, और रेवन्यू बोर्ड के सदस्य, आदि की नियुक्ति होती थी। यहाँ तक कि ये बंगाल, बम्बई और मद्रास को छोड़कर, अन्य प्रांतों के गवर्नर तक हो सकते थे।

इनके बाद, दूसरा नम्बर उन कर्मचारियों का था, जो प्राविन्शल (प्रान्तीय) सिविल सर्विस (पी० सी० एस०) के भिन्न-भिन्न विभागों में, अपनी योग्यतानुसार नियत किए जाते थे। भरती के लिए कभी तो परीक्षा होती थी, और कभी नीचे की सर्विस के आदमी उसमें बदल दिए जाते थे। प्रान्तीय सिविल सर्विस में प्रान्त का नाम होता था, जैसे मद्रास सिविल सर्विस। इस सर्विस में डिप्टी कलेक्टर, एक्सट्रा-असिस्टेंट कमिश्नर, मुन्सिफ, स्कूलों के इन्स्पेक्टर, कालेजों के प्रोफेसर, सबजज, असिस्टेंट सर्जन आदि कर्मचारी होते थे।

प्रान्तीय सर्विस के बाद सर्वाडिनेट सर्विस या छोटे कर्मचारियों का नम्बर था। इनकी नियुक्ति भिन्न-भिन्न प्रान्तीय सरकारें, अथवा उनके विविध विभागों के उच्चाधिकारी करते थे।

इण्डियन सिविल सर्विस की प्रभुता—भारतवर्ष में सर्व-साधारण के लिए, इण्डियन सिविल सर्विस का ही राज्य था। कलेक्टर तथा जनता से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य उच्च अधिकारी इण्डियन सिविल

* एक महाशय का कथन था कि 'इण्डियन सिविल सर्विस' न तो इण्डियन है (इसमें अधिकांश आदमी योरपियन होते हैं,) न यह 'सिविल' अर्थात् सम्य है, और, न यह 'सर्विस' (नौकरी) ही है, क्योंकि अनेक कर्मचारी अपने-आपको नौकर समझने की अपेक्षा मालिक समझते हैं।

सर्विस के ही होते थे। वास्तव में भारतीय शासनपद्धति में इस सर्विस का वही स्थान था, जो मनुष्य के शरीर में रीढ़ की हड्डी का होता है। इसीलिए सम्राट्, भारत-मंत्री, वायसराय और गवर्नर आदि सब उच्च अधिकारी समय-समय पर इसकी प्रशंसा करते रहते थे, और इसकी मान-मर्यादा, तथा शान-शौकत बनाए रखने के लिए भरसक प्रयत्न करते रहते थे। भारतीय लोकमत की अवहेलना करके भी जैसे-बने, इन्हें प्रसन्न और संतुष्ट किया जाता था। यह कार्य निर्धन भारतीय जनता के लिए बहुत महंगा पड़ता था।

इस सर्विस में भरती होने की परीक्षा पहले इंग्लैंड में ही होती थी, सन् १९२१ से भारतवर्ष में भी होने लगी। यह परीक्षा प्रतियोगिता से होती थी, अर्थात् किसी वर्ष जितने कर्मचारियों की आवश्यकता होती, उतने ही, परीक्षा में अच्छे नम्बर पाने वाले व्यक्ति चुन लिए जाते। पहले इंग्लैंड की परीक्षा पास किए हुए व्यक्तियों में से चुनाव होता था, उसके बाद भारतवर्ष की परीक्षा पास वालों का नम्बर आता था। इसका परिणाम यह होता था कि इंग्लैंड में परीक्षा पास करने वालों की, चुनाव में आने को अधिक सम्भावना होती थी, और भारतीय परीक्षा का महत्व कम रह जाता था। पुनः भारतीय परीक्षा के फल के आधार पर चुने हुए व्यक्तियों को दो वर्ष विशेष शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंग्लैंड जाना होता था।

सन् १९१९ ई० के शासन-सुधारों के अनुसार निश्चय हुआ था कि जिन सरकारी नौकरियों के लिए भरती इंग्लैंड में होती है, और जिनमें योरपियन और भारतीय दोनों लिए जाते हैं, उनमें सैकड़े पीछे ३३ भारतवासी ही भरती किए जायें, और इनमें अगले कमीशन की नियुक्ति तक डेढ़ फी मदी वार्षिक वृद्धि होती रहे। उपर्युक्त सुधारों के फलस्वरूप कुछ प्रान्तीय विभाग भारतीय मंत्रियों को भ्रौपे गए थे। अंगरेज कर्मचारी उनके अधीन काम करना पसन्द नहीं करते थे। उन्होंने यह माँग पेश की कि उनके लिए जल्दी-से-जल्दी अपने पद से छुट्टी मिलने की

योजना बननी चाहिए। (प्रथम) योरपीय महायुद्ध के बाद अंगरेज उम्मेदवार भारतीय सिविल सर्विस के लिए कम लालायित रहने लगे। इससे चिन्तित होकर ब्रिटिश सरकार ने १९२३ में ली-कमीशन की नियुक्ति की, जिसने उच्च पदों पर काम करनेवाले योरपियनों के लिए खूब पेन्शन तथा भत्ते आदि दिए जाने की सिफारिश की। कमीशन को मुख्य-मुख्य सिफारिशों के अमल में आने से भारतीय जनता का भार और बढ़ गया।

सन् १९३५ का विधान और नौकरियाँ—सन् १९३५ के विधान में भी ऊँची सरकारी नौकरी वालों के हितों का पूर्ण ध्यान रखा गया। उनकी नियुक्ति, वेतन, पेन्शन और भत्ते आदि के नियमों में इस बात की व्यवस्था की गई कि उनकी सुविधा तथा मर्यादा की थंथर रक्षा हो, तथा वे यथा-सम्भव अपने पद पर बने रहें। यदि उन्हें किसी कारण निर्धारित समय से पूर्व नौकरी से पृथक् होना पड़े तो उन्हें या उनके परिवारों को आर्थिक कठिनाइयों का सामना न करना पड़े; भारत-मंत्री उन्हें भारत-सरकार या प्रांतीय सरकार के खजाने से, मुनासिब हर्जाना दिलाए। उनके वेतन, भत्ते और पेन्शन आदि के सरकारी व्यय पर व्यवस्थापक मण्डल का मत न लिया जाय। रेलवे, आयात-निर्यात, डाक, तार आदि में एंग्लो-इण्डियनों की नियुक्ति का लिहाज रखा जाने का स्पष्ट आदेश था; यहाँ तक कि यह भी कहा गया था कि प्रतिशत जितने पदों पर वे अब तक रहे हैं, उसका भी भविष्य में विचार रखा जाय। साधारणतः केन्द्र से सम्बन्धित पदों पर नियुक्तियाँ करने, तथा उनकी नौकरी की शर्तें तय करने का कार्य गवर्नर-जनरल करे, और किसी प्रान्त सम्बन्धी यह कार्य उस प्रान्त का गवर्नर करे। परन्तु इण्डियन सिविल सर्विस, इण्डियन मेडिकल सर्विस और इण्डियन पुलिस सर्विस तथा आत्रपाशी विभाग के पदाधिकारियों की नियुक्ति भारत-मंत्री ही करे।

वर्तमान व्यवस्था—भारत के स्वतन्त्र होने पर 'भारतीय सिविल

सर्विस' समान कर दी गई, अब उसकी जगह 'भारतीय एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस' (आई० ए० एस०) की व्यवस्था की गई है। अब किसी नौकरा के लिए पदाधिकारी की नियुक्ति भारत-मन्त्री से नहीं होती, और न उसके लिए इंग्लैंड में जाकर परीक्षा देने की ज़रूरत रही। अब सब नियुक्तियाँ तथा परीक्षाएँ और ट्रेनिंग आदि यहाँ ही होती हैं। सरकारों नौकरियों यहाँ की सभी जातियाँ तथा सम्प्रदायों के लिए समान रूप से खुली हुई हैं। स्त्रियाँ भी उन्हें प्राप्त कर सकती हैं; और कर रही हैं। यह बात जैसी अखिल भारतीय नौकरियों के लिए है, वैसी ही प्रान्तीय नौकरियों के सम्बन्ध में है। पिछले दिनों में केन्द्र तथा प्रान्तों में बहुत से विभागों का क्षेत्र बढ़ने तथा कितने ही नये-नये विभागों के खुलने से इस समय सरकारी नौकरों की संख्या बहुत बढ़ी हुई है, और ये सब भारतीय ही होते हैं।

पबलिक सर्विस कमीशन—सन् १९३५ के शासन-विधान के अनुसार एक पबलिक सर्विस कमीशन केन्द्र के लिए (इसे संघीय पबलिक सर्विस कमीशन कहते हैं) और एक-एक पबलिक सर्विस कमीशन प्रत्येक प्रान्त के लिए रहता है। यदि दो या अधिक प्रान्त समझौता कर लें तो वे मिलकर एक ही कमीशन रख सकते हैं। अथवा, एक कमीशन सब प्रान्तों के लिए भी कार्य सम्पादन कर सकता है। संघीय कमीशन के सभापति और सदस्यों की नियुक्ति गवर्नर-जनरल द्वारा और प्रान्तीय कमीशन के सभापति और सदस्यों की नियुक्ति गवर्नर द्वारा होगी। प्रत्येक कमीशन के कम-से-कम आधे सदस्य ऐसे होंगे, जो नियुक्ति के समय भारतवर्ष में कम-से-कम दस वर्ष नौकरी कर चुके हों। संघीय और प्रान्तीय कमीशनों के सदस्यों की संख्या, तथा उनकी नौकरी की शर्तें क्रमशः गवर्नर-जनरल और गवर्नर तय करेगा। इन कमीशनों का कार्य क्रमशः केन्द्र तथा प्रान्त की नौकरियों के लिए नियुक्तियाँ करने के वास्ते परीक्षा लेना, तथा इन नौकरियों के सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल और गवर्नरों को विविध विषयों पर आवश्यक परामर्श देना होगा। इन

कमीशनों का खर्च इनके सदस्यों का वेतन, पेन्शन, भत्ता आदि क्रमशः केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकार देगी।

सरकारी नौकरी का वेतन—सरकारी नौकरों के वेतन के सम्बन्ध में हमने सन् १९४४ में प्रकाशित इस पुस्तक के पिछले संस्करण में लिखा था—“भारतवर्ष के सरकारी कर्मचारियों के सम्बन्ध में विचार करते हुए किसी व्यक्ति को यह बात खटके बिना नहीं रहती कि यहाँ उच्च पदों का वेतन और भत्ता आदि देश-काल से बिल्कुल मेल नहीं खाता। उदाहरण-स्वरूप गवर्नर-जनरल की बात पहले कही जा चुकी है। उसके अतिरिक्त उसकी प्रबन्धकारिणी कौंसिल के सदस्यों, जंगीलाट, प्रान्तों के गवर्नरों, विविध सरकारी विभागों के अध्यक्षों, चीफ कमिश्नरों आदि का वेतन इतना ऊँचा रखा गया है कि जनता की निर्धनता को सर्वथा भुला दिया गया है। जब कि देश की असंख्य जनता को जीवन-निर्वाह के लिए यथेष्ट भोजन-वस्त्र का भी अभाव हो, सरकारी कर्मचारियों को इस प्रकार द्रव्य लुटाना, और उनके वास्ते ऐश्वर्य के साधन जुटाना शासन-यन्त्र की जड़ता और निर्दयता है। उनके लिए गरमियों में खस की टट्टियाँ और बिजली के पंखे, सर्दियों में कमरे को गर्म रखने के लिए अंगीठी आदि, उनके सफर के लिए स्पेशल ट्रेन, या रिज़र्व नहीं तो अव्वल दर्जे (फ़र्स्ट क्लास) के डिब्बे या बढ़िया मोटर आदि की व्यवस्था को देखकर कान नहीं कहेगा कि इन सरकारी कर्मचारियों और जनसाधारण में भयानक अन्तर है।

“इसके मुकाबले में छोटे पदों पर काम करनेवाले कर्मचारियों का वेतन प्रायः उनके निर्वाह के लिए पर्याप्त नहीं होता, और उन्हें अपनी गृहस्थी का खर्च चलाने के लिए कोई दूसरा सहायक कार्य करना या रिश्वत आदि निन्दनीय उपायों का आश्रय लेना पड़ता है। आवश्यकता है, उच्च अधिकारियों के वेतन में काफी कमी की जाय। और जो वचत हो उसका दो प्रकार से उपयोग किया जाय, एक तो निम्न कर्मचारियों का वेतन बढ़ाकर उनके तथा उच्च अधिकारियों के वेतन की विषमता

हटाई जाय दूसरे, जनता की शिक्षा, स्वास्थ्य, आजीविका आदि के साधन जुटाकर देश की दशा सुधारने का प्रयत्न किया जाय ।

“हमने निम्न कर्मचारियों के रिश्वत लेने की बात का संकेत किया है । परन्तु इसका यह आशय नहीं है कि उच्च अधिकारी सर्वथा दूध के धुले होते हैं । यद्यपि अनेक घटनाएँ गुप्त-गुप्त होती हैं, घूस लेने वाला एवं देनेवाला दोनों ही उसे छिपाने का भरसक प्रयत्न करते हैं तथापि समय-समय पर भाण्डाफोड़ हो हा जाता है । कुछ लोग अपनी जीवन-निर्वाह को आवश्यकताओं को पूर्ति के लिए रिश्वत लेते हैं, तो दूसरे लोभ वश । जीवन-निर्वाह की आवश्यकताओं की तो फिर भा एक समा है, परन्तु लोभ को तो कोई सीमा ही नहीं । निदान, सरकारी नौकरों द्वारा रिश्वत (इसे डालो, भेंट, उपहार आदि नाम दिए जाते हैं) लिया जाना ऐसी साधारण सी बात हो गई है कि आमदमी सरकारी नौकरों से पूछा करते हैं कि आपकी ‘ऊपर की आमदनी’ क्या है । मानो सरकारी नौकर की कुछ-न-कुछ ‘ऊपर की आमदनी’ होनी ही चाहिए । कैसा पतन है ! सरकार से अपने कर्मचारियों की यह बुराई छिपी नहीं है, वह समय-समय पर इसे दूर करने के लिए कुछ उपाय काम में लाती रहती है, परन्तु दोष निर्मूल नहीं होता । यदि सरकार का जनता से यथेष्ट सहयोग हो तो दोनों के सम्मिलित प्रयत्न से अधिक सफलता मिलने की आशा की जा सकती है ।”

उपर्युक्त पंक्तियों लिखे पाँच वर्ष हो गए । इस बीच में भारत स्वतन्त्र हो गया । अंगरेज यहाँ से चले गए । पर खेद है कि उपर्युक्त विषय में कोई सुधार नहीं हुआ । सम्भवतः जो परिवर्तन हुआ है, वह बिगाड़ की दिशा में है । कई सरकारी विभागों में नौकरों की संख्या काम के अनुपात से अधिक है । वेतन और भत्ता आदि खूब बढ़ा हुआ है फिर भी काम समय पर और अच्छी तरह नहीं होता, ढील-ढाल रहती है । भ्रष्टाचार अलग बढ़ा हुआ है । कितने ही पदाधिकारी अपना उत्तरदायित्व नहीं पहचानते । जनता परेशान है और सरकार बदनाम है ।

सुधार की आवश्यकता—खेद है कि हमें इस तरह की बातें कहनी पड़ रही हैं। हमारी वेदना इस समय और भी अधिक इसलिए है कि एक तो अब इसका दायित्व विदेशियों पर न होकर 'हमारे ही आदमियों' पर है; जो कुछ समय पहले इस विषय की कड़ी आलोचना किया करते थे; दूसरे, यह मनोवृत्ति सहज ही बदलने के लक्षण नहीं दिखाई दे रहे हैं—यह बात नए विधान में निर्धारित वेतनों से स्पष्ट है। आवश्यकता है कि उच्च अधिकारी गम्भीरता से विचार करें।

सरकारी नौकरों को राजनैतिक दलबन्दी तथा किसी भी प्रतिष्ठित व्यक्ति से प्रभावित न होना चाहिए। उनमें कर्तव्य-पालन, सेवा और सदाचार की यथेष्ट भावना होनी चाहिए। इसलिए आवश्यक है कि सभी नियुक्तियाँ तटस्थ रीति से और पब्लिक सर्विस कमीशन की मान्य प्रणाली द्वारा हो। इस विषय में उपेक्षा होने से जनता को पक्षपात की आशंका होती है। आशा है, इसका समुचित ध्यान रखा जायगा।

अठारहवाँ परिच्छेद

शासन के गुण-दोष

गुण-दोषों के विचार की आवश्यकता—पिछले परिच्छेदों में उस शासनपद्धति का वर्णन किया गया है, जो १५ अगस्त १९४७ से यहाँ प्रचलित है। विचारशील पाठकों के लिए उसका ज्ञान आवश्यक है। परन्तु यही काफी नहीं है। प्राप्त स्वाधीनता की रक्षा करने के लिए हमें हर घड़ी सतर्क रहना चाहिए, कि हमारे शासन में कौन-कौन से गुण हैं, जिन्हें यथा-सम्भव बढ़ाया जाय; और, कौन से दोष हैं, जिन्हें निर्मूल किया जाना चाहिए। जहाँ शासन की हरदम बुराई करते रहना और उसकी आलोचना से लोकमत उसके विरुद्ध उभारते

रहना निन्दनीय है, यह बात भी बहुत हानिकर है कि हम उसके दोषों की ओर आँख मीचे रहें और राष्ट्र में धुन लगता रहने दें। इस लिए इस परिच्छेद में शासन के गुण दोषों का, संक्षेप में, विचार किया जाता है।

राम-राज्य की आशा—यह निर्विवाद है कि भारतीय जनता जो बहुत समय से स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए आन्दोलन कर रही थी, और अपने जन-धन और सुख-सुविधाओं की बड़ी-बड़ी बलि चढ़ा रही थी, उसे यह आशा थी कि देश के स्वतंत्र होते ही सब संकटों का अन्त हो जायगा। राष्ट्र-पिता म० गांधी ने बार-बार राम-राज्य की बात कही थी, जिसका व्यवहारिक अर्थ गो० तुलसीदास जी के शब्दों में इस प्रकार है—

दैहिक, दैविक, भौतिक तापा ।

राम-राज्य नहिं काहुहिं व्यापा ॥

सब नर करहिं परस्पर प्रीति ।

चलहि स्वधर्म निरत श्रुति नीति ॥

नहिं दरिद्र कोऊ दुखी न हीना ।

नहिं कोई अवुध न लच्छन हीना ॥

सब गुनज्ञ पंडित सब ज्ञानी ।

सब कृतज्ञ नहिं कपट समानी ॥

ऐसे राम-राज्य का स्वप्न एकदम पूरा होना सम्भव नहीं होता। तथापि भारत के स्वतंत्र होने के दो वर्ष बाद जनता का यह सोचना अनुचित नहीं कहा जा सकता कि पहले की अपेक्षा हमारे कष्ट कितने कम हुए, और सुविधाएँ कितनी बढ़ीं। जनसाधारण इस विषय में विशेष संतुष्ट नहीं, यह प्रत्येक व्यक्ति जान सकता है, जो जनता के सम्पर्क में आता हो।

शासन की कठिनाइयाँ—इस प्रसंग में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि भारत के स्वतंत्र होने पर यहाँ नई सरकार को किन

कठिनाइयों में काम करना पड़ा। पाकिस्तान-निर्माण के समय देश कैसी मुसीबतों में से गुजरा, इसका कुछ परिचय पाँचवें परिच्छेद के अन्त में दिया जा चुका है। संक्षेप में नई भारत-सरकार को बहुत ही विपन्न परिस्थितियों में अपना कार्य आरम्भ करना पड़ा। उसके सामने निम्नलिखित समस्याएँ थीं—

१—साम्प्रदायिकता के नष्ट नृत्य—लूट-मार, आगजनी, बालकों और स्त्रियों का अपहरण, बलात्कार आदि—को रोकना।

२—पाकिस्तान से भारत आने के इच्छुक लाखों आदमियों को यहाँ लाने का प्रबन्ध करना और पीछे इन शरणार्थियों को जहाँ-तहाँ बसाने और उनके लिए उपयुक्त आजीविका की व्यवस्था करना।

३—सरकार को नष्ट करने के उद्देश्य वाले एंग्लो-मुस्लिम षड्यंत्र से अपनी और देश की रक्षा करना।

४—ब्रिटिश सरकार ने रियासतों को 'स्वतंत्र' करके भारत को खंड-खंड करने का जो कूट आयोजन किया था, उसे सफल न होने देना।

सरकार की अद्भुत कुशलता—ऐसी समस्याओं का किसी भी नई सरकार के लिए हल करना प्रायः असम्भव ही होता है। पर भारत-सरकार ने तत्कालीन परिस्थिति में अद्भुत कुशलता का परिचय दिया। उसने साम्प्रदायिकता का नियंत्रण किया और गृह-कलह को युद्ध के रूप में पनपने नहीं दिया। शरणार्थियों की समस्या धैर्यपूर्वक सुलझाई गई, और सुलझाई जा रही है। एंग्लो-मुसलिम षड्यंत्र से सरकार समय पर सावधान हो गई। उसने ब्रिटिश राजनीति के ब्रज प्रहार से देश की रक्षा की, जगह-जगह बिखरी हुई सैकड़ों रियासतों को व्यवस्थित शासन-सूत्र में लाकर देश की अखंडता को और अधिक छिन्न-भिन्न होने से बचा लिया। पाकिस्तान सरकार से सहयोग करके विभाजन का कठिन कार्य भी बहुत ही थोड़े समय में निपटा लिया। इन बातों के लिए जनता कृतज्ञ है और विदेशी चकित हैं। सरदार वल्लभभाई पटेल

ने ठीक कहा है—‘मुझे निश्चय है कि जब इस कठिन और चिन्तापूर्ण स्थिति का इतिहास लिखा जायगा, जिसमें से हम गुजरे हैं, तो विभाजन को संयुक्त प्रयास और कार्य-सम्पादन की योग्यता का एक चमत्कार समझा जायगा।’

विदेशों में भारत की प्रतिष्ठा—सरकार ने जो शोभास्पद कार्य किए हैं; उनमें से एक एशिया, योरप और अमरीका में इस राज्य की प्रतिष्ठा बढ़ाना है। पूर्वी एशिया के देश भारत को प्रधान सहायक मानते हैं, और इसके सहयोग से अपने उत्थान का विश्वास करते हैं। भारत के सम्बन्ध में इंग्लैंड का दृष्टि-कोण अब कितना बदल गया है, यह इसी बात से मालूम हो सकता है कि जहाँ दूसरे महायुद्ध के समय वहाँ का प्रधान मंत्री चर्चिल बड़े गर्व से कहता था कि मैं साम्राज्य को नष्ट करने के लिए सम्राट् का मंत्री नहीं बना हूँ, वहाँ पिछले दिनों उस के सूत्रधारों ने भारत से सम्बन्ध बनाए रखने के लिए अपनी संस्था के नाम से ‘ब्रिटिश’ शब्द तक निकाल दिया और उसे केवल ‘राष्ट्रमंडल’ कहना स्वीकार किया। इस समय भारत राष्ट्रमंडल का सदस्य है, परन्तु अपने स्वरूप को स्वतंत्र प्रजातन्त्रात्मक रखते हुए, और इंग्लैंड-नरेश के प्रति भक्ति-भाव न रखते हुए।

संसार के सभी प्रमुख देशों में भारत के राजदूत रहने लग गए हैं, तथा उनके राजदूत यहाँ रह रहे हैं। भारत अब संसार का एक स्वतंत्र देश ही नहीं है, प्रतिष्ठा-प्राप्त राज्य है।

शासन के दोष—सरकार के उपर्युक्त तथा कई अन्य कार्यों की प्रशंसा करते हुए भी हम उसके दोषों की उपेक्षा नहीं कर सकते। प्रत्येक नागरिक का यह एक आवश्यक कर्तव्य है कि वह सरकार की प्रशंसा में न लगा रहकर उसकी कमजोरियों और दोषों का सूक्ष्म विचार करता रहे, उनकी ओर दूसरों का ध्यान दिलाता रहे, तथा उनके निवारण के लिए जो-कुछ स्वयं उससे बन आवे, करता रहे। यह देशभक्ति और राष्ट्र-सेवा का एक मुख्य अंग है। यदि विदेशों में भारत के प्रधान मंत्री

को यथेष्ट आदर-सम्मान मिलता है, और हरेक राज्य भारत से मित्रता का सम्बन्ध बनाए रखने के लिए लालायित है तो इतने से ही हमें संतुष्ट न हो जाना चाहिए। सरकार की योग्यता और कार्यक्षमता को एक बड़ी कसौटी यह है कि यहाँ सर्वसाधारण में उसके विषय में क्या धारणा है, क्या वह मितव्ययी, आदर्श-रत्नक मानी जाती है, अथवा वह कुछ खास व्यक्तियों के इशारे पर नाचनेवाली तथा बहुत खर्चीली है, और उसके कर्मचारियों में भ्रष्टाचार है, और वे खुशामदी तथा स्वार्थी हैं।

कांग्रेस-जनों का अनुचित हस्तक्षेप—भारत के स्वतंत्र होने के समय से प्रत्येक कांग्रेस-कार्यकर्ता यह सोचने लगा है कि सरकार हमारी बनाई हुई है, विविध अधिकारियों को हमारे आदेशानुसार चलना चाहिए, हम उनसे चाहे जो कार्य करा सकते हैं। इस प्रकार वह रोज-रोज के शासन-कार्य में हस्तक्षेप करता है, और वह हस्तक्षेप लोकहित या पथ-प्रदर्शन आदि के लिए न होकर प्रायः स्वार्थ-सिद्धि के लिए होता है। तहसील, जिले और प्रान्त के अधिकारी अपने-अपने क्षेत्र के मुख्य कांग्रेस कार्यकर्ताओं से प्रभावित रहते हैं, और उन्हें पक्षपात-पूर्वक विविध रियायतें देते हैं तथा उनकी भली-बुरी सिफारिशों को शिरोधार्य करते हैं। यदि कोई कांग्रेस-कार्यकर्ता एम० एल० ए० (मेम्बर लेजिस्लेटिव एसेम्बली) है तो उसकी बात टालना अधिकारियों के लिए असम्भव सा हो जाता है। अधिकारी जानते हैं कि इनकी पहुँच मंत्रियों तक है; यदि हम इन्हें प्रसन्न न रखेंगे तो हमारे विरुद्ध षडयंत्र रचा जाकर मंत्रियों से शिकायत की जायगी। फिर हमारा अपने पद पर रहना मुश्किल हो जायगा। इस प्रकार अधिकारी अपनी बुद्धि और विवेक के अनुसार स्वतंत्र निर्णय करने का साहस नहीं करते। वे अपने पद को सुरक्षित रखने के लिए कांग्रेस-नेताओं का रुख देख कर काम करते हैं, वे लोकहित या न्याय का ध्यान नहीं रखते, उनके काम में गैर-जिम्मेवारी की भावना रहती है। इस प्रकार शासन में कुव्यवस्था

और झील-ढाल रहती है। इस ओर ध्यान दिया गया है, पर विकार बहुत व्यापक और गहरा है। अभी बहुत कम सुधार हो पाया है।

शासन बहुत खर्चीला है—शासन का दूसरा दोष यह है कि यह बहुत खर्चीला है। इस आलोचना का यथेष्ट अर्थ समझने के लिए यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि देश बहुत गरीब है। भूख, महंगाई और बेकारी से सताई हुई जनता के देश में शासन का महंगा होना साम्राज्यवाद से भले ही मेल खाए, उसका गाँधीवाद या भारतीयता से सामंजस्य नहीं होता। हम प्रजातन्त्रो बन रहे हैं, पर यह महंगा प्रजातंत्र हमें कहाँ ले जायगा। नित्य नये विभागों का खुलना और उनमें अधिकारियों का बढ़ना, बढ़िया-बढ़िया रिपोर्टें आदि छपना, अधिकारियों के रहने के लिए कीमती फर्नीचर वाले बड़े-बड़े बंगले और कोठियाँ तथा बाग-बगीचे, उनकी यात्रा के लिए नये-से-नये ढंग की बहुमूल्य मोटरे आदि, यात्रा-व्यय के बड़े-बड़े बिल और उनके स्वागत-सम्मान आदि में खर्च होने वाला अपरिमित द्रव्य—यह सब देखकर मालूम होता है कि भारत से अंगरेज चले गए, पर उनका शुरू किया हुआ शासन का खर्चीलापन बना हुआ है; वह कम नहीं हुआ है, कुछ अंशों में तो वह रोग और अधिक बढ़ गया है।

कुछ उदाहरण; श्री कुमारप्पा के विचार—इस विषय के उदाहरणों की कमी नहीं है ! पर उनके संग्रह की भी यहाँ आवश्यकता नहीं है। नमूने के तौर पर श्री जे० सी० कुमारप्पा—जो स्पष्टोक्ति के साथ अपने विवेक और और संयम के लिए यथेष्ट प्रसिद्ध हैं—के हाल में प्रकाशित एक लेख का निम्नलिखित अंश देखिए—

“फिलहाल दिल्ली शहर खुद गरीबों के बूते पर किए जानेवाले तड़क-भड़क के प्रदर्शन का एक खासा उदाहरण है। उसमें की बायसराय की कोठी पुराने जमाने के मुगलों के ऐश्वर्य को मात देनेवाली है। उसमें कुल ८६ रहने के आलीशान कमरे और ५६ गुसलखाने हैं। ये कमरे इक्के-दुक्के नहीं, परन्तु बम्बई के ‘फ्लैट’ जैसे हैं और हर एक में एक

मध्यवर्गीय कुटुम्ब बड़ी आसानी से रह सकता है। पुराने ज़माने में जब दिल्ली में राजसी ठाटवाले होटल नहीं थे, तब इंग्लैंड के अमीर-उमराव आदि मेहमानों के लिए वायसराय की कोठी एक होटल का काम भी दे देती थी। पर आज वही रस्तार गरीबों से वसूल किए टेक्सों के बूते पर चालू रखने की हमें कोई जरूरत नहीं दीखती।

“इस कोठी में कुल ३१२ नौकर हैं और ६० फ़र्ाश हैं जिनका मासिक वेतन २५,००० रु० अर्थात् तीन लाख रुपया सालाना होता है। उनके ‘अदना’ मालिक वायसराय का वेतन भी इन्कमटेक्स और सूपरटेक्स (यदि लगता होता) मिलाकर मासिक १५,००० रु० के करीब होता। नौकरों की भड़कीली पोशाकों के लिए सालाना ४०,००० रु० खर्च होता है।

“इस कोठी के बगीचे का क्षेत्रफल २६० एकड़ है और ‘वह तमाम दुनिया में अपनी सानी नहीं रखती’—ऐसी कोठी के अधिकारी डींग मारते हैं। पर यह संभव होने के लिए उस बगीचे के लिए ३६३ बनस्पति विशेषज्ञ और माली रखने पड़ते हैं। इनका सालाना खर्च ३,००,००० रु० से अधिक होता है। कोठी का तमाम सालाना घर-खर्च ४,५०,००० रु० से ऊपर जाता है। कोठी की मरम्मत के लिए हर साल करीब १२,००,००० रु० और फर्नीचर दुरुस्ती या टूट-फूट के लिए हर साल १,००,००० रु० खर्च होते हैं। पूरे सामान और फिटिंग की लागत ५०,००,००० रु० है।

“ये सब खर्च परंपरागत चले आए हो, सो बात नहीं है। अंगरेज वायसरायों के ज़माने में भी ये खर्च इतने अधिक नहीं बढ़े थे। सन् १६३८-३९ में बगीचे का खर्च ७७,००० रु० से कुछ अधिक था, पर आज का खर्च तो इससे पाँच गुना है। उसी प्रकार १६३८-३९ में घर-खर्च १,८०,००० रु० था और आज वह इससे २॥ गुने से भी अधिक है। केवल मुद्रास्फीति की बदौलत इतना फर्क नहीं पड़ सकता।

“यह तो एक नंगे और भूखे भिखारी के उँची कीमत की टोपी

पहनने जैसा नादानपने का ही काम हुआ। जो लोग ऐसी बेतुकी बातें करते हैं, उन्हें कभी अपना बेतुकापन महसूस होता है या नहीं, ईश्वर ही जाने। उनकी दृष्टि से यह सब शायद जीवन का पैमाना ऊँचा उठाने जैसा ही हो। हमारे प्रधान मंत्री हमेशा जीवन का स्तर ऊँचा उठाने की बातें करते रहते हैं, इसलिए शायद उन्हें यार्क रोड पर अपनी कोठी ठीक नहीं मालूम हुई और वे कर्मांडरनचीफ के आलोचन महल में रहने चले गए। तमाम मंत्री एक दूसरे से बढ़-चढ़कर पट्टियाँ देने में मशगूल हैं, पर आम जनता के लिए उन्होंने क्या किया इसका यदि लेखा-जोखा तैयार किया जाय तो, 'कुछ नहीं'—यही बड़े दुख के साथ कहना पड़ता है।

इधर ऊँचे ओहदे वाले लोग इस प्रकार अच्छे-अच्छे महलों का उपयोग लेते हैं, तो उधर मामूली क्लर्क आदि लोगों को रात को सिर रखने के लिए भी जगह नहीं मिलती। इससे शायद यह भी सिद्ध हो सकता है कि महकमों के क्लर्कों की संख्या बेहिसाब बढ़ा दी गई है, जिससे महकमों की कार्यक्षमता भी घट गई है। एक आफिसर की रिपोर्ट से पता चलता है कि सन् १९३६ में रहने के कुल ६४७२ क्वार्टर्स थे और पिछले साल उनकी संख्या १५,४०४ हो गई थी। सन् १९३६ में रहने के मकानों के लिए कुल अर्जियाँ १०,००० थीं जो बढ़ कर पिछले साल ७०,००० हो गईं। दफ्तरों के लिए सन् १९३६ में ७,५७,००० वर्गफुट जगह काफी थी, पर पिछले साल वह ५६,३४,००० वर्गफुट लग गई। इससे क्या हम यह अनुमान लगायें कि सरकारी महकमों की कार्यक्षमता बढ़ गई है? या इन्हें कोई रोग हो गया है? हमें यह याद रखना चाहिए कि १९३६ के बाद हिन्दुस्तान का लगभग चौथाई हिस्सा पाकिस्तान में चला गया है। उसके बावजूद सरकारी नौकरों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि और उसी अनुपात में कार्यक्षमता के बारे में शिकायतों की वृद्धि—ये बातें किसी खराबी की निश्चित द्योतक हैं।”

स्वार्थपरता और भ्रष्टाचार—सरकारी नौकरों के ऊँचे वेतन और भत्ते आदि की बात पिछले परिच्छेद में कही गई है, इसके अलावा दुर्भाग्य से कितने ही कर्मचारी उससे भी सन्तुष्ट न होकर 'ऊपर की आमदनी' खूब पैदा कर रहे हैं। वे भ्रष्टाचार पर बुरी तरह उतर आये हैं। वे जल्दी-से-जल्दी इतना धन संग्रह कर लेना चाहते हैं कि वे उससे अपनी जिन्दगी भर मौज करें और हो सके तो अपनी अगली पीढ़ी वालों के लिए इतना धन छोड़ जावें, जिससे वे भी शान से रह सकें। सम्भवतः बहुत से पदाधिकारी यह सोचते हैं कि कौन-जाने वे कब तक अपने पद पर हैं, इस पद पर से हट जाने पर उनकी वास्तविक योग्यता इतनी नहीं है कि वे इससे आधो-तिहाई क्या, आठवाँ-दसवाँ हिस्सा भी न पा सकें। उस दशा में इस समय का संग्रह किया हुआ धन ही काम आएगा। इसलिए वे अपने पदों से चिपके रहने के साथ अपनी आय बढ़ाने के भले-बुरे सभी उपायों से काम ले रहे हैं।

विशेष दुःख इस बात का है कि ऐसे पदाधिकारियों में कितने ही ऐसे भी हैं जिन्होंने भारत की आजादी की लड़ाई में डटकर भाग लिया, बहुत-सा जीवन जेल में बिताया और अगर घर भी रहे तो इन्हें केवल रूखी-सूखी रोटी और मोटा-भोटा कपड़ा मिल पाया। आज ये सरकारी कुर्सियों पर बैठकर अपने शान शौकत बढ़ाने की फिर में रहते हैं। ये सोचते हैं कि हमारे तप और त्याग की बदौलत देश स्वाधीन हुआ है। उसका लाभ सबसे अधिक हमें मिलना चाहिए। हम अपनी पुरानी सेवाओं का फल लेते हैं तो क्या बुरा करते हैं। इस तरह ये त्यागी अब भोगी बन चले। इसका कुफल देश के सामने मौजूद है।

ईर्ष्या, फूट और गुटबन्दी—देश को स्वाधीन करने में समय-समय पर अनेक पुरुषों और महिलाओं ने भाग लिया। उनमें से जो जीवित हैं, उनकी संख्या भी एक-एक प्रान्त में हजारों पर है। यह एक सीधी और स्पष्ट बात है कि ये सब व्यक्ति सरकारी नौकरी के योग्य नहीं होते, और जो उसके योग्य होते हैं, उनमें से भी बहुत थोड़े-सो को ही

सरकारी पद मिल सकते हैं। अब यदि सरकारी नौकरियों का वेतन और भत्ता आदि बहुत अधिक हो और वे भ्रष्टाचार से मुक्त न हों तो कुछ आदमियों के मन में उनके प्रति ईर्ष्या का भाव होना स्वाभाविक है। वे सोचते हैं कि हमारा ही अमुक साथी, जो कल तक हमारे बराबर था, अब पदाधिकारी बनकर कितना अधिक धन और प्रतिष्ठा प्राप्त कर रहा है। ऐसे आदमी उस पदाधिकारी से सहयोग करने के बजाय उसके काम में रोड़े अटकाने की, उसे असफल सिद्ध करने की चाल चलते रहते हैं। इन्हें राज्य के कुछ असन्तुष्ट आदमियों का समर्थन और महारा मिल जाता है। इस प्रकार गुटबन्दा, और बर-विरोध में ही कार्यकर्ताओं की बहुत शक्ति नष्ट होती रहती है। यह बात शासन के लिए कितनी हानिकर है, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

वर्तमान शासन और म० गाँधी—भारत ने जो स्वतन्त्रता प्राप्त की, उसका श्रेय यदि किसी एक व्यक्ति को देना हो, तो वह व्यक्ति म० गाँधी थे। इसी से देश उन्हें राष्ट्र पिता कहता है। वर्तमान सरकार अपने-आपको म० गाँधी के पथ पर चलनेवाली कहती है। क्या उसका सिद्धान्त म० गाँधी के सिद्धान्तों के अनुरूप है? कहाँ हमारे उच्च पदाधिकारियों का ठाट-बाट, शान-शौकत और आडम्बर-युक्त रहन-सहन और कहाँ म० गाँधी की सादगी और संयम! म० गाँधी वायसराय के ही नहीं, सम्राट् के महल में ऊँचा धोती पहने, 'अर्द्ध नग्न' अवस्था में गए थे, कारण वे अपने-आपको गरीब भारत का प्रतिनिधि मानते थे। आपके विचार से भारत के वायसराय और प्रधान मंत्री को भारत के साधारण नागरिक से अधिक ऐश्वर्य का जीवन नहीं बिताना चाहिए। अफसोस! हमारे अधिकोश शामकों को ये बातें अव्यावहारिक प्रतीत होती हैं। जिन महानुभावों ने वर्षों म० गाँधी के नेतृत्व में रहकर देश को आज़ाद किया है, क्या वे भी म० गाँधी को अव्यावहारिक कहेंगे? क्या वे अपने आचरण से ऐसा नहीं कह रहे हैं?

विदेशियों की दृष्टि की बात—कुछ महाशय कह देते हैं कि

भारत में समय-समय पर विदेशी उच्च प्रतिष्ठित पदाधिकारी आते हैं। भारत के वायसराय और प्रधान मंत्री आदि को उनका स्वागत करने के लिए विशाल और नए ढंग के सज्जधज वाले भवनों में रहना चाहिए और अन्य उपयुक्त साधन वाला होना चाहिए। अन्यथा विदेशियों की दृष्टि में भारत का गौरव फीका पड़ जायगा। इसी तरह का तर्क विदेशी राजदूतावासों में अपरिमित खर्च करने के लिए दिया जाता है। जो लोग विदेशियों की दृष्टि में गौरव बढ़ाने के लिए गरीब जनता का बहुत-सा द्रव्य खर्च करते हैं, तथा जो विदेशी बाह्य आडम्बर से ही किसी राष्ट्र के गौरव का मूल्यांकन करते हैं, दोनों की ही समझ की बलिहारी है! वास्तव में हमारे राष्ट्र का गौरव इस बात में है कि देश में कोई आदमी भूखा-नंगा न हो; सब की रोजमर्रा की आवश्यकता सहज ही पूरी हो जाय; विकास, ज्ञान-प्राप्ति और लोकसेवा का मार्ग सब के लिए समान रूप से प्रशस्त रहे; छल, कपट, रिश्वत आदि नाम लेने को न हो; जाति, सम्प्रदाय और रंगभेद की बात न हो और विश्व-प्रेम और लोकसेवा की भावना सब के जीवन में श्रोत-प्रोत हो।

विशेष वक्तव्य— भारत-सरकार ने राष्ट्रीय झंडे में अशोक के धर्म-चक्र को स्थान दिया है, उसने राजचिह्न में अशोक स्तम्भ और धर्म-चक्र रखा है। इस प्रकार उसने प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रतीक को अपनाया है। परन्तु कोई संस्कृति केवल राष्ट्र-ध्वजा या राजचिह्न के बल पर नहीं बनती या पुष्ट होती। हम स्मरण रखें कि अशोक जिस राज्य का शासक था, उसका निर्माण करनेवाला चाणक्य (कौटिल्य) था जो अशोक के पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रधान मंत्री होते हुए भी लेंगोटाबन्द महात्मा की तरह एक भोपड़ी में रहा करता था। क्या भारत का प्रधान-मंत्री या प्रान्तों के प्रधान मन्त्री, अन्य मंत्री तथा विविध उच्च पदाधिकारी चाणक्य को अपना आदर्श बना सकेंगे? स्वेच्छापूर्वक त्याग का मार्ग बहुत कठिन होता है, पर सेवा-धर्म निभाना कोई आसान बात नहीं है, और हमें शासन को वास्तव में सेवा-धर्म ही तो समझना चाहिए।

तीसरा खण्ड नया विधान



उन्नीसवाँ परिच्छेद प्रस्तावना

पिछले खंड में यह बताया जा चुका है कि भारत के स्वतंत्र होने के समय, १५ अगस्त १९४७ से यहाँ शासन-कार्य किस प्रकार होता है। इस खंड में, संक्षेप में, यह विचार करना है कि विधान-सभा द्वारा भारत का जो नया विधान बन रहा है, उसके अनुसार शासन-पद्धति का स्वरूप क्या होगा। पहले विधान-सभा और उसके कार्य के सम्बन्ध में मुख्य-मुख्य बातें जान ले।

विधान-सभा—विधान-सभा या विधान-परिषद् उस सभा को कहते हैं, जो देश का शासन-विधान बनाने के लिए बुलाई जाती है। उस सभा में प्रायः जनता के चुने हुए प्रतिनिधि रहते हैं। आधुनिक काल में अधिकतर लिखित विधान तैयार किए गए हैं और उनके निर्माण के लिए विधान-सभा का संगठन किया गया है। संयुक्त राज्य अमरीका, फ्रांस, जर्मनी तथा रूस में विधान-सभा बुलाकर उसी द्वारा विधान तैयार कराया गया। यह लोकसत्ता अथवा प्रजातन्त्र का युग है। प्रजा को ही वास्तविक सत्ताधारी माना जाता है। प्रजातन्त्र में सम्पूर्ण राजनैतिक सत्ता जनता के हाथ में निहित होती है। वही सब शासन-कार्य का संचालन करती है। उसी पर सब जिम्मेदारी रहती

है। अतः यह उचित समझा जाता है कि वही देश के लिए विधान भी तैयार करे। जैसे शासन का कार्य प्रजा की ओर से उसके प्रतिनिधि करते हैं, उसी तरह विधान बनाने का कार्य भी प्रतिनिधियों द्वारा सम्पादित होता है। आज के युग में यदि किसी देश की जनता निरंकुशता, तानाशाही अथवा पराधीनता से मुक्त होने के लिए आन्दोलन करती है तो वह यह माँग भी उपस्थित करती है कि विधान बनाने के लिए विधान-सभा की आयोजना की जाय। भारत भी वर्तमान युग की विचार-धारा से प्रभावित रहा है। अतः उसकी ओर से भी ब्रिटिश अधिकारियों से यह माँग की गई। उसी का फल है कि भारत को स्वाधीनता देने की तैयारी करने के लिए ब्रिटिश अधिकारियों ने विधान-सभा का संगठन कर दिया।

विधान-सभा का संगठन और उद्घाटन—ब्रिटिश मंत्रिमिशन की मई १९४६ की योजना के अनुसार भारत के प्रान्तों के २६६, तथा रियासतों के ६३, कुल मिलाकर ३८९ सदस्यों की विधान-सभा बनाने का निश्चय किया गया। इन सदस्यों का जातिवार तथा प्रान्तवार व्योरा आठवें परिच्छेद में दिया जा चुका है।

विधान-सभा के उद्घाटन के लिए ६ दिसम्बर १९४६ की तिथि नियत की गई। मुस्लिम लोग के अध्यक्ष श्री जिन्ना ने एक वक्तव्य निकाल कर कहा कि लीग के प्रतिनिधि उसमें कोई भाग नहीं लेंगे। इसके उत्तर में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने मेरठ के कांग्रेस-अधिवेशन में घोषित किया कि लीगवाले विधान-सभा में आये या न आये, हम अपना काम जारी रखेंगे। हम एक स्वतन्त्र प्रजातन्त्र राज्य स्थापित करने के लिए पूरी तौर से तैयार होकर विधान-सभा में जायेंगे। फलतः ६ दिसम्बर को बड़े समारोह के साथ विधान-परिषद का उद्घाटन हुआ। पार्लिमेंटरी पद्धति के सबसे बड़े ज्ञाता डा० सच्चिदानन्द सिन्हा उसके अस्थायी अध्यक्ष चुने गए; पीछे देशरत्न बा० राजेन्द्रप्रसाद स्थायी अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

उपसमितियों की नियुक्ति—विधान-सभा का प्रथम अधिवेशन २३ दिसम्बर १९४६ को समाप्त हुआ। इस अधिवेशन में कार्य-प्रणाली के लिए नियमादि तैयार करने के लिए एक समिति नियुक्त की गई। सबसे महत्वपूर्ण विषय जिस पर विचार हुआ नेहरू जी का उद्देश्य सम्बन्धी प्रस्ताव था, जिसे चारों ओर से समर्थन प्राप्त हुआ। किन्तु डा० जयकर और डा० अम्बेदकर के कहने से उस पर उस समय विचार करना स्थगित किया गया—इस खयाल से कि लोगवालों का सहयोग प्राप्त होने वाला है, उसके बाद ही इसे पास किया जाय। दूसरा अधिवेशन २० जनवरी १९४७ ई० को ५ दिन के लिए हुआ। एक कार्य-संचालन समिति (स्टायरिंग कमेटी) नियुक्त की गई। सरदार पटेल का अध्यक्षता में सलाहकारा समिति बनाई गई। यह सबसे बड़ी समिति थी। इस समिति ने चार उपसमितियाँ नियुक्त की जिनमें से अल्पसंख्यक-उपसमिति, तथा मौलिक अधिकार-उपसमिति उल्लेखनीय हैं। सभा का तीसरा अधिवेशन २८ अप्रैल १९४७ को प्रारम्भ हुआ। यह भी पांच दिन तक रहा। इस अधिवेशन में बड़ौदा, बीकानेर, कोचीन, पटियाला, जयपुर, जोधपुर, रीवा तथा भावनगर के प्रतिनिधि भी सम्मिलित हुए।

विधान-सभा ने पहले ही अधिवेशन में पं० नेहरू की अध्यक्षता में एक समिति नरेन्द्रमंडल की वार्ता-समिति से परामर्श करने के लिए बना दी थी ताकि यह तय हो जाय कि देशी राज्यों के लिए नियत ६३ जगहों का बँटवारा किस प्रकार हो। उसी का परिणाम था कि विधान-सभा में देशी राज्यों के भी प्रतिनिधि सम्मिलित होने लगे। संघ-विधान के सिद्धान्त स्थिर करने के लिए एक समिति नेहरू जी की अध्यक्षता में नियुक्त की गई। इसी प्रकार एक समिति प्रान्तीय विधान के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में बनाई गई, जिसके अध्यक्ष सरदार पटेल नियुक्त किए गए। विधान-सभा के अध्यक्ष ने यह भी घोषित किया कि ज्यों-ज्यों विधान बनता जायगा वह राष्ट्रभाषा में अनुवादित भी होता जायगा।

स्वतंत्र भारत के विधान का मसविदा—विधान-सभा का चौथा अधिवेशन जो १४ जुलाई ४७ को प्रारंभ हुआ, बड़ा महत्वपूर्ण था। विभिन्न समितियों की रिपोर्टों पर विचार किया गया और विधान की रूप-रेखा स्थिर की गई। इसी अधिवेशन-काल में भारत स्वाधीन हुआ, विधान-सभा के हाथ में सर्वोच्च सत्ता आ गई। उसने अपना राष्ट्रीय झंडा भी स्थिर किया। यह बात भी उल्लेखनीय है कि १५ अगस्त को जब भारतीय स्वतंत्रता-विधान अमल में आया तो भारत के उन भागों के ६८ प्रतिनिधि, जो पाकिस्तान में चले गए, विधान-सभा से अलग हो गए। दूसरा बड़ा परिवर्तन यह हुआ कि विधान-सभा के अधिकारों पर जो बन्धन थे, वे सब दूर हो गए। तीसरे, विधान-सभा को भारतीय व्यवस्थापक मंडल अर्थात् पार्लियामेंट के रूप में भी काम करने का अधिकार प्राप्त हो गया। किन्तु कानून बनाने के काम के लिए उसका अधिवेशन अलग किया जाता है, उसका अध्यक्ष (स्पीकर) दूसरा व्यक्ति होता है।

चौथे अधिवेशन में ही डा० अम्बेदकर की अध्यक्षता में एक समिति विधान का मसविदा तैयार करने के लिए नियुक्त की गई। इस समिति ने बड़े परिश्रम से मसविदा तैयार किया और उसे २५ फरवरी १९४८ को प्रकाशित कर दिया।

विशेष वक्तव्य—विधान-सभा का पौचवॉ अधिवेशन ४ नवम्बर १९४८ को प्रारंभ हुआ तो इस मसविदे पर वादविवाद प्रारम्भ हुआ। छठे और सातवें अधिवेशन में भी जो क्रमशः मई और जुलाई १९४९ में प्रारम्भ हुए, वादविवाद जारी रहा। इन पंक्तियों के लिखे जाने के समय आशा की जाती है कि अक्टूबर ४९ में विधान अंतिम रूप में प्रकाशित कर दिया जायगा और २६ जनवरी १९५० ई० को उसे लागू करने का काम आरम्भ कर दिया जायगा।

बीसवाँ परिच्छेद

विधान-सभा का उद्देश्य-प्रस्ताव

प्रस्ताव के सम्बन्ध में नेहरू जी के विचार—विधान-सभा के प्रथम अविवेशन में नेहरू जी द्वारा उद्देश्य-प्रस्ताव उपस्थित किए जाने का उल्लेख पिछले परिच्छेद में हो चुका है। यह प्रस्ताव १३ दिसम्बर १९४६ को उपस्थित किया गया था। इसका अभि-प्राय स्पष्ट शब्दों में यह घोषित करना था कि स्वतंत्र भारत क्या लक्ष्य सामने रख कर अपना नया विधान बनाना चाहता है। वह किधर जाना चाहता है और कैसी इमारत खड़ी करना चाहता है। अपने प्रस्ताव को उपस्थित करते हुए नेहरू जी ने कहा कि यह घोषणा एक एलान है। इसमें सिद्धान्त की बुनियादी बातें बताई गई हैं। हम इस समय एक द्वार पर खड़े हुए हैं। एक युग समाप्त हो रहा है और एक नया युग प्रारम्भ हो रहा है। ऐसे अवसर पर हमें एक जानदार संदेश भारत को देना है और भारत के बाहर भेजना है। हमें यह दिखाना है कि हम क्या करना चाहते हैं। मैं आपके सामने जो प्रस्ताव पेश करना चाहता हूँ वह एक इकरारनामा-सा है—अपने लाखों-करोड़ों भाई-बहिनों के साथ, जो इस देश में रहते हैं। यदि हम इसे स्वीकार करते हैं तो यह एक तरीके की प्रतिज्ञा या इकरार होगा कि हम इसको पूरा करेंगे। प्रस्ताव होते हुए भी यह प्रस्ताव से बहुत ज्यादा है। यह एक घोषणा है, एक दृढ़ निश्चय है, एक प्रतिज्ञा और दायित्व है और हम सब के लिए तो यह एक व्रत है। हम इस प्रस्ताव द्वारा संसार को यह बतलाना चाहते हैं कि हमने इतने दिनों से किस बात की अभिलाषा

कर रखी थी, हमारा स्वप्न क्या था। जब प्रस्ताव को स्वीकार करने का समय आवे तो हम केवल रस्म के रूप में हाथ उठाकर उसे स्वीकार न करें, बल्कि भक्ति-भाव से खड़े होकर उसे स्वीकार करें और उसे अपना नवान् व्रत समझें।

प्रस्ताव ; भारतीय स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र—उद्देश्य सम्बन्धा प्रस्ताव, जिसे हम भारतीय स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र कह सकते हैं; इस प्रकार है :—

यह विधान-सभा भारत को पूर्ण सत्ताधारी स्वतंत्र जनतंत्र घोषित करने और उसके भावी शासन के लिए एक विधान बनाने का गम्भीर और दृढ़ निश्चय करती है।

इस शासन-विधान में उन सभी प्रदेशों का एक संघ रहेगा जो ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतों के अन्तर्गत हैं, तथा उनके बाहर भी हैं, और जो आगे स्वतन्त्र भारत में सम्मिलित होना चाहते हैं। और

इस विधान में उपर्युक्त सभी प्रदेशों को, जिनकी वर्तमान सीमा चाहे कायम रहे या विधान सभा और पीछे विधान के नियमानुसार बने या बदले, एक स्वाधीन इकाई या प्रदेश का दर्जा मिलेगा व रहेगा। उन्हें वे सब अवशिष्ट अधिकार प्राप्त होंगे, जो संघ को नहीं स पे जायेंगे, और वे शासन तथा प्रबन्ध सम्बन्धी सभी अधिकारों को वरतेगे, सिवाय उन कार्यों और अधिकारों के जो संघ को सौंपे जायें, जो संघ में स्वभावतः निहित या समाविष्ट हों, या जो उससे निकलते हों। और

इस विधान में पूर्ण सत्ताधारी स्वतंत्र भारत तथा उसके अंगभूत प्रदेशों और शासन के सभी अंगों की सारी शक्ति और सत्ता जनता द्वारा प्राप्त होगी। तथा

इस विधान द्वारा भारत के सभी लोगों को राजकीय नियमों और साधारण सदाचार के अनुकूल, निश्चित नियमों के आधार पर

सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय के अधिकार, वैयक्तिक स्थिति व सुविधा की तथा मानवी समानता के अधिकार और विचारों की, विचारों के प्रकट करने की, विश्वास व धर्म की, काम-धंधों की, संघ बनाने व काम करने की स्वतन्त्रता के अधिकार रहेंगे और माने जायेंगे। और

इस विधान में अल्पसंख्यकों के लिए पिछड़े हुए व कच्चायली प्रदेशों के लिए तथा दलित और पिछड़ा हुई जातियों के लिए काफी संरक्षण रहेंगे। और

इस विधान के द्वारा इस जनतंत्र के क्षेत्र की अक्षुण्णता (आन्तरिक एकता) रक्षित रहेगी और जल, थल और हवा पर उसके सब अधिकार, न्याय और सम्य राश्रों के नियमों के अनुसार रक्षित होंगे। और

यह देश संसार में अपना योग्य व सम्मानित स्थान प्राप्त करने और संसार की शान्ति तथा मानव-जाति का हित-साधन करने में अपनी इच्छा से पूर्ण योग देगा।

पूर्ण सत्ताधारी, स्वतंत्र जनतंत्र—आइए, अब हम इस प्रस्ताव का विश्लेषण करें। विधान-सभा ने बड़ी दृढ़ता और गम्भीरता के साथ यह घोषित किया है कि भारत एक स्वतंत्र पूर्ण सत्ताधारी जनतंत्र राज्य होगा। जनतंत्र राज्य का मतलब ऐसे राज्य से है जिसमें सब राजनैतिक सत्ता जनता के हाथ में रहेंगी। शासन-सूत्र को संभालने की सब जिम्मेदारी उसी पर होगी। सारा शासन-कार्य उसी की इच्छा के अनुसार होगा। जनता की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं होने पायगा। निरकुशता, स्वेच्छाचार तथा तानाशाही के लिए कोई स्थान नहीं होगा। राज्य की सर्वोच्च सत्ता प्रजा के अतिरिक्त और किसी आन्तरिक या बाह्य शक्ति के हाथ में नहीं होगी। भारत का यह जनतंत्र राज्य पूर्ण रूप से स्वतंत्र होगा। वह किसी भी रूप में किसी की तनिक भी अधीनता सहन नहीं करेगा। स्मरण रहे कि कांग्रेस ने १९३० ई० में ही पूर्ण

स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास कर लिया था। उसका मतलब यही था कि भारत ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत नहीं रहेगा, औपनिवेशिक राज्य के रूप में ब्रिटिश ताज अथवा पार्लिमेण्ट की अधीनता नहीं स्वीकार करेगा; ब्रिटेन ही नहीं, किसी भी राष्ट्र का, वह चाहे कितना ही सम्पन्न और शक्तिशाली क्यों न हो, पिछलगुआ बन कर नहीं रहेगा। भारत आर्थिक और राजनैतिक दोनों दृष्टि से पूर्ण स्वतन्त्र राष्ट्र होगा। किसी राष्ट्र से युद्ध या सन्धि करने, राजदूतों का विनिमय करने तथा वैदेशिक नीति का संचालन करने की उसे पूरी स्वतन्त्रता रहेगी। अच्छा; यदि भारत को पूर्ण रूप से स्वाधीन रहना है तो राष्ट्रमंडल का सदस्य वह क्यों बना ! इस विषय में पहले लिखा जा चुका है।

भारत एक संघ-राज्य होगा—दूसरी महत्वपूर्ण बात जो उक्त घोषणा-पत्र में कही गई है, यह है कि स्वतन्त्र भारत एक संघ-राज्य होगा। भारत के प्रान्तों तथा देशी रियासतों के सब प्रदेश तो उसमें रहेंगे ही; जो प्रदेश इन दोनों क्षेत्रों के बाहर हैं, वे भी संघ में सम्मिलित हो सकते हैं। सरदार पटेल की अध्यक्षता में भारत सरकार के रियासती विभाग ने छोटे-बड़े सब देशों राज्यों को भारतीय संघ का अंग बना दिया है, इसके विषय में पहले कहा जा चुका है। यह एकीकरण राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने में बड़ा सहायक होगा, इसमें सन्देह नहीं। इस समय भारत के अन्दर जो प्रदेश फ्रांसीसियों और पुर्तगालियों के अधिकार में हैं, उनके निवासी भारत से मिलने के लिए कितने इच्छुक हैं, यह हाल में चन्द्रनगर में हुए जनमत-संग्रह से स्पष्ट है। यहाँ भारत के पक्ष में ७४७३ और फ्रांस के पक्ष में केवल ११४ मत प्राप्त हुए। फ्रांस के अधीनस्थ अन्य प्रदेशों में भी जनमत लिया जाने वाला है। पुर्तगाली प्रदेशों में अभी जनमत की बात नहीं उठी है, पर जनमत लिया जाय या न लिया जाय, और यदि लिया जाय तो उसका परिणाम चाहे जो निकले, राष्ट्रीय सरकार तथा नेताओं की ओर से यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया गया है कि स्वतंत्र भारत अपनी सीमा के अन्दर

विदेशियों की सत्ता नहीं रहने देगा । भारत के सभी प्रदेश (पाकिस्तान को छोड़कर), भारतीय संघ में शामिल होंगे । घोषणा-पत्र में यह स्पष्ट कह दिया गया है । भारतीय संघ का सच इकाइयों 'राज्य' कहलायेंगे और उन्हें पूर्ण स्वायत्त शासन प्राप्त होगा ।

जनता को समान अधिकार—उद्देश्य-प्रस्ताव का तृतीय महत्व की बात यह है कि राज्य के सभी लोगों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय सुनिश्चित रहेगा । कानून को दृष्टि में सभी समान समझे जायेंगे । सबका बराबरी का दर्जा माना जायगा और सबको समान सुविधा मिलेगी । सबको विचारों को प्रकट करने, किसी विश्वास या धर्म के अनुसार चलने, पूजा-पाठ करने, अपना इच्छानुसार काम-धंधे में लगने और समा-समिति आदि बनाकर काम करने की स्वतंत्रता रहेगी । जनतन्त्र राज्य में जहाँ सारी सत्ता प्रजा की हो मानी जाती है, यह उचित ही है कि सबके लिए उपर्युक्त सब बातों की गारंटी दी जाय । समान रूप से सुविधा और अधिकार मिलने पर ही लोग अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकते हैं, अपनी-अपनी उन्नति करते हुए राष्ट्र की उन्नति में सहायक बन सकते हैं ।

विश्व-शान्ति और मानव-कल्याण—उद्देश्य-प्रस्ताव में चौथी महत्वपूर्ण बात यह कही गई है कि स्वतंत्र भारत संसार में उपयुक्त और सम्मानित स्थान प्राप्त करेगा । प्राचीन काल में भारतीयों ने इतनी उन्नति की थी और विश्व को शान्ति का ऐसा सुन्दर मार्ग दिखाया था कि यह देश सबका सिरमोर बन गया था । सारे संसार में उसकी प्रतिष्ठा और आदर था । दूर-दूर देशों तक उसका प्रभाव फैला हुआ था । शताब्दियों के बाद जब भारत स्वतंत्र हुआ है तो इस आकांक्षा का पैदा होना स्वाभाविक ही है कि वह संसार में फिर सम्मान का स्थान प्राप्त करे । भारत का आदर्श 'वसुधैव कुटुम्बकम्' रहा है और म० गांधी के अमर उपदेशों से प्रभावित होकर वह फिर उस आदर्श की ओर बढ़ने की तैयार है । भारत साम्राज्यवाद और शोषण में नहीं,

वरन् सहयोग, सुख और शान्ति में विश्वास रखता है और चाहता है कि अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष और वैमनस्य के सब कारण दूर हो जायें ताकि सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण और हित-साधन के लिए समितित प्रयत्न किया जा सके। योरप और अमरीका के राजनीतिज्ञों का दृष्टिकोण इतना स्वार्थ-पूर्ण और संकुचित है कि उनसे स्थायी विश्वशान्ति की स्थापना की आशा नहीं की जा सकती। महात्मा गांधी ने शान्ति और अहिंसा का जो मार्ग दिखाया है, उसी पर चलकर संसार सुखा हो सकता है। अतः भारत के नेता ही शान्ति-सुख की दिशा में संसार का पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं। विश्व-शान्ति के उद्देश्य को पूरा करने के लिए भारत ने सभी गुटबन्धियों से अलग रहने का निश्चय किया है। वह सभा राष्ट्रों के साथ मैत्री सम्बन्ध रखकर सबका सहयोग प्राप्त करते हुए शान्ति-स्थापना के कार्य में योग देना चाहता है।

विशेष वक्तव्य—उद्देश्य-प्रस्ताव बहुत सोच समझकर तैयार किया गया था। लक्ष्य के सम्बन्ध में सभी भारतीय चाहे वे जिस जाति, दल या धर्म के अनुयायी हों, एक मत रहे—इसका ध्यान प्रारम्भ ही से रखा गया था। यह भी सोच लिया गया था कि प्रस्ताव में कोई ऐसी बात न आए जो अधिक विवादग्रस्त हो। फिर भी प्रस्ताव पर लम्बी बहस हुई। किन्तु यह बात उल्लेखनीय है कि सभी जातियों और दलों के प्रतिनिधियों ने प्रस्ताव का समर्थन किया और सर्वसम्मति से वह २२ जनवरी १९४७ को पास हो गया। विधान-सभा के सदस्यों ने प्रस्ताव को खड़े होकर पास किया और इस प्रकार यह प्रकट किया कि वे बड़ी गम्भीरता के साथ एक नया व्रत ले रहे हैं, एक नई प्रतिज्ञा ग्रहण कर रहे हैं। यह प्रस्ताव विधान का अंग नहीं बनेगा किन्तु उसका सार भाग विधान को भूमिका में रखा गया है। एक प्रकार से विधान की सभी धाराओं में यह प्रस्ताव बोलता हुआ मिलेगा, क्योंकि उसी से प्रेरित होकर सारा विधान बनाया गया है।

इकोसवाँ परिच्छेद

मूल अधिकार

मूल अधिकार किसे कहते हैं ?—प्रजातंत्र राज्य में सारी शक्ति जनता के हाथ में निहित होती है अतः प्रत्येक नागरिक को बड़े-बड़े अधिकार प्राप्त होते हैं। वह ग्राम-पंचायत, जिला-बोर्ड, म्युनिस्पल बोर्ड, अपने राज्य (प्रान्त) की तथा केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा के चुनाव में भाग ले सकता है और जिसे चाहे अपना प्रतिनिधि बनाने के लिए मत दे सकता है। वह स्वयं उक्त संस्थाओं के लिए उम्मीदवार खड़ा हो सकता है। पंचायत के पंच सरपंच से लेकर व्यवस्थापक सभाका सदस्य और मंत्री तक हो सकता है। इसी तरह बड़े-बड़े वेतन-भोगी पदों का अधिकारी हो सकता है। किन्तु इन सबके लिए निर्धारित योग्यता अपेक्षित होती है। आवश्यक योग्यता होने पर ही कोई नागरिक प्रभाव और प्रभुता के पद प्राप्त कर सकता है। जिस नागरिक में निर्धारित योग्यता नहीं है, उसे ऐसे पदों पर पहुँचने का अधिकार नहीं होता। किन्तु कुछ अधिकार ऐसे होते हैं जिनके उपयोग के लिए कोई खास योग्यता आवश्यक नहीं होती, राज्य के सभी नागरिकों को वे अधिकार सुलभ होते हैं। राज्य की ओर से यह गारंटी दी जाती है कि प्रत्येक नागरिक उन अधिकारों से लाभ उठा सके। ऐसे सामान्य अधिकार विधान की भाषा में मूल अधिकार कहलाते हैं। अनेक प्रजातंत्रवादी राज्यों के विधानों में मूल अधिकारों की घोषणा कर दी गई है। भारत के नए विधान में भी मूल अधिकारों का उल्लेख किया गया है। उनके सम्बन्ध में ही यहाँ विचार किया जाता है।

समानता का अधिकार—राज्य की ओर से धर्म, जाति, वर्ण, लिङ्ग के आधार पर नागरिकों में कोई भेदभाव नहीं किया जायगा। सबको समान समझा जायगा। धर्म, जाति या वर्ण-विशेष का अनुयायी होने के कारण ही किसी नागरिक पर कोई अयोग्यता या बंधन नहीं लगाया जायगा। सार्वजनिक उपयोग के लिए जो होटल या जल-पान-गृह या मनबहलाव के स्थान हैं, वहाँ वह बे रोक-टोक जा सकेगा। इसी प्रकार वह कुएँ, तालाब, सड़क, घाट, पार्क आदि का इस्तेमाल भी कर सकेगा, बशर्ते कि ये सब चीजें जनता के उपयोग के लिए हों। किसी को यह कहने का अधिकार न होगा कि तुम मुसलमान हो या चमार-भंगी हो, इसलिए इस कुएँ से पानी नहीं भर सकते। राज्य की नौकरियों में अथवा राज्य की ओर से चलाए जानेवाले अन्य काम-धंधों में लगने के लिए सब को समान सुविधा रहेगी। केवल धर्म, जाति, वर्ण, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर कोई किसी सरकारी पद के अयोग्य नहीं समझा जायगा।

अस्पृश्यता का अंत—विधान द्वारा अस्पृश्यता का सदा के लिए अंत कर दिया गया है। अब कानून की दृष्टि में कोई भी व्यक्ति अस्पृश्य या अछूत नहीं होगा। साफ़-साफ़ यह नियम कर दिया गया है कि कोई आदमी किसी दूसरे व्यक्ति को अस्पृश्य न समझे और न उसे अस्पृश्य मानकर व्यवहार करे। यदि किसी को अछूत मान कर कोई बंधन, अयोग्यता या रोक-टोक लगाई जायगी, तो यह एक अपराध समझा जायगा और ऐसा करनेवाले को दण्ड दिया जायगा। विधान की यह धारा बहुत ही महत्वपूर्ण और क्रान्तिकारी है। अस्पृश्यता भारतीय समाज का एक बड़ा अभिशाप रहा है। ऐसे व्यक्तियों की संख्या लाखों में नहीं करोड़ों में है, जो अछूत समझे जाते रहे हैं और जिनके हाथ का स्पर्श किया हुआ भोजन और पानी ग्रहण करना पाप समझा जाता रहा है। म० गांधी ने उनके उद्धार के लिए सम्पूर्ण देश में जो हरिजन-प्रान्दोलन चलाया, उसका व्यापक रूप से प्रभाव पड़ा और लोगों में

अस्पृश्यता जैसी दूषित और घातक प्रथा को समाप्त कर देने की भावना बढ़ता गई। उसी का फल है कि स्वतंत्र होते ही हमारे नेताओं ने विधान बनाते समय अस्पृश्यता को सदा के लिए मिटा देने का निश्चय किया और महात्मा गांधी को जय के नारा के साथ उक्त धारा पास की।

भाषण आदि की स्वतंत्रता—एक और दिशा में विधान ने सब नागरिकों को समान अधिकार प्रदान किया है। सब को अपना विचार प्रकट करने और भाषण देने की स्वतंत्रता है। नागरिकों को किसी जगह पर एकत्रित होकर सलाह-मशविरा करने का अधिकार है। वे अपनी सभा, समितियाँ, संघ कायम कर सकते हैं। देश के अन्दर स्वतंत्रतापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान को आ-जा सकते हैं, भारत के किसी भाग में जाकर बस सकते हैं। वे सम्पत्ति प्राप्त कर सकते हैं, रख सकते हैं और जब चाहें हस्तान्तरित कर सकते हैं। वे कोई भी काम-धंधा या रोजगार स्वतंत्रता-पूर्वक कर सकते हैं। हाँ, सार्वजनिक हित में आवश्यक होने पर, राज्य को कभी-कभी इन अधिकारों के उपयोग पर कुछ बंधन लगाएगा।

किसी प्रचलित कानून का उल्लंघन करने के अतिरिक्त और किसी बात के लिए किसी व्यक्ति को दण्डित नहीं किया जा सकता। कानून की प्रणाली के अलावा और किसी तरह से किसी की जान नहीं ली जा सकती और न उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अपहरण किया जा सकता बेगार की प्रथा उठा दी गई है; विधान में यह भी कहा गया है कि स्त्री, पुरुष, बच्चों का क्रय-विक्रय अथवा व्यापार नहीं किया जा सकता।

धर्म सम्बन्धी अधिकार—एक दूसरा मौलिक अधिकार, जो विधान द्वारा सब नागरिकों को प्रदान किया गया है, धर्म के सम्बन्ध में है। सार्वजनिक शान्ति, सदाचार और स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए सब लोग को अपने-अपने धर्म को अबाध रूप से मानने और प्रचार करने का अधिकार होगा। सब को समान रूप से विश्वास की स्वतंत्रता रहेगी। कृपाण का धारण और वहन करना सिक्ख धर्म के आचरण का अंग

माना जायगा। यदि किसी धार्मिक कृत्य के साथ आर्थिक अथवा राज-नैतिक कार्य शामिल होगा तो राज्य को अधिकार होगा कि कानून बनाकर उस आर्थिक या राजनैतिक कार्य का नियमन करे या उस पर कोई रोक लगावे। किसी भी धर्म या सम्प्रदाय को यह अधिकार होगा कि धार्मिक दान आदि संस्था, अथवा धार्मिक कार्य के लिए, संस्थाएँ स्थापित करे और चलाए; धर्म सम्बन्धी सब मामलों का प्रबन्ध अपने हाथ से करे और चल या अचल सम्पत्ति प्राप्त करे और रखे। कानून के अनुसार वह ऐसा सम्पत्ति का प्रबन्ध भी कर सकता है। किसी धर्म अथवा सम्प्रदाय-विशेष को उन्नति या हित के लिए लगाए हुए कर को देने के लिए किसी को बाध्य नहीं किया जायगा। राज्य को धार्मिक मामलों से दूर रखा गया है। विधान में कहा गया है कि सरकारी स्कूल या कालेज में धार्मिक शिक्षा देने की व्यवस्था नहीं की जायगी। यदि ऐसी शिक्षण संस्थाओं में जिन्हे सरकार को और से कुछ सहायता मिलती है, धार्मिक शिक्षा देने या उपामना करने की व्यवस्था होगी तो किसी को उसमें भाग लेने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकेगा। यदि किसी जाति या सम्प्रदाय का अपना अलग स्कूल है तो स्कूल के घण्टों के बाहर धार्मिक शिक्षा देने की व्यवस्था की जा सकती है।

साम्पत्तिक अधिकार—जीवन में सम्पत्ति की बड़ी आवश्यकता होती है। उसके बिना न तो कोई रोजगार-बंधा हो सकता है और न परिवार का पालन-पोषण हो किया जा सकता है। अतः विधान ने सभी नागरिकों को समान रूप से यह अधिकार दे दिया है कि वे अपने पास सम्पत्ति रख सकें। उनकी सम्पत्ति की रक्षा की जिम्मेदारी राज्य पर होगी। कोई भी व्यक्ति कानून के अधिकार के बिना अपनी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायगा। यदि कभी आवश्यकता पड़ने पर सार्वजनिक हित के लिए सरकार किसी की चल अथवा अचल सम्पत्ति पर अधिकार करना चाहेगी तो वह पहले उसका मुआबिजा दे देगी।

शिक्षा और संस्कृति सम्बन्धी अधिकार—विधान में

अल्पसंख्यकों की शिक्षा व संस्कृति सम्बन्धी हितों की रक्षा की व्यवस्था की गई है। यदि भारत के किसी भाग में नागरिकों का ऐसा वर्ग है, जिसकी अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति है तो उसे अधिकार होगा कि उनकी रक्षा करे। दूसरे शब्दों में उसको भाषा या लिपि अथवा संस्कृति को मिटाने का प्रयत्न नहीं किया जायगा और न किसी को करने दिया जायगा। कुछ लोगों का मत है और एक दृष्टि यह अच्छा भी कहा जा सकता है कि राष्ट्र में एक भाषा और एक संस्कृति का विकास किया जाना चाहिए। दर्जनों प्रकार के भाषाएँ, लिपियों का प्रचलन राष्ट्र की एकता में बाधक होता है। किन्तु अपनी भाषा और संस्कृति का लोगो को इतना अधिक मोह होता है कि वे उसे छोड़ने के लिए कभी तैयार नहीं होते। यदि एकता के हित में उनसे अपनी भाषा संस्कृति का छोड़ देने के लिए कहा जाय तो उनमें बड़ा असन्तोष पैदा हो जाता है। अतः प्रजातन्त्र राज्य में यही उचित समझा जाता है कि अल्पसंख्यकों की भाषा, लिपि और संस्कृति को सुरक्षित रहने दिया जाय। किसी सरकारी शिक्षा-संस्था में किसी अल्पसंख्यक जाति के लोगों की भर्ती के सम्बन्ध में भेद-भाव नहीं किया जाना चाहिए। इसलिए सभी अल्पसंख्यक वर्गों को, चाहे वे धर्म या सम्प्रदाय के आधार पर संगठित हों या भाषा के आधार पर, यह अधिकार होगा कि वे अपनी इच्छा के अनुसार शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित करें और उनका प्रबन्ध करें। शिक्षा-संस्थाओं को सहायता देते समय ऐसे स्कूच-कालेजों पर भी राज्य की ओर से ध्यान रखा जायगा।

[विधान के लागू होने के १० वर्ष के अन्दर, चौदह वर्ष तक के सब बच्चों के लिए निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था की जायगी।]

अधिकारों को अमल में लाने की व्यवस्था— उपर्युक्त मूल अधिकार यथेष्ट स्वरूप में सब को सुलभ हो, इसके लिए भी विधान में व्यवस्था की गई है। नागरिकों के लिए इस अधिकार को गारंटी की गई है कि वे सर्वोच्च अदालत (सुप्रीम कोर्ट) को उपयुक्त

कार्रवाई द्वारा अधिकारों को कार्यान्वित करने के लिए प्रेरित करें। सर्वोच्च अदालत ऐसी हिदायतें या आज्ञाएँ जारी करेगी कि मूल अधिकार ठीक-ठीक कार्यान्वित किए जाँय। पार्लिमेंट कानून बनाकर अन्य किसी अदालत को भी मूल अधिकारों को कार्यान्वित करने के सम्बन्ध में सर्वोच्च अदालत के सब या कुछ अधिकार दे सकती है। मूल अधिकार जब सेना के लोगों के लिए लागू किए जाँयेंगे तो उनमें पार्लिमेंट द्वारा कुछ परिवर्तन किया जायगा।

नीति-निर्देशक सिद्धान्त—विधान में राज्य के पथ-प्रदर्शन के लिए कुछ मूलभूत सिद्धान्त ऐसे भी बनाए गए हैं, जिन पर किसी अदालत द्वारा अमल नहीं कराया जा सकेगा, किन्तु राज्य का यह कर्तव्य होगा कि कानून बनाने में इनका यथेष्ट ध्यान रखे। समाज की ऐसी व्यवस्था का लक्ष्य रखा गया है, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय होगा। राज्य नागरिकों के जीविकोद्धार के पर्याप्त साधन जुटाएगा और प्राकृतिक सम्पदाओं पर अपनी मिलकियत और नियंत्रण रखेगा। धन पैदा करने के साधन थोड़े से लोगों के हाथ में इस तरह न रहेंगे कि सर्वसाधारण की हानि हो। स्त्रियों और पुरुषों को बराबर के काम के लिए समान वेतन मिलेगा। राज्य यथाशक्ति ऐसी व्यवस्था करेगा कि हर आदमी को काम करने, शिक्षा पाने, बेरोजगारी, बुढ़ापे, बीमारी, अपाहिज आदि में सरकार से मदद पाने का अधिकार हो। रहन-सहन का दर्जा उँचा करने और जनता के स्वास्थ्य में सुधार करने की व्यवस्थाओं का विधान किया गया है। राज्य शीघ्रतिशीघ्र न्याय और शासन विभागों को अलग करने के लिए कदम उठाएगा। सब के लिए एकसा दीवानी कानून जारी करेगा। वह अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को भी बढ़ाएगा। इन नैतिक आदेशों का महत्व स्पष्ट है; आशा है कानून बनानेवाली सब संस्थाएँ इनका यथेष्ट ध्यान रखेंगी।

बाइसवाँ परिच्छेद संघ शासन

पहले कहा जा चुका है कि नए विधान के अनुसार भारत राज्यों का एक संघ होगा। अब हम यह बतनायेंगे कि संघ का शासन कैसे किया जायगा। संघ का सर्वोच्च अधिकारी उसका अध्यक्ष अथवा राष्ट्रपति होगा। पहले उसी के बारे में विचार करते हैं।

राष्ट्रपति; उसका चुनाव और वेतन—संघ की कार्य-कारिणी का अधिकार राष्ट्रपति के ही हाथों में निहित होगा, किन्तु वह उसका उपयोग विधान और कानून के अनुसार ही कर सकेगा। भारत की रक्षा के लिए जो सेनाएँ होंगी, उनकी सर्वोच्च अधिनायकता भी राष्ट्रपति ही करेगा। इस अधिकार का उपयोग भी कानून के अनुसार होगा।

राष्ट्रपति का चुनाव एक निर्वाचक समुदाय करेगा, जिसमें पार्लिमेंट की दोनों सभाओं के सदस्य तथा राज्यों की व्यवस्थापक सभाओं के निर्वाचित सदस्य होंगे। राष्ट्रपति का कार्य-काल पाँच वर्ष होगा। हाँ, यदि वह चाहें तो इस काल के अन्दर ही त्याग-पत्र दे सकता है। यह त्याग-पत्र उसे राजपरिषद के सभापति (चेयरमैन) तथा लोकसभा के अध्यक्ष (स्पीकर) को सम्बोधित करके लिखना और उन्हें देना होगा। यदि वह विधान का उल्लंघन करता है तो वह अपने पद से हटाया जा सकता है। इसके लिए पार्लिमेंट की किसी सभा में, उसके विरुद्ध अभियोग लगाया जा सकता है। किन्तु ऐसा करने से पहले सभा के कम-से-कम ३० सदस्यों को अपने हस्ताक्षर सहित यह नोटिस देनी होगी कि हम ऐसा प्रस्ताव उपस्थित करना चाहते हैं। यदि जाँच के

बाद अधियोग प्रमाणित हो जाय तो राष्ट्रपति को हटा दिया जायगा। यदि कोई राष्ट्रपति पाँच वर्ष का अपना कार्य-काल समाप्त कर दे तो उसे एक बार फिर उस पद के लिए खड़े होने का अधिकार होगा। राष्ट्रपति के पद के चुनाव में वही व्यक्ति उम्मीदवार हो सकता है, जो भारत का नागरिक हो, कम-से-कम ३५ वर्ष की उम्रवाला हो और लोक सभा के सदस्य के रूप में चुने जाने को योग्यता रखता हो। जो व्यक्ति भारत-सरकार या किसी राज्य की सरकार के नियंत्रण में वेतनभोगी पद पर होगा, वह चुनाव के लिए नहीं खड़ा हो सकता, किन्तु किसी मंत्री के लिए यह प्रतिबन्ध नहीं होगा।

राष्ट्रपति के निवास के लिए एक सरकारी भवन होगा। उसे तब तक प्रतिमास ५५०० रु० वेतन मिलेगा, जब तक पार्लिमेंट कोई कानून बनाकर कोई दूसरी रकम निर्धारित न करदे। पद-ग्रहण करते समय राष्ट्रपति को भारत के प्रधान न्यायाधीश के सामने इस आशय की शपथ लेनी होगी कि मैं शक्तिभर कानून और विधान की रक्षा करूँगा और अपने आपको भारत की जनता की सेवा और भलाई में लगा दूँगा।

दोनों सभाओं द्वारा पास हुआ कानून का प्रत्येक मसविदा राष्ट्रपति के सामने स्वाकृति के लिए उपस्थित किया जायगा। उसे अधिकार होगा कि चाहें वह उसे अपनी स्वकृति प्रदान करे अथवा पुनर्विचार करने के लिए लाटा दे; हाँ, धन सम्बन्धी मसविदे को वह वापिस नहीं कर सकेगा। राष्ट्रपति को यह भी अधिकार होगा कि ऐसे समय में जब पार्लिमेंट का अधिवेशन नहीं हो रहा है, आवश्यकता प्रतीत होने पर कोई, आर्डिनेन्स जारी कर दे।

उपराष्ट्रपति—भारतीय संघ में एक उपराष्ट्रपति भी होगा। अपने पद के नाते वह राजपक्षिद का सभापति होगा। उसका चुनाव पार्लिमेंट को दोनों सभाओं के सदस्यों द्वारा एक संयुक्त बैठक में किया जायगा। उसका कार्य-काल भी पाँच वर्ष का होगा।

मंत्रिमंडल—राष्ट्रपति की सलाह और सहायता के लिए एक

मंत्रिमंडल होगा, जिसका प्रमुख प्रधान मंत्री होगा। विधान के अनुसार प्रधान मंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधान मंत्री का सलाह से करेगा। वास्तव में नियुक्ति का यह अधिकार राष्ट्रपति को नाममात्र के लिए ही है। पार्लिमेंटरी परम्परा के अनुसार, जो नए विधान में भी अपनाई गई हैं, लोकसभा में जिस दल का बहुमत होगा, उसका नेता ही प्रधान मंत्री होगा। उसी को राष्ट्रपति नियमानुसार प्रधान मंत्री के पद पर नियुक्त कर देगा। मंत्रिमंडल में और कौन-कौन व्यक्ति लिए जायें, इसका निर्णय मुख्यतः प्रधान मंत्री के हाथ में रहेगा। असल में वही अपने सब सहयोगियों का चुनाव करेगा। वह कभी-कभी अपने दल के बाहर के योग्य और प्रभावशाली सदस्यों को भी लेगा, जिससे उसे लोकसभा के अधिक-से-अधिक सदस्यों का समर्थन मिलता रहे। विभागों का बँटवारा भी प्रधान-मंत्री ही करेगा। मंत्रियों का चुनाव करके प्रधान मंत्री उनकी सूची राष्ट्रपति के सामने उपस्थित करेगा और राष्ट्रपति प्रायः उन प्रस्तावित मंत्रियों को ही नियुक्ति की घोषणा कर देगा।

शपथ-ग्रहण—प्रत्येक मंत्री को पद-ग्रहण करने के पूर्व दो प्रकार की शपथ ग्रहण करनी होगी। शपथ का क्या रूप होगा, यह निर्धारित कर दिया गया है। पद की शपथ इस प्रकार है :—“मैं.....गंभीरतापूर्वक शपथ लेता हूँ कि मैं कानून द्वारा स्थापित भारत के विधान के प्रति सच्ची भक्ति रखूँगा, मैं संघ-मंत्री के रूप में अपने कर्तव्यों का भक्तिपूर्वक तथा अंतःकरण से पालन करूँगा और मैं भय अथवा पक्षपात, प्रीति अथवा द्वेष के बिना सब प्रकार के लोगों के प्रति इस विधान और कानून के अनुसार ठीक-ठीक व्यवहार करूँगा।”

दूसरी शपथ गोपनीयता की है जिसका रूप इस प्रकार होगा :—“मैं.....गंभीरतापूर्वक शपथ लेता हूँ कि किसी बात को जो संघ-मंत्री के रूप में मेरे सामने विचारार्थ लाई जायगी अथवा मुझे ज्ञात होगी, किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप

से सूचित या प्रकट न करूँगा—उस अवस्था को छोड़कर, जब मंत्रि के रूप में अपने कर्त्तव्य के ठीक तरह पालन करने के लिए ऐसा करना अपेक्षित हो ।”

ये दोनों शपथ राष्ट्रपति दिलायगा ।

सामूहिक जिम्मेदारी—मंत्रिमंडल सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति जिम्मेदार होगा । इसका अर्थ यह है कि मंत्रिमंडल जो भी काम करेगा या नीति अग्रसर करेगा, उसकी सफ़ाई देने अथवा उसका औचित्य प्रमाणित करने के लिए प्रधान-मंत्री तथा उसके सहयोगियों को हर समय तैयार रहना होगा । उन्हें लोकसभा के सदस्यों को सदैव संतुष्ट रखना होगा । प्रजातंत्र के आदर्श की दृष्टि से यह ठीक भी है कि मंत्रिगण कोई ऐसा काम न करें, जो जनता के हित के विरुद्ध हो और जिसे जनता के प्रतिनिधि पसंद न करते हों । लोकसभा में मंत्रिमण्डल की नीति और कार्यों की स्वतंत्रतापूर्वक आलोचना की जा सकेगी । यदि किसी महत्वपूर्ण प्रश्न पर लोकसभा का बहुमत मंत्रिमंडल की ओर से रखे हुए प्रस्ताव, या कानून सम्बन्धी मसविदे के विरुद्ध जायगा तो पार्लि-मेंटरी शिष्टाचार और परम्परा के अनुसार मंत्रिमण्डल को पदत्याग करना पड़ेगा । यदि किसी कार्य या नीति की लोक-सभा का बहुमत निन्दा करता हो, वह चाहे किसी एक मंत्री के विषय से ही सम्बन्ध रखता हो, पूरे मंत्रिमण्डल को त्यागपत्र देना होगा । इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक मंत्री के विभाग के कार्य के लिए सम्पूर्ण मंत्रिमंडल अपने को जिम्मेदार समझता है । अपनी इस सामूहिक जिम्मेदारी के पालन के लिए प्रधान मंत्री को मंत्रिमंडल के सभी विभागों के कार्यों पर निगाह रखनी होती है ।

प्रधान मंत्री का कर्त्तव्य—विधान में प्रधान मंत्री का यह कर्त्तव्य बतलाया गया है कि संघ के सब मामलों के शासन के सम्बन्ध में मंत्रिमंडल जो भी निर्णय करे, उसको सूचना वह राष्ट्रपति को दे । कानून बनाने के निमित्त मंत्रिमण्डल का जो प्रस्ताव हो, उससे भी

राष्ट्रपति को परिचित रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति इस सम्बन्ध में जो सूचना या जानकारी मांगे, उसे प्रस्तुत करना भी प्रधान मंत्री का कर्त्तव्य होगा।

मंत्रियों सम्बन्धी अन्य बातें—विधान में कहा गया है कि मंत्री तभी तक अपने पद पर रहेंगे जब तक कि वे राष्ट्रपति को संतुष्ट रख सकें। इसका अर्थ यह निकलता है कि राष्ट्रपति किसी मंत्री को उसके पद से हटा सकता है। किन्तु ऐसा वह प्रधान मंत्री की सलाह से ही करेगा। यदि किसी मंत्री का कार्य अथवा आचरण आपत्तिजनक साबित हुआ तो प्रधान मंत्री के कहने पर राष्ट्रपति उसे हटा देगा। हटाने का पद्धति यह होगी कि प्रधान मंत्री उसे त्याग-पत्र देने की प्रेरणा करेगा, इस पर यदि वह मंत्री त्याग-पत्र देदे तो मामला निपट जायगा, परन्तु यदि वह अपने पद का परित्याग न करे तो प्रधान मंत्री अपना तथा अपने पूरे मंत्रिमण्डल का त्याग-पत्र देकर नया मंत्रिमण्डल ऐसा बनाएगा, जिसमें उपर्युक्त व्यक्ति न हो। इस मंत्रिमण्डल के मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति कर देगा।

राष्ट्रपति के अधिकार—राष्ट्रपति को अधिकार होगा कि वह किसी का प्राणदंड क्षमा कर दे या स्थगित करदे। इसी प्रकार उसे अन्य दंड को भी क्षमा कर देने या स्थगित कर देने का अधिकार होगा। राष्ट्रपति मंत्र के प्रधान मंत्री को नियुक्त करेगा तथा प्रधान मंत्री की सलाह से अन्य मन्त्रियों का नियुक्ति करेगा। वह मन्त्रियों को पदग्रहण के समय शपथ ग्रहण कराएगा। वही भारत के एटार्नी-जनरल को नियुक्ति करेगा और उसका वेतन निर्धारित करेगा। भारत सरकार की कार्यकारिणी का सभी काम राष्ट्रपति के नाम से होगा। राष्ट्रपति प्रधान मन्त्र से यह कह सकेगा कि वह संघ शासन के अमुक-अमुक विषयों की जानकारी प्रस्तुत करे। वैसे भी प्रधान मन्त्री पर यह जिम्मेदारी है कि वह राष्ट्रपति को मंत्रिमण्डल के सभी निर्णयों की सूचना दे। राष्ट्रपति किसी मन्त्री द्वारा किए गए निर्णय को मंत्रिमण्डल के सामने विचारार्थ

उपस्थित कर सकता है ।

राष्ट्रपति पार्लिमेंट का भी एक अंग होगा और उसे उसके बनाए कानूनों को स्वीकृति देने का अधिकार होगा । उसे अधिकार होगा कि पार्लिमेंट की किसी एक सभा या दोनों सभाओं का अधिवेशन बुलाए, जिसी अधिवेशन को समाप्त कर दे या लोकसभा को भंग करदे । वह पार्लिमेंट की किसी एक सभा में या दोनों सभाओं को संयुक्त बैठक में भाषण दे सकेगा । वह किसी भी सभा को संदेश भेज सकेगा; उस संदेश पर सभा को शीघ्रतापूर्वक विचार करना होगा । पार्लिमेंट के प्रत्येक अधिवेशन के प्रारम्भ में राष्ट्रपति दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक में विशेष भाषण देगा; उस भाषण में जिन विषयों की चर्चा की जायगी, उन पर पार्लिमेंट में विचार होगा ।

मंत्रियों का वेतन—अगर कोई मंत्री पार्लिमेंट की किसी सभा का सदस्य न हो, और लगातार ६ महीने तक सदस्य न बन पाए तो वह मंत्री-पद पर नहीं रह सकेगा । मंत्रियों का वेतन पार्लिमेंट कानून द्वारा निर्धारित करेगी। किन्तु जब तक ऐसा कानून नहीं बनाया जाता, तब तक संघ के प्रधान मंत्री तथा अन्य मंत्रियों को वही वेतन मिलेगा, जो विधान के लागू होने के पूर्व मिलता था।

एटार्नी जनरल—भारत का एक एटार्नी-जनरल होगा जिसकी नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा । जज नियुक्त किए जाने के लिए जितनी योग्यता अपेक्षित है, उतनी योग्यता इस पद के लिए भी आवश्यक है । एटार्नी-जनरल का काम यह होगा कि कानूनी विषयों पर भारत-सरकार को उलाह दे । अपने कर्तव्य के पालन के लिए उसे भारत की सभी अदा-लतों में उपस्थित होने का अधिकार होगा । एटार्नी-जनरल तभी तक अपने पद पर रह सकेगा जब तक राष्ट्रपति उसके काम से संतुष्ट रहेगा । वेतन भी राष्ट्रपति ही निर्धारित करेगा ।



तेइसवाँ परिच्छेद संघ पार्लिमेंट

भारतीय संघ के कानून बनानेवाली संस्था पार्लिमेंट कहलायगी जो राष्ट्रपति तथा दो सभाओं से मिलकर बनेगी। दोनों सभाओं के नाम होंगे राजपरिषद (कौंसिल-ऑफ-स्टेट), और लोकसभा (हाउस-ऑफ-पीपुल)।

राजपरिषद—राजपरिषद में २५० सदस्य होंगे जिनमें से १५ राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होंगे। राष्ट्रपति ऐसे ही व्यक्तियों को नामजद करेगा, जो साहित्य, कला, विज्ञान, शिक्षा, कृषि, इंजीनियरिंग तथा सामाजिक सेवा में विशेष ज्ञान अथवा व्यावहारिक अनुभव रखते हों। शेष २३५ सदस्य राज्यों के प्रतिनिधि होंगे। जिस राज्य के व्यवस्थापक मंडल में दो सभाएँ होंगी, उस राज्य के प्रतिनिधि प्रथम सभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुने जायेंगे; और, जिस राज्य में व्यवस्थापक मंडल केवल एक ही सभा का होगा, उस राज्य के प्रतिनिधि उसी सभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुने जायेंगे। जहाँ कोई व्यवस्थापक सभा न होगी, वहाँ के लिए पार्लिमेंट कानून पास कर यह निश्चित करेगी कि प्रतिनिधि किस प्रकार चुने जायें।

लोकसभा—लोकसभा में ५०० से अधिक सदस्य नहीं होंगे। वे सीधे जनता द्वारा निर्वाचित किए जायेंगे। चुनाव बालिग मताधिकार के आधार पर होगा—अर्थात् सभी स्त्री-पुरुष जो बालिग होंगे और जो निवास, नागरिकता आदि की योग्यता रखते होंगे, इस चुनाव में मताधिकारी होंगे। दूसरे कब्दों में, प्रत्येक नागरिक जो आयु में २१

वर्ष में कम नहीं है, जो निर्वाचन-क्षेत्र में रहता है, जिसका दिमाग खराब नहीं है, और जो अपराध या दुराचरण के कारण अयोग्य नहीं ठहराया गया है, चुनाव में मत दे सकेगा। भारत के सभी राज्यों की भूमि निर्वाचन-क्षेत्रों में बांट दी जायगी। प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र से कितने प्रतिनिधि चुने जा सकेंगे, यह नियत कर दिया जायगा। मोटे तौर पर प्रत्येक साढ़े सात लाख की आबादी के पीछे एक प्रतिनिधि रहेगा। पांच लाख जनसंख्या पीछे एक प्रतिनिधि से अधिक तो किसी हालत में नहीं रहेगा।

कार्य-काल और अधिवेशन—राजपरिषद् कभी भंग नहीं होगी। वह स्थायी रूप से बनी रहेगी। किन्तु प्रति दूसरे वर्ष के अंत में लगभग एक-तिहाई सदस्य हट जायेंगे और उनकी जगह उतने ही नए सदस्य लिए जायेंगे। इस सम्बन्ध में पार्लिमेंट कानून बनाकर व्यवस्था करेगी। लोकसभा का कार्य-काल पाँच वर्ष होगा। यदि देश के सामने कोई संकट उपस्थित है और उस सम्बन्ध में कोई सरकारी घोषणा कर दी गई है तो राष्ट्रपति लोकसभा का कार्य-काल बढ़ा सकता है, किन्तु वह उसे एक-एक साल करके ही बढ़ा सकता है; इकट्ठा कई साल के लिए नहीं। घोषणा की अवधि के समाप्त हो जाने के ६ महीने के बाद कार्य-काल किसी भी अवस्था में नहीं बढ़ाया जा सकेगा।

पार्लिमेंट की दोनों सभाएँ साल में कम-से-कम दो बार अवश्य बुलाई जायेंगे। दूसरे शब्दों में प्रत्येक सभा के दो अधिवेशन प्रतिवर्ष होंगे। दोनों अधिवेशनों के बीच ६ मास का अंतर किसी अवस्था में नहीं पड़ने पाएगा। अधिवेशन बुलाने, समाप्त करने तथा लोक-सभा को भंग करने का काम राष्ट्रपति करेगा। प्रत्येक सभा में राष्ट्रपति भाषण दे सकेगा या अपना कोई संदेश विचारार्थ भेज सकेगा। भारत का एटार्नी-जनरल तथा प्रत्येक मंत्री दोनों सभाओं में बोल सकेगा और उसकी कार्यवाही में भाग ले सकेगा किन्तु एटार्नी-जनरल को किसी सभा में मत देने का अधिकार नहीं होगा।

सभापति और उपसभापति—भारत का उपराष्ट्रपति अपने पद के नाते राजपरिषद् का सभापति (चेयरमेन) होगा। राजपरिषद् अपने सदस्यों में से ही एक को उप-सभापति (डिप्टी चेयरमेन) चुन लेगी। अगर उपसभापति अयोग्य सिद्ध होगा अथवा विश्वास खो देगा तो परिषद् बहुमत से एक प्रस्ताव पास कर उसे हटा सकेगी। किन्तु प्रस्ताव उपस्थित करने की सूचना कम-से-कम १४ दिन पहले दे देनी होगी। लोकसभा जितनी जल्दी संभव हो सकेगा अपने में से किसी सदस्य को अध्यक्ष (स्पीकर) चुन लेगी। इसी प्रकार वह एक उपाध्यक्ष (डिप्टी स्पीकर) भी अपने सदस्यों में से चुनेगी। अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को—यदि वे अयोग्य साबित हों अथवा यदि उनमें अविश्वास पैदा हो जाय—एक प्रस्ताव पास करके हटाया जा सकता है। किन्तु प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए कम-से-कम १४ दिन पूर्व सूचना देना आवश्यक होगा।

सभापति अथवा अध्यक्ष को या इसका पद ग्रहण करनेवाले किसी व्यक्ति को किसी प्रश्न पर मत देने का कोई अधिकार नहीं होगा। किन्तु अगर किसी प्रश्न पर मत लेने पर पक्ष और विपक्ष में बराबर-बराबर मत हों तो उसे अपना निर्णायक मत देने का अधिकार होगा। यदि किसी सभा की किसी बैठक में कुल सदस्यों के छठे हिस्से से भी कम सदस्य उपस्थित हैं तो उसके प्रधान का कर्तव्य होगा कि उस बैठक को स्थगित करदे। पद ग्रहण करने के पूर्व सभापति और अध्यक्ष को शपथ ग्रहण करना होगा।

सदस्यों सम्बन्धी कुछ नियम—पार्लिमेंट की दोनों सभाओं के प्रत्येक सदस्य को अपना स्थान ग्रहण करने के पूर्व राष्ट्रपति अथवा उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति की उपस्थिति में एक घोषणा करनी होगी, जिसका सार यह होगा—“मैं गंभीरता-पूर्वक प्रतिज्ञा और घोषणा करता हूँ कि मैं कानून द्वारा स्थापित भारत के विधान के प्रति

सच्ची भक्ति रखूँगा और ईमानदारी के साथ, अपने कर्तव्य का पालन करूँगा ।

कोई भी व्यक्ति दोनो सभाओं का सदस्य नहीं हो सकेगा । यदि कोई व्यक्ति दोनो सभाओं का सदस्य निर्वाचित हो जाय तो उसे किसी एक सभा की सदस्यता का त्याग कर देना होगा । यदि किसी सभा का कोई सदस्य ६० दिन तक किस भी बैठक में शामिल न हो तो उसका स्थान रिक्त घोषित किया जा सकेगा; किन्तु यदि उसने सभा की अनुमति ले रखी हो तो वह सदस्य बना रहेगा ।

सदस्यों की अयोग्यता—कुछ अयोग्यताएं ऐसी हैं, जिनके रहते कोई व्यक्ति पार्लिमेंट की किसी सभा का सदस्य नहीं चुना जा सकता । यदि कोई व्यक्ति भारत-सरकार अथवा किसी राज्य की सरकार का वैतनिक कर्मचारी है, अगर उसका दिमाग ठीक नहीं है और किसी अधिकार-प्राप्त अदालत ने उसे ऐसा घोषित कर रखा है, अगर वह दिवालिया है और मुक्त नहीं किया गया है, अगर वह किसी विदेशी शक्ति के प्रति भक्ति रखता है, किसी अन्य राज्य की प्रजा या नागरिक है या अगर वह पार्लिमेंट द्वारा बनाए गए किसी कानून द्वारा अयोग्य ठहरता है तो वह पार्लिमेंट की किसी सभा के निर्वाचन के लिए खड़ा नहीं हो सकता । यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि संघ अथवा किसी राज्य का मंत्री वेतन-भोगी होते हुए भी पार्लिमेंट की सदस्यता के लिए खड़ा हो सकता है ।

ऊपर यह बताया जा चुका है कि पार्लिमेंट के प्रत्येक सदस्य को स्थान ग्रहण करने के पूर्व एक घोषणा करनी पड़ती है । यदि कोई व्यक्ति यह घोषणा किए बिना किसी सभा में सदस्य के रूप में बैठता और मत देता है; अथवा अगर वह यह जानते हुए कि मैं सदस्यता के लिए योग्य नहीं हूँ अयोग्य ठहराया गया हूँ, बैठको में भाग लेता है तो उससे प्रतिदिन पाँच सौ रुपए के हिसाब से जुर्माना वसूल किया जायगा । इसी प्रकार अगर पार्लिमेंट के किसी कानून द्वारा उसे सदस्य

होने के लिए वर्जित कर दिया गया है, लेकिन उसकी परवाह न करके वह किसी सभा में बैठता और मत देता है तो वह भी इसी दण्ड का भागी होगा।

सदस्यों के अधिकार और वेतन—सदस्यों को पार्लिमेंट में भाषण को स्वतंत्रता होगी। नियमों तथा स्थायी आदेशों का ध्यान रखने के अलावा उन पर किसी अन्य प्रकार का बंधन नहीं होगा। जिन बातों को कहना साधारण नागरिक के लिए अपराध समझा जायगा, उन्हें कोई सदस्य पार्लिमेंट में स्वतंत्रतापूर्वक कह सकेगा। पार्लिमेंट अथवा उसकी किसी समिति में कही हुई किसी बात या दिए हुए किसी मत के कारण अदालत में मामला नहीं चलाया जा सकेगा। पार्लिमेंट की अनुमति और अधिकार से अगर वह कोई रिपोर्ट, निबंध या कार्यवाही प्रकाशित करेगा तो उसके खिलाफ भी कोई अदालती कार्यवाई नहीं की जा सकेगी। अन्य बातों के सम्बन्ध में सदस्यों को क्या अधिकार और सुविधाएं प्राप्त होंगी, यह पार्लिमेंट कानून बना कर निर्धारित करेगा।

पार्लिमेंट के सदस्यों को कितना वेतन और भत्ता मिले, इसका निश्चय पार्लिमेंट कानून बनाकर करेगी। जब तक कोई ऐसा कानून पास नहीं बनता, तब तक उन्हें वही वेतन और भत्ता मिलेगा, जो नए विधान के लागू होने के पूर्व मिलता था।

कानून बनने की प्रणाली—धन सम्बन्धी मसविदों को छोड़कर किसी भी कानून का मसविदा किसी सभा में पेश किया जा सकता है। उसके अंतिम रूप में पास हो जाने के लिए आवश्यक होगा कि पार्लिमेंट की दोनों सभाएँ उसे स्वीकार कर लें। अगर मसविदे में कोई सभा संशोधन उपस्थित करती है और वह स्वीकार कर लिया जाता है तो संशोधित रूप में वह मसविदा तभी पार्लिमेंट द्वारा पास समझा जायगा जब दूसरी सभा भी उसी रूप में उसे पास करदे। अगर कोई मसविदा पार्लिमेंट में विचाराधीन है और अधिवेशन समाप्त हो जाता

है तो वह रद्द नहीं हो जायगा। अगले अधिवेशन में फिर उस पर विचार किया जायगा।

यदि कोई मसविदा राजपरिषद् में विचाराधीन है लेकिन लोकसभा द्वारा पास नहीं हुआ है और इसी बीच में लोक-सभा भंग हो जाती है तो मसविदा समाप्त नहीं हो जायगा किन्तु जो मसविदा लोकसभा के भंग होने के समय उस सभा में विचाराधीन था, या उसके द्वारा पास होकर राजपरिषद् में विचाराधीन था वह समाप्त समझा जायगा।

संयुक्त अधिवेशन—अगर कोई मसविदा एक सभा में पास होकर दूसरी सभा में विचारार्थ जाय और वह दूसरी सभा द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाय तो राष्ट्रपति चाहे तो दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक कर सकता है, उसमें मसविदे पर विचार तथा मतदान करा सकता है। इसी प्रकार अगर दोनों सभाएँ मसविदे के संशोधन के सम्बन्ध में एकमत नहीं होती तो भी राष्ट्रपति संयुक्त बैठक के लिए दोनों सभाओं को बुला सकता है। एक और अवस्था में भी राष्ट्रपति दोनों सभाओं को एक साथ बैठक के लिए निर्मन्त्रित कर सकता है। यदि कोई मसविदा एक सभा में पास होकर दूसरी सभा में चला गया है और वहाँ वह ६ महीने से अधिक समय तक पड़ा रह जाता है, पास नहीं किया जाता तो राष्ट्रपति द्वारा संयुक्त अधिवेशन बुलाया जा सकता है। स्मरण रहे कि धन सम्बन्धी मसविदे के सम्बन्ध में यह सब बात लागू न होगी।

संयुक्त अधिवेशन में अगर मसविदा ऐसे संशोधनों के साथ, जो संयुक्त बैठक में स्वीकृत हो जाते हैं, बहुमत से पास हो जाता है तो वह पार्लिमेंट द्वारा पास समझा जायगा। दोनों सभाओं के जितने सदस्य संयुक्त बैठक में उस समय उद्दिष्ट होंगे और मत देगे उनके आधे से अधिक सदस्यों का मत ही बहुमत समझा जायगा।

धन सम्बन्धी मसविदे की विशेष कार्यप्रणाली—

कोई धन सम्बन्धी मसविदा राजपरिषद में उपस्थित नहीं किया जा सकता । प्रत्येक अवस्था में वह लोक-सभा में ही पेश किया जायगा । धन सम्बन्धी मसविदा उस मसविदे को कहते हैं जो कोई कर लगाने या हटाने, भारत सरकार द्वारा रुपया ऋण लेने, या राजस्व के व्यय की व्यवस्था करने के संबंध में होता है । जब इस तरह का कोई मसविदा लोक-सभा में पास हो जायगा तो वह राजपरिषद में उसकी सिफारिशों के लिए भेजा जायगा । राजपरिषद एक महीने के अन्दर अपनी सिफारिशों के साथ उसे लोक-सभा में वापस भेज देगी । लोक-सभा को पूर्णाधिकार होगा कि वह किसी सिफारिश को स्वीकार करे या न करे । यदि लोक-सभा किसी सिफारिश को स्वीकार करती है तो वह धन-सम्बन्धी मसविदा संशोधन के साथ दोनों सभाओं द्वारा पास समझा जायगा । यदि लोक-सभा किसी भी सिफारिश को स्वीकार नहीं करती तो भी मसविदा दोनों सभाओं द्वारा पास समझा जायगा । अगर राज-परिषद एक महीने के अन्दर अपनी सिफारिशों के साथ मसविदे को लोक-सभा में वापस नहीं भेज देती तो भी वह दोनों सभाओं द्वारा पास मान लिया जायगा ।

अगर कभी यह प्रश्न उठ खड़ा हो कि कोई मसविदा वास्तव में धन सम्बन्धी है या नहीं, तो लोक-सभा के अध्यक्ष का निर्णय मान्य होगा । प्रत्येक धन सम्बन्धी मसविदे के साथ जब वह राजपरिषद में भेजा जायगा, अध्यक्ष के हस्ताक्षर का इस आशय का एक प्रमाण-पत्र भी रहेगा कि यह मसविदा धन सम्बन्धी है ।

राष्ट्रपति की स्वीकृति—जब कोई मसविदा पार्लिमेन्ट की दोनों सभाओं द्वारा पास कर दिया जायगा तो वह राष्ट्रपति के सामने स्वीकृति के लिए उपस्थित किया जायगा । राष्ट्रपति या तो यह घोषित करेगा कि वह मसविदे को स्वीकृति प्रदान करता है या यह कि वह मसविदे को अपनी स्वीकृति देने के लिए तैयार नहीं है । राष्ट्रपति चाहे तो ६ सप्ताह के अंदर उस मसविदे को (अगर वह धन सम्बन्धी

नहीं है) एक संदेश के साथ लौटा सकता है। उस संदेश में यह प्रार्थना की जायेगी कि मसविदे पर या उसकी किसी खाम धारा आदि पर फिर से विचार किया जाय। अपने संदेश के साथ राष्ट्रपति यह मिफारिश कर सकता है कि अमुक आशय का संशोधन कर दिया जाय। उसके अनुसार दोनों सभाएँ पुनः मसविदे पर विचार करेंगी।

आय-व्यय पत्रक—राष्ट्रपति भारत-सरकार के प्रत्येक आर्थिक वर्ष के अनुमानित आय और व्यय के सम्बन्ध में एक वक्तव्य पार्लिमेंट को दोनों सभाओं के सामने उपस्थित करायेंगा। इसे वार्षिक आर्थिक वक्तव्य कहते हैं। इसमें व्यय के अनुमान के संबंध में दो तरह की रकमें अलग-अलग दिखाई जायेंगी :—(१) जिन्हें भारत के राजस्व से देना अनिवार्य है, जिन पर पार्लिमेंट का मत नहीं लिया जायेगा, और :—(२) जिन्हें भारत की आय से देने का प्रस्ताव किया जाता है। पहली श्रेणी में राष्ट्रपति का वेतन, भत्ता, तथा उसके आफिस का अन्य खर्च, राज-परिषद् के सभापति, उपसभापति एवं लोक-सभा के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष का वेतन, भत्ता; ऋण के रूप में देय धन; सर्वोच्च न्यायालय के जजों का वेतन, भत्ता, पेन्शन, संघ अदालत के जजों की पेन्शन आदि खर्चें शामिल होंगे। ये सब खर्चें पार्लिमेंट के मत के लिए नहीं रखे जायेंगे। किन्तु उसकी किसी भी सभा में उन अनुमानित रकमों पर बहस की जायेगी। दूसरी श्रेणी के अनुमानित खर्च लोक-सभा में धन की मांग के रूप में रखे जायेंगे। सभा को अधिकार होगा कि उन्हें स्वीकार करे या किसी मांग को स्वीकार करने से इन्कार कर दे। मद की रकम वह घटा भी सकती है। धन के लिए कोई माँग राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना नहीं की जायेगी। राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर सहित एक तालिका को प्रमाणित करेगा, जिसमें वे सब रकमें शामिल होंगी, जिन्हें लोक-सभा ने स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त खर्च की पहली श्रेणी की रकमें भी शामिल होंगी। जो खर्च इस

तालिका में न दिखाया गया होगा, वह भारत के राजस्व से नहीं किया जायगा यदि किसी आर्थिक वर्ष में और खर्च की आवश्यकता आ पड़े तो राष्ट्रपति पार्लिमेंट की दोनों सभाओं के सामने पूरक बजट उपस्थित करायेंगा ।

पार्लिमेंट की भाषा—विधान के मसविदे में कहा गया है कि पार्लिमेंट की कार्यवाही हिंदी अथवा अंगरेजी में होगी । सभापति या अध्यक्ष को अधिकार होगा कि वह किसी सदस्य को जो इन दोनों भाषाओं में अपने विचारों को ठीक-ठीक व्यक्त नहीं कर सकता, अपनी मातृभाषा में बोलने की अनुमति दे । इन पंक्तियों के लिखे जाने के समय तक विधान सभा ने इस धारा पर अपना निर्णय नहीं किया है । किन्तु देश में जोरो के साथ यह मांग की जा रही है कि हिंदी को राष्ट्रभाषा घोषित किया जाय और केवल उसी भाषा में पार्लिमेंट तथा भारत-सरकार का सब काम हो । यह निश्चित है कि अंगरेजी अधिक दिनों तक राष्ट्रभाषा के रूप में कायम नहीं रह सकती । किन्तु साथ ही यह भी तय सा है कि कम-से-कम कुछ वर्षों के लिए उसे भी हिन्दी के साथ रखने का निर्णय किया जायगा । हिन्दी के अतिरिक्त और कोई ऐसी भाषा नहीं है जो राज-भाषा के रूप में अंगरेजी का स्थान ग्रहण कर सके । अतः यह निश्चित है कि एक दिन केवल हिन्दी ही राजभाषा के रूप में व्यवहृत होगी और पार्लिमेन्ट की सब कार्यवाही इसी भाषा में होगी ।

चौबीसवाँ परिच्छेद

सर्वोच्च न्यायालय

सर्वोच्च न्यायालय का संगठन—सारे भारत के लिए, नए विधान के अनुसार, एक सर्वोच्च न्यायालय ('सुप्रीम कोर्ट') होगा। इसमें एक प्रधान न्यायाधीश (चीफ जस्टिस) और इतने अन्य न्यायाधीश होंगे, जितने पार्लिमेंट निश्चित करे, पर जो सात से कम न हों। प्रत्येक न्यायाधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होगी। राष्ट्रपति किसी न्यायाधीश की नियुक्ति सर्वोच्च न्यायालय तथा हाईकोर्टों के न्यायाधीशों के परामर्श से करेगा। परन्तु चीफ-जस्टिस को छोड़कर अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति में चीफ-जस्टिस का परामर्श हमेशा लिया जायगा। चीफ-जस्टिस की अनुपस्थिति में उसका कार्य इस न्यायालय का वह न्यायाधीश करेगा, जिसे राष्ट्रपति इस कार्य के लिए नियुक्त करे।

यह न्यायालय देहली में होगा, या ऐसे अन्य स्थान या स्थानों में होगा, जो चीफ-जस्टिस राष्ट्रपति की राजामन्दी से समय-समय पर निश्चित करे।

न्यायाधीशों के लिए आवश्यक योग्यता—किसी व्यक्ति के न्यायाधीश नियुक्त किए जाने के लिए यह आवश्यक है कि वह भारत का नागरिक हो, और कम-से-कम पांच वर्ष तक किसी हाईकोर्ट का, या लगातार दो से अधिक हाईकोर्टों का जज रह चुका हो; या कम-से-कम दस वर्ष तक किसी हाईकोर्ट में या लगातार दो या अधिक हाईकोर्टों में एडवोकेट रहा हो। एडवोकेट रहने के समय का हिसाब लगाने में वह समय भी गिन लिया जायगा, जब एडवोकेट बनने के बाद उसने

जजी के पद पर काम किया हो ।

न्यायाधीशों का वेतन और भत्ता—चीफ जस्टिस को ५,००० रु० और अन्य न्यायाधीशों को ४,५०० रु० मासिक वेतन तथा निर्धारित भत्ता मिलेगा । उनके वेतन और भत्ते में पार्लिमेंट कानून बनाकर समय-समय पर परिवर्तन कर सकती है ।

न्यायाधीशों की शपथ—जो व्यक्ति सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जायगा, वह अपना पद ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति के सामने या राष्ट्रपति द्वारा निश्चित किए हुए दूसरे आदमी के सामने इस प्रकार की प्रतिज्ञा करेगा, और इस पर हस्ताक्षर करेगा—
“मैं (नाम)...गम्भीरता-पूर्वक शपथ लेता हूँ कि मैं कानून द्वारा स्थापित भारत के विधान के प्रति सच्ची भक्ति रखूंगा और अपनी पूरी योग्यता, जानकारी और विवेक से ठीक-ठीक और वफादारी के साथ बिना भय या पक्षपात और बिना प्रीति या द्वेष के अपने पद के कर्तव्यों को पूरा करूंगा और विधान और कानूनों का मान बनाए रखूंगा ।”

न्यायाधीशों का कार्य-काल—प्रत्येक न्यायाधीश ६५ वर्ष की उम्र तक अपने पद पर रहेगा, पर वह चाहे तो वह इससे पूर्व राष्ट्रपति के पास लिखित त्यागपत्र भेजकर अपना पद छोड़ सकता है । उसे उसके पद से तभी हटाया जा सकता है, जबकि पार्लिमेंट की दोनों सभाएँ एक ही अधिवेशन में उसके हटाए जाने का ऐसा निवेदन-पत्र रखे कि उसमें दुराचार या असमर्थता का दोष प्रमाणित हो चुका है, और उस निवेदन-पत्र का, उपस्थित और मत देने वाले कम-से-कम दो-तिहाई सदस्य समर्थन करें, और इसके बाद राष्ट्रपति उसे हटाए जाने की आज्ञा दे ।

जो व्यक्ति सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश रह चुका है, वह भारत के किसी न्यायालय में वकालत या अन्य कार्य नहीं कर सकेगा ।

न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र—इस न्यायालय के निम्न-

लिखित अधिकार-क्षेत्र हैं :—प्रारम्भिक, अपील सम्बन्धी और परामर्श सम्बन्धी ।

१—नीचे लिखे ऐसे मामलो का विचार करना सर्वोच्च न्यायालय का प्रारम्भिक (आरिजिनल) अधिकार क्षेत्र होगा, और इसके सिवा किसी दूसरे न्यायालय का न होगा :—(क) जो भारत-सरकार और एक या अधिक राज्यों में हो; या (ख) जिसमें एक और भारत-सरकार और एक या अधिक राज्य हों, और दूसरी और एक या अधिक राज्य हों; या (ग) जो दो या अधिक राज्यों में हो । यह अधिकार उस दशा में और उसी सीमा तक होगा जब उस मामले में कोई ऐसा प्रश्न उठता हो, जिस पर किसी कानूनी अधिकार का अस्तित्व या विस्तार निर्भर हो ।

२—निम्नलिखित विशेष दशाओं में सर्वोच्च न्यायालय को राज्यों के हाईकोर्टों की अपीलें सुनने का अधिकार होगा :—

(क) जब हाईकोर्ट किसी मामले के सम्बन्ध में यह तसदीक करदे या सर्वोच्च न्यायालय को यह संतोष हो जाय कि उसमें शासन-विधान की व्याख्या सम्बन्धी कोई महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्न आता है ।

(ख) जब हाईकोर्ट का फैसला किया हुआ मामला बीस हजार रु० या अधिक को मालियत का हो, और हाईकोर्ट उस मामले को अपील होने योग्य तसदीक करदे । ऐसे मामले में सर्वोच्च न्यायालय भी अनुमति दे सकता है ।

(ग) जब कोई ऐसा फौजदारी मामला जिसमें नीचे की अदालत की रिहाई की आज्ञा को रद्द करके हाईकोर्ट ने फांसी की सजा दी है, या जब कि हाईकोर्ट ने कोई मामला अपने पास मंगा कर प्राण-दंड दिया है, और जब कि हाईकोर्ट ने यह तसदीक कर दिया है कि यह मामला सर्वोच्च न्यायालय में अपील किए जाने योग्य है ।

[विधान सभा में प्राणदंड को उठा देने की चर्चा रही, पर यह दंड अभी नहीं उठाया गया ।]

३—राष्ट्रपति किसी सार्वजनिक महत्व के कानून के प्रश्न पर

सर्वोच्च न्यायालय की सम्मति लेना चाहे तो यह न्यायालय उसके सम्बन्ध में आवश्यक बातें जान लेने पर अपनी रिपोर्ट देगा ।

पार्लिमेंट के बनाए हुए कानूनों को ध्यान में रखते हुए यह न्यायालय, राष्ट्रपति की रजामन्दी से अपनी कार्यपद्धति के नियम बना सकेगा । इस न्यायालय द्वारा ठहराया हुआ कानून भारत के सब न्यायालयों को मानना होगा । भारत के सब अधिकारी और न्यायालय इसकी सहायता करेंगे ।

अधिकार-क्षेत्र की वृद्धि—सर्वोच्च न्यायालय को भारतीय संघ सम्बन्धी विषयों के ऐसे अधिकार भी होंगे, जो पार्लिमेंट उसे कानून बनाकर प्रदान करे । अगर भारत-सरकार और कोई राज्य आपस में समझौता करके किसी मामले के सम्बन्ध में कुछ और अधिकार दे दे और पार्लिमेंट उसके सम्बन्ध में आवश्यक कानून बनादे तो सर्वोच्च न्यायालय को वह अधिकार भी प्राप्त होगा । पार्लिमेंट कानून द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे पूरक अधिकार दे सकती है, जो इस विधान के किसी नियम से असंगत न हो और जिनको प्राप्त करके सर्वोच्च न्यायालय अपना कार्य और अच्छी तरह कर सके ।

न्यायालय सम्बन्धी खर्च और आमदनी—सर्वोच्च न्यायालय के अधिकारियों और नौकरो को जो वेतन, भत्ता या पेन्शन दी जायगी, उन्हें चीफ-जस्टिस राष्ट्रपति से परामर्श करके निश्चित करेगा । इसका खर्च तथा न्यायालय का अन्य प्रबन्ध-व्यय संघ सरकार की आय से दिया जायगा (इस पर पार्लिमेंट का मत नहीं लिया जायगा) । न्यायालय जो फीस या अन्य रकमें लेगा, वे भारत की आय में सम्मिलित होगी ।

पचीसवाँ परिच्छेद राज्य-शासन

(१)

पहले कहा जा चुका है कि नए विधान के अनुसार भारत एक संघ-राज्य होगा और उसकी सब इकाइयाँ—प्रान्त या रियासते—राज्य कहलाएँगी। अब यह विचार किया जाता है कि भारत के इन राज्यों का शासन किस प्रकार होगा।

गवर्नर; उसकी नियुक्ति — प्रत्येक राज्य के शासन के लिए एक गवर्नर होगा। राज्य की कार्यकारिणी शक्ति उसी के हाथ में रहेगी, किन्तु पार्लिमेंट अथवा राज्य का व्यवस्थापक मंडल चाहे तो वह कानून बना कर किसी कार्य को ऐसे अधिकारी के सुपुर्द कर सकता है, जो गवर्नर के नीचे हो। गवर्नर अपने अधिकारों का उपयोग विधान के अनुसार ही कर सकेगा। गवर्नर की नियुक्ति के सम्बन्ध में विधान के मसविदे में कहा गया था कि वह सीधे जनता (व्यवस्थापक सभा के निर्वाचकों) द्वारा चुना जाय, किन्तु विधान-सभा ने चुनाव की व्यवस्था को ठोक नहीं समझा और यह निर्णय किया कि गवर्नर की नियुक्ति राष्ट्रपति करे। यह अतलाने की आवश्यकता नहीं है कि राष्ट्रपति संघ के प्रधान मंत्रों की सलाह से ही गवर्नर को मनोनीत करेगा। चुनाव की व्यवस्था बड़ी खर्चीली समझी गई और साथ ही यह भी सोचा गया कि चूंकि गवर्नर केवल वैधानिक प्रधान होगा, उसके हाथ में पहले की तरह बहुत से स्वतंत्र विशेषाधिकार नहीं रहेंगे अतः जनता द्वारा उसका चुनाव कराने की आवश्यकता नहीं। यह विचार भी प्रगट किया गया कि प्रत्येक प्रान्त की जनता पर ही गवर्नर का चुनाव छोड़ा गया तो प्रान्त के बाहर

के किसी योग्य व्यक्ति के चुने जाने की संभावना बहुत कम रहेगी। इससे राष्ट्रीय एकता को आघात पहुँचेगा और प्रान्तीयता की दूषित भावना जोर पकड़ेगी। एक बात यह भी सोची गई कि अगर गवर्नर और प्रधान मंत्री दोनों साथे जनता द्वारा निर्वाचित होंगे तो उनमें संघर्ष पैदा होने की आशंका होगी और शासन कमजोर पड़ेगा। इन सब बात का विचार करके गवर्नर के चुनाव का नियम नहीं रखा गया।

मसविदे में गवर्नर के चुनाव के लिए एक दूसरा प्रस्ताव यह दिया गया था कि राज्य की व्यवस्थापक सभा, अथवा जिस प्रांत में व्यवस्थापक परिषद भी हो, वहाँ दोनों सभाएँ मिल कर अपनी संयुक्त बैठक में चार उम्मीदवार चुने; पश्चात् राष्ट्रपति उन चारों में से किसी एक को गवर्नर नियुक्त कर दे। किन्तु यह व्यवस्था भी संतोषजनक नहीं समझी गई, इसका भी परित्याग कर दिया गया।

कोई व्यक्ति किसी राज्य के गवर्नर के पद पर नियुक्त नहीं किया जायगा, जो भारत का नागरिक न हो, या जिसकी आयु ३५ वर्ष से कम हो, या जिसमें उस राज्य की व्यवस्थापक सभा का सदस्य होने की योग्यता न हो। किसी राज्य का गवर्नर होने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह उस राज्य का निवासी हो।

कार्य-काल और वेतन आदि—गवर्नर पाँच वर्ष तक अपने पद पर रहेगा। वह चाहे तो इस बीच में ही त्याग-पत्र दे सकता है; त्याग-पत्र व्यवस्थापक सभा के सभापति ('स्पीकर') के नाम, और जिस प्रान्त में व्यवस्थापक परिषद भी है, वहाँ दोनों सभाओं के सभापतियों के नाम लिखा जायगा। विधान का उल्लंघन करने के अपराध में गवर्नर को उसके पद से हटाया भी जा सकता है। [इसकी विधि आगे बताई जायगी।] कार्य-काल समाप्त हो जाने पर भी गवर्नर तब तक अपने पद पर कार्य करता रहेगा, जब तक कि उसका उत्तराधिकारी उस पद को ग्रहण न करले। कोई व्यक्ति, जो गवर्नर है या रह चुका है, अधिक-से-अधिक एक बार और इस पद पर नियुक्त किया जा सकता है।

गवर्नर न तो पार्लिमेंट का सदस्य हो सकेगा और न किसी राज्य के व्यवस्थापक मंडल का। यदि वह पहले से सदस्य है तो गवर्नर का पद ग्रहण करने से पूर्व उस सदस्यता को छोड़ देगा। वह कोई वैतनिक पद नहीं ले सकेगा। उसे रहने के लिए एक सरकारी भवन मिलेगा। गवर्नर का वेतन और भत्ता राज्य के व्यवस्थापक मंडल द्वारा निर्धारित किया जायगा, और जब तक उसके द्वारा निर्धारित न हो उसे प्रतिमास ४,५०० रु० वेतन मिलेगा; भत्ता अलग रहेगा। वह बिना किराया या महसूल दिए रेलवे सेलून, नौका, स्टोमर, मोटर, हवाई जहाज का भी उपयोग कर सकेगा।

शपथ—अपना पद ग्रहण करने से पूर्व गवर्नर को व्यवस्थापक मंडल के सदस्यों की उपस्थिति में एक शपथ लेनी होगी, जिसका रूप यह होगा—“मैं (नाम).....गंभीरता पूर्वक शपथ लेता हूँ कि मैं सच्चे हृदय से..... राज्य के गवर्नर के पद का कार्य करूँगा, अपनी पूरी योग्यता से कानून तथा विधान की रक्षा करूँगा और मैं अपने आपको.....राज्य की जनता को सेवा और कल्याण में तन-मन से लगाऊँगा।”

अभियोग लगाकर गवर्नर का हटाया जाना—यदि गवर्नर को उसके पद से हटाना अभीष्ट हो तो पहले व्यवस्थापक सभा के कम-से-कम तीस सदस्य अपने हस्ताक्षर से नोटिस देकर गवर्नर पर अभियोग लगाने का एक प्रस्ताव उपस्थित करने की इच्छा प्रगट करेंगे। फिर प्रस्ताव उपस्थित किया जायगा। यदि व्यवस्थापक सभा के कम-से-कम दो-तिहाई सदस्य उसका समर्थन करेंगे तो ‘अभियोग लगाया जा सकेगा। [अभियोग व्यवस्थापक सभा में ही लगाया जा सकेगा।] अभियोग लगने के बाद व्यवस्थापक सभा का सभापति (स्पीकर) राज-परिषद के सभापति (उपराष्ट्रपति) को उसकी सूचना देगा। तब राजपरिषद एक कमेटी नियुक्त करेगी जो अभियोग की जांच करेगी। गवर्नर को अधिकार होगा कि इस जांच के समय स्वयं आवे अथवा अपना कोई

प्रतिनिधि भेजे। यदि जांच के फल-स्वरूप राजपरिषद में कम-से-कम दो-तिहाई सदस्यों के समर्थन से ऐसा प्रस्ताव पास हो जाय कि गवर्नर के विरुद्ध लगाया हुआ अभियोग प्रमाणित हो चुका है तो जिस तारीख को इस प्रस्ताव की सूचना व्यवस्थापक सभा के स्पीकर को दी जायगी, उस तारीख से गवर्नर अपने पद से हटा दिया जायगा।

गवर्नर के अधिकार—गवर्नर को क्षमा प्रदान करने, किसी व्यक्ति को दी गई सजा को माफ करने, घटाने या स्थगित करने का अधिकार होगा। राज्य की कार्यकारिणी शक्ति गवर्नर के सुपुर्द होगी और वह विधान और कानून के अनुसार उसका उपयोग करेगा। वह अपना कार्य मंत्रिमंडल की सलाह से करेगा, सिवाय उस कार्य के जो उसके विवेक पर छोड़ा गया है। अगर कभी यह प्रश्न उपस्थित हो कि अमुक कार्य या मामले को विधान ने गवर्नर के विवेक पर छोड़ा है या नहीं, तो गवर्नर का निर्णय ही मान्य होगा। उसके किए हुए किसी कार्य को इस आधार पर अवैध नहीं ठहराया जा सकेगा कि उसे यह कार्य अपने विवेक से नहीं करना चाहिए था।

मंत्रिमंडल का संगठन—विधान के अनुसार मंत्रियों की नियुक्ति गवर्नर करेगा, और मंत्री तभी तक अपने पदों पर रह सकेंगे, जब तक कि गवर्नर उनसे संतुष्ट रहे। विधान में यह भी कहा गया है कि जहाँ तक सम्भव हो अल्पसंख्यक जातियों के सदस्यों को भी मंत्रिमंडल में लिया जाना चाहिए। किन्तु व्यवहार में गवर्नर को इस सम्बन्ध में कोई अधिकार नहीं होगा। वास्तव में मंत्रिमंडल का संगठन पार्लियामेंटरी पद्धति के अनुसार होगा। व्यवस्थापक सभा में, चुनाव के बाद जिस दल के सदस्य अधिक संख्या में पहुँचेंगे अर्थात् जिस दल का बहुमत होगा, उसी का नेता प्रधान मंत्री होने का अधिकारी होगा। उसी को बुलाकर गवर्नर प्रधान मंत्री नियुक्त करेगा और उसी से अन्य मंत्रियों के नाम पेश करने के लिए कहेगा प्रधान मंत्री अपनी इच्छानुसार अथवा अपने दल के अन्य नेताओं से सलाह-मशविरा करके मंत्रियों का

चुनाव कर लेगा। वह अधिकांश में अपने ही दल के आदमियों को मंत्री-पद के लिए छुट्टेगा। किन्तु वह आवश्यकतानुसार दूसरे दल के आदमियों को भी मंत्रिमंडल में ले सकता है।

प्रधान मंत्री को मंत्रियों के चुनाव में पहली बात यह ध्यान में रखनी होती है कि मंत्रिमंडल ऐसा बने जिसमें व्यवस्थापक मंडल को विश्वास हो, और जो उसके सदस्यों के बहुमत को अपने पक्ष में रख सके। प्रधान मंत्री को यह भी सोचना पड़ता है कि मंत्री ऐसे हों, जो शासन के विविध विभागों का काम योग्यता-पूर्वक कर सकें। इन बातों का लिहाज रखते हुए वह मंत्रियों को छुट्टेगा और उनकी सूची गवर्नर के सामने उपस्थित करेगा। गवर्नर उसे स्वीकार कर लेगा। इससे स्पष्ट है कि प्रधान मंत्री तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करने में गवर्नर का अधिकार नाममात्र को होगा।

इसी प्रकार विधान में जो यह कहा गया है कि मंत्री तभी तक अपने पदों पर काम कर सकेंगे, जब तक गवर्नर की मर्जी होगी, इसका अर्थ यह नहीं है कि गवर्नर जब जिस मंत्री को हटाना चाहे, हटा सकता है। मंत्री व्यवस्थापक सभा के प्रति जिम्मेवार होंगे, गवर्नर के प्रति नहीं। अगर कोई मंत्री अवैधानिक काम या आचरण करेगा तो गवर्नर उसे हटा सकेगा।

विधान के अनुसार उड़ीसा, बिहार, तथा मध्यप्रान्त-ब्रार में एक-एक मंत्री बनवासी जातियों के हितार्थ रहेगा, वह परिगणित जातियों तथा पिछड़े हुए वर्गों की भलाई का भी ध्यान रखेगा।

मंत्रियों का शपथ-ग्रहण—प्रत्येक मंत्री को अपना पद ग्रहण करने के पूर्व दो प्रकार की शपथ लेनी होगी—(१) पद की शपथ, (२) गोपनीयता की शपथ। दोनों शपथ गवर्नर लिवाएगा। इनका रूप निर्धारित है और प्रायः उसी प्रकार का है जैसा कि संघ के मंत्रियों के लिए है, जो पहले बताया जा चुका है।

वेतन और भत्ता—अगर कोई मंत्री लगातार छः माह तक

व्यवस्थापक सभा का सदस्य नहीं हो पावेगा तो उसे अपना पद खाली कर देना होगा। मंत्रियों का वेतन और भत्ता व्यवस्थापक मंडल द्वारा निर्धारित किया जायगा। किन्तु जब तक व्यवस्थापक मंडल कानून पास करके इसकी कोई व्यवस्था नहीं करेगा, तब तक मंत्रियों को वही वेतन और भत्ता दिया जायगा, जो इस विधान के लागू होने से पहले उनके प्रान्त में दिया जाता था।

सामूहिक जिम्मेदारी—गवर्नर को नियुक्ति के समय जो आदेश-पत्र दिया जायगा, उसमें यह लिखा रहेगा कि मंत्रियों को नियुक्त करते समय उसे यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि मंत्रियों में सामूहिक जिम्मेदारी बढे। सामूहिक जिम्मेदारी का आशय क्या है, और इसके अनुसार किस प्रकार व्यवहार होता है, यह वाइसवे परिच्छेद में, केन्द्रीय मंत्रिमंडल के प्रसंग में बताया जा चुका है।

एडवोकेट-जनरल—प्रत्येक राज्य में एक एडवोकेट-जनरल होगा, उसकी नियुक्ति राज्य का गवर्नर करेगा। जिस व्यक्ति में हाईकोर्ट का जज होने की योग्यता हो, वही इस पद पर नियुक्त किया जा सकेगा। एडवोकेट-जनरल का काम राज्य की सरकार को कानूनी मामलों में सलाह देना, होगा। गवर्नर कानूनी ढंग के अन्य कार्य भी उसके सुपुर्द कर सकेगा। प्रधान मंत्री के त्यागपत्र दे देने पर उसे भी अपना पद छोड़ देना होगा। किन्तु वह तब तक अपने पद पर काम करता रहेगा, जब तक कि उसका उत्तराधिकारी नियुक्त नहीं कर दिया जायगा। यह भी सम्भव होगा कि गवर्नर उसी व्यक्ति को फिर एडवोकेट-जनरल नियुक्त करदे। एडवोकेट-जनरल का वेतन गवर्नर द्वारा निर्धारित किया जायगा।

शासन-कार्य का संचालन—राज्य की शासन सम्बन्धी सब कार्यवाही गवर्नर के नाम से होगी। गवर्नर की ओर से जारी होनेवाली आज्ञाओं या हिदायतों पर कोई आपत्ति नहीं कर सकेगा। प्रधान मंत्री का यह कर्तव्य होगा कि वह गवर्नर को मंत्रिमंडल के सभी निर्णयों की

सूचना देता रहे और उसे यह भी बताता रहे कि कानून बनाने के सम्बन्ध में क्या-क्या प्रस्ताव उपस्थित हैं। गवर्नर इन विषयों की जो जानकारी माँगेगा, उसे प्रधान मंत्री को प्रस्तुत करना होगा। गवर्नर चाहे तो मंत्रिमंडल के सामने ऐसे मामले को विचारार्थ रख सकेगा, जिसके सम्बन्ध में किसी मंत्री ने निर्णय कर लिया है, परन्तु जिस पर मंत्रिमंडल ने विचार नहीं किया है।

(२)

रियासती संघों का विधान

पहले कहा गया है कि नए विधान के अनुसार भारत की सब इकाइयाँ राज्य होगी; इनमें प्रान्तों और रियासतों का मेद नहीं होगा। इस समय जो मेद है, उसे निवारण करने का प्रयत्न किया जा रहा है। यहाँ इस विषय का कुछ खुलासा विचार किया जाता है।

भारतीय विधान सभा ने रियासतों के वास्ते एक आदर्श विधान का मसविदा तैयार करने के लिए श्री बी. एन. राव की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की थी। उसने अपनी रिपोर्ट रियासती सचिवालय को दे दी है। कमेटी यह मान कर चली है कि भारतीय रियासतें सभी विषयों के सम्बन्ध में संघ में सम्मिलित होंगी। इसलिए उसकी रिपोर्ट में उन्हीं धाराओं का अनुकरण किया गया है जो भारतीय विधान के मसविदे में प्रान्तों के सम्बन्ध में रखी गई हैं। उसकी राज्य शासन सम्बन्धी मुख्य-मुख्य बातों का विचार नीचे किया जाता है, [व्यवस्थापक मंडल सम्बन्धी बातों का उल्लेख अगले अध्याय में किया जायगा] :—

सर्वोच्च सत्ता जनता के हाथ में—शासक (राजा) को राज्य का अध्यक्ष माना गया है, जिसकी स्थिति जनता की इच्छा पर निर्भर रहेगी। जनता में ही सर्वोच्च सत्ता निहित है। रिपोर्ट के अनुसार राज्य की प्रबन्धकारिणी शक्ति राजा के हाथ में होगी। जिस प्रकार प्रान्त के गवर्नरों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होगी, उसी प्रकार राजा या राजप्रमुख

के लिए भी राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है ।

प्रबन्धकारी शक्ति—प्रबन्ध-शक्ति को कार्यान्वित करने के विषय में राजा (या राजप्रमुख) को प्रान्तीय गवर्नरों से कुछ अधिक अधिकार प्राप्त होंगे । रिपोर्ट में कहा गया है कि राजा राज्य की प्रबन्धकारी शक्ति को स्वयं अथवा अपने अधीन अधिकारियों द्वारा कार्यान्वित करेगा । शासक को अपने अधिकारों का उपयोग करने में अपने मंत्रियों की सलाह के अनुसार चलना होगा । कमेटी ने व्यवस्थापक सभा द्वारा राजा पर दोषारोपण करने की स्थिति के लिए मतविदे में कोई धारा रखना आवश्यक नहीं समझा । राजा अभी राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत व्यक्ति माना गया है, यदि उसमें कोई दोष होगा तो राष्ट्रपति को अपनी स्वीकृति वापिस लेने का अधिकार होगा ।

वेतन और भत्ते—कमेटी ने सिफारिश की है कि शासक के वेतन और भत्ते रियासत की आय के आधार पर हों । राजप्रमुख तथा सम्मिलित हुई रियासतों के अन्य शासकों के निजी खर्च के सम्बन्ध में, रियासती संघ के विलय-पत्र के अनुसार भारत-सरकार ने गारंटी देदी है । इसलिए कमेटी राज्य की धारा सभा को वेतन निश्चित करने का अधिकार नहीं दे सकती । इस सम्बन्ध में भारतीय संघ के राष्ट्रपति को अधिकार दिया गया है, जिससे विलय-पत्र की शर्तों का ध्यान रखने की आशा की जाती है ।

न्याय विभाग—न्याय विभाग पूर्णतया स्वतंत्र रखने की मांग की गई है । हाईकोर्ट के जज, जिनके कार्य की शर्तें और नियम प्रान्तीय हाईकोर्टों के जजों के समान ही होंगे राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जायें । अन्य जज हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश की सलाह से राजा नियुक्त करे । रियासतों के हाईकोर्टों पर भारत के सुप्रीम कोर्ट का वही अधिकार रहे जो प्रान्तीय हाईकोर्टों पर रखा गया है ।

विधान में संशोधन—कमेटी का मत है कि रियासती व्यवस्था-

पक सभाओं को विधान में संशोधन करने का अधिकार होना चाहिए, क्योंकि रियासतों के विधान आम तौर से उनकी अपनी विधान-सभाओं द्वारा ही बनाए जायेंगे। कमेटी ने कहा है कि विधान-निर्माण का कार्य साधारणतया व्यवस्थापक सभाओं को ही सौंपा जाय न कि उसके लिए विशेष रूप से विधान-सभा स्थापित की जाय।

विशेष वक्तव्य—अब तक देश भर में ब्रिखरी हुई रियासतों के बीच में कोई पारस्परिक सम्बन्ध न था, और न प्रान्तों और उनके बीच में कोई साम्य था। अंगरेजों ने जाते समय हमें इन रियासतों की घोर दुर्व्यवस्था विरासत के रूप में सौंपी थी। अब सारे देश में लोकतंत्री एकता स्थापित की गई है। इसी को लक्ष्य में रख कर राव-कमेटी ने अपनी सिफारिशें उपस्थित की हैं। यह एकीकरण के मार्ग में एक महत्वपूर्ण कदम है। आगे अनुभव के आधार पर और भी सुधार होते रहेंगे।

(३)

रियासतों पर केन्द्र का नियंत्रण

आशा की जाती है कि भारत सरकार १ अप्रैल १९५० से भारतीय रियासतों के केन्द्रीय विषयों पर अपना आर्थिक नियंत्रण तथा उत्तर-दायित्व संभाल लेगी। यह कार्यवाही तीन सदस्यों की उस समिति की सिफारिश के आधार पर की जायगी, जिसे भारत सरकार ने जयपुर के भूतपूर्व दीवान श्री बी० टी० कृष्णामाचारी की अध्यक्षता में नियुक्त की थी।

पहली अप्रैल सन् १९५० से समस्त रियासती संघों में आय-कर, तथा अन्य केन्द्रीय कर भारत सरकार लागू करेगी तथा रक्षा, रेल्वे, डाक, तार अन्तरिक्ष विज्ञान (वेध शाला) तथा ब्राडकार्स्टिंग जैसे विषय केन्द्रीय सरकार की जिम्मेदारी पर रहेंगे।

समिति ने यह सुझाव दिया है कि रियासतों के 'अर्थ' के

विलीनीकरण का कार्य दस वर्ष में पूर्ण किया जाय। शासनिक कारणों से केन्द्रीय सरकार इन कार्यों को धीरे-धीरे ही अपने अधिकार में लेगी तथा उनकी वास्तविक प्रबन्ध व्यवस्था सम्भवतः रियासती सरकारों के हाथों में छोड़ दी जायगी, जो केन्द्रीय सरकार के एजेंट के रूप में ही कार्य करेगी।

भारतीय रियासतों के आर्थिक विलोनीकरण का उद्देश्य समस्त भारत में संघीय अर्थ-व्यवस्था के लिए एक समान प्रणाली बनाना तथा प्रांतों के समान रियासतों के लिए भी आर्थिक अधिकार तथा उत्तरदायित्व निश्चित करना है। रियासतों के अन्दर भी अर्थ-व्यवस्था को प्रांतों के आधार पर लाने का उद्देश्य है।

अब तक भारतीय रियासतों को मिली-जुली व्यवस्था रही है, जिनमें केन्द्र तथा प्रांतीय अर्थ-व्यवस्था में ऐसा कोई पृथक्करण नहीं है, जैसा कि इस समय केन्द्र तथा प्रांतों के बीच है। वास्तव में बहुत सी रियासतों की आय प्रायः उन साधनों पर आधारित है जिनका रूप संघीय है। केन्द्र द्वारा रियासतों में संघीय विषयों का दायित्व अपने ऊपर लेने से चुंगी जैसी समस्त आन्तरिक रुकावटें समाप्त हो जायेंगी और भारत एक आर्थिक ईकाई के रूप में उन्नति कर सकेगा।

प्रांतों के समान रियासतों को भी केन्द्र से ग्रांट, (आर्थिक सहायता), आय-विभाजन इत्यादि जैसी सुविधाएँ प्राप्त करने का अधिकार होगा तथा रियासतें केन्द्र को संघीय कर देंगी।

समिति ने रियासतों की अर्थ-व्यवस्था की प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन करने से जो व्यवहारिक कठिनाइयाँ होगी, उनका उल्लेख करते हुए यह मत प्रकट किया है कि यदि अर्थ-व्यवस्था के अचानक परिवर्तन को तथा जनता की कठिनाइयों को टालना है तो आवश्यक आर्थिक तथा शासनिक व्यवस्था के लिए दस वर्ष की अवधि आवश्यक होगी। कमेटी की रिपोर्ट खास कर रियासती संघों और मैसूर, तथा हैदराबाद की रियासतों तक ही सीमित रहेंगी। विलय हुई रियासतों और केन्द्र

द्वारा शासित रियासतों से कोई समस्या उपस्थित नहीं होती तथा समिति इस सम्बन्ध में विचार न करेगी। समिति काश्मीर रियासत के सम्बन्ध में विचार करना नहीं चाहती क्योंकि यह प्रश्न संयुक्त राष्ट्रों के समान है।

(४)

राजाओं का निजी खर्च और सम्पत्ति

राजाओं का निजी खर्च—भारतीय रियासतों के बहुत से आदमी अपने-अपने राजा के पिछले वर्षों के व्यवहार से इतने धुब्ध थे कि भारत के स्वतंत्र होने पर वे चाहते थे कि राजाओं को निजी खर्च के लिए कुछ भी न दिया जाय, जिसमें जितनी योग्यता हो, उसके अनुसार वह आजीविका उपाजन करे। पर सरदार पटेल की अध्यक्षता में रियासती विभाग ने उनके प्रति यथेष्ट सहानुभूति दर्शाई। जैसा पहले कहा जा चुका है, अब किसी भी राजा का निजी खर्च रियासत की कुल वार्षिक आय का प्रथम एक लाख का १५ प्रतिशत, अगले चार लाख का १० प्रतिशत, और इससे आगे का ७। प्रतिशत होता है। प्रायः राजाओं को अधिकतम १० लाख रु० तक दिया गया है। इस नियम के कुछ अपवाद भी हैं। यह नियम वर्तमान राजाओं के जीवन-काल तक ही लागू रहेगा। उनके उत्तराधिकारियों के लिए निजी खर्च का सवाल अभी तक नहीं निपटाया गया। हाँ, अगली पीढ़ी में किसी को दस लाख रु० से अधिक नहीं दिया जायगा। कुछ राजाओं का निजी खर्च नीचे लिखा है :—

महाराजा ग्वालियरः—२५ लाख रु० (राज्य की आय का ६ प्रतिशत)।

महाराजा इन्दौरः—१५ लाख रु० (रियासत की आय का ५ प्रतिशत)।

महाराजा बड़ौदाः—२६ लाख रु०।

राजाओं का निजी खर्च मुकर्रर करते हुए सम्बद्ध रियासतों के मन्त्रियों के साथ भी विचार-विनिमय किया गया है ।

राजाओं की सम्पत्ति—अधिकांश रियासतों के राजाओं की निजी सम्पत्ति भी एक निर्धारित आधार पर तय कर दी गई है । निजी सम्पत्ति में महल, समुद्र तट, पहाड़ों पर की कोठियाँ, जवाहरात, पुराने जमाने की चीजें, खेती की जमीन, दुग्ध शालाये, अस्तबल, हाथी, ऊंट, मोटरकार, स्टाक और शेयर शामिल हैं ।

समझौते की मुख्य बातें ये हैं:—राजा उन महलों को अपने पास रख सकेंगे, जिनमें वे रहते हैं इसके अतिरिक्त वे एक कोठी चाहे समुद्र-तट पर चाहे पहाड़ पर और ले सकेंगे । बाकी सब कोठियां रियासत की होंगी ।

राजाओं को केवल वही जमीन मिलेगी, जो वस्तुतः उनके पूर्वजों की सम्पत्ति है । राजा को निजी खर्च के अलावा किसी आमदनी का हक नहीं होगा ।

कई राजाओं ने राजकीय कोष के कुछ पैसे को निजी सम्पत्ति बताया । इसकी जांच की गई । जांच करने पर संसद यूनियन के राजाओं को १४ करोड़ रुपए मध्यभारत यूनियन को २५ करोड़ रुपए राजस्थान यूनियन को ८ करोड़ रुपए, पटियाला यूनियन को ५ करोड़ रुपए तथा विन्ध्य प्रदेश को ३ करोड़ रुपए—कुल मिला कर राजाओं को ५५ करोड़ रुपए से हाथ धोना पड़ेगा ।

अनेक राजाओं ने अपनी लगी हुई पूंजी का बंटवारा कर दिया । महाराजा ग्वालियर ने बम्बई इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट के शेअर अपनी सरकार को सौंप दिए, जिनसे प्रतिवर्ष ५० लाख रुपया व्याज आता है । यही उन्होंने गंगाजली (रिजर्व कोष) के विषय में किया । इस कोष को पुराने मरहटा राजाओं ने बनाया था, जो इसका उपयोग मुगलों के विरुद्ध लड़ाई में या अकाल में प्रयुक्त करते थे ।

कई राजाओं ने अपनी रियासतों के विलय से पूर्व कुछ जमीनें

अपने रिश्तेदारों के नाम कर दी हैं, राज्य-सचिवालय ने उसे मानने से इन्कार कर दिया है, लेकिन जो ज़माने विलय से बहुत पहले दी जा चुकी है, उनपर कर-सम्बन्धी वहाँ कानून लागू होंगे, जो प्रान्तों में हैं।

जिन राजाओं के पास ५० से भी अधिक कारे (मोटर) हैं, उनमें से आधी राज्य की सम्पत्ति करार दी गई हैं, और वे मंत्रियों व अधिकारियों के काम आती हैं।

विचारणीय बात—अब से पहले, सामंतशाही के दौर-दौरे में, राजा लोग रियासत को किसी भी वस्तु को अपनी मान सकते थे। कौनसी चीज राजा की है, और कौनसी चीज राज्य की, इस तरह का विचार करने की राजाओं को न आवश्यकता थी, और न आदत ही। भारत के स्वतंत्र होने पर राजाओं को यह सोचने का अवसर आया, और उन्होंने जैसे भी बना अधिक-से-अधिक सम्पत्ति अपने निजी अधिकार में रखने के लिए कोशिश की। रियासती विभाग को भी यह काम जल्दी निपटाने की फिक्र थी। इसलिए उसने राजाओं को काफी ढील दी। रियासती कार्यकर्ताओं को इस विषय में अपना विचार व्यक्त करने का मौका नहीं मिला। इससे उन्हें असंतोष होना स्वाभाविक है। अवश्य ही यह कुछ अजीब बात है कि राजाओं को निजी खर्च के लिए लाखों रुपए प्रतिवर्ष मिले और उनके पास कई-कई महल, हाथी, मोटर आदि शान-शौकत और विलासिता का सामान रहे, जब कि अनेक साधारण नागरिकों को दिन भर मेहनत करके भी रोजाना ज़रूरतें पूरी करने की भी नाबत न आए। आशा है, ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होगा, राजाओं को अपनी अजीब और अन्याय-युक्त स्थिति का अनुभव होगा, और वे किसी बाहरी दबाव के बिना ही त्याग, समता और प्रजातन्त्रात्मकता का परिचय देंगे।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

राज्य व्यवस्थापक मंडल

पिछले परिच्छेद में राज्यों के शासन का विचार किया गया। अब इस परिच्छेद में राज्यों की कानून बनाने वाली संस्थाओं—राज्य व्यवस्थापक मंडलों—का विचार करना है।

व्यवस्थापक मंडल की सभाएँ और उनकी अवधि—
प्रत्येक राज्य में एक व्यवस्थापक मंडल होगा, किन्तु ६ राज्यों में अर्थात् मद्रास, बम्बई, संयुक्तप्रान्त, पूर्वी पंजाब, पश्चिमी बंगाल और बिहार में व्यवस्थापक मंडल की दो-दो सभाएँ होंगी, और तीन राज्यों में अर्थात् आसाम, उड़ीसा तथा मध्यप्रान्त-ब्रार में केवल एक-एक सभा होगी। रियासतो और रियासती संघों के व्यवस्थापक मंडलों के बारे में आगे लिखा जायगा। जिन छः राज्यों के व्यवस्थापक मंडलों में दो-दो सभाएँ होंगी, उनकी उन सभाओं के नाम व्यवस्थापक सभा (लेजिस्लेटिव असेम्बली) और व्यवस्थापक परिषद् (लेजिस्लेटिव कौंसिल) होगा, और जहाँ एक ही सभा होगी, वहाँ वह व्यवस्थापक सभा कहलाएगी।

किसी राज्य को व्यवस्थापक सभा अपनी प्रथम बैठक के निर्धारित दिन से, अधिक-से-अधिक पाँच वर्ष तक रहेगी। इस समय के बाद वह साधारणतया भंग हो जायगी। इसके विपरीत व्यवस्थापक परिषद् एक स्थायी संस्था होगी, जो कभी भंग नहीं होगी। इसके लगभग एक-तिहाई सदस्य निर्धारित रीति से तीन-तीन साल में बदलते रहेंगे।

व्यवस्थापक सभा का संगठन—व्यवस्थापक सभा के सदस्यों की अधिक-से-अधिक संख्या ५०० होगी और प्रत्येक ७५,००० जन-संख्या को एक से अधिक सदस्य चुनने का अधिकार न होगा। किसी चुनाव-क्षेत्र को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व नहीं दिया जायगा। संयुक्त निर्वाचन-पद्धति से काम लिया जायगा। परिगणित जातियों (हरिजनों) और कुछ सिक्खों को छोड़ कर किसी जाति वालों के प्रतिनिधियों के लिए स्थान सुरक्षित नहीं रखा जायगा। प्रत्येक बालिग स्त्री और पुरुष को मताधिकार होगा। किसी भी चुनाव-क्षेत्र में मतदाताओं की सूची में उस व्यक्ति का नाम सम्मिलित नहीं किया जायगा, जो भारत का नागरिक नहीं है, चुनाव-क्षेत्र का निवासी नहीं है, अथवा जो पागल है। मतदाताओं की उम्र निर्धारित करने के लिए १ जनवरी १९५० सीमा के रूप में रखी जायगी।

व्यवस्थापक परिषद् का संगठन—किसी राज्य की व्यवस्थापक परिषद् के सदस्यों की संख्या उस प्रान्त की व्यवस्थापक सभा के सदस्यों की संख्या के एक-चौथाई से अधिक न होगी। आधे सदस्य विश्वविद्यालयों, साहित्य, कला और विज्ञान, कृषि, इंजिनियरिंग और गृह-निर्माण विद्या, शासन और सामाजिक सेवा का अनुभव रखने वालों में से चुने जायंगे। शेष सदस्य गवर्नर द्वारा नामजद किए जायंगे।

सदस्यों की शपथ, अयोग्यता, और अधिकार—इस विषय में नियम उसी प्रकार के हैं, जैसे संघ-पार्लिमेंट के सदस्यों के सम्बन्ध में, तेइसवें परिच्छेद में बताया गए हैं। संघ-पार्लिमेंट के सदस्य शपथ राष्ट्रपति के सामने लेते हैं, राज्य-व्यवस्थापक मंडल के सदस्य गवर्नर के सामने।

सभाओं के अधिवेशन और सभापति—व्यवस्थापक सभा के, और जहाँ व्यवस्थापक परिषद् भी है, दोनों सभाओं के अधिवेशन साल में कम-से-कम दो बार बुलाए जायंगे, और दो अधिवेशनों के बीच छः माह का समय नहीं बीतने पायगा। प्रत्येक

अधिवेशन के आरम्भ में गवर्नर दोनों सभाओं के एकत्रित सदस्यों के सामने भाषण देगा। अधिवेशन में कोरम दस सदस्यों का या कुल सदस्यों में से छूटे हिस्से का—इन दोनों में से जो अधिक हों—होगा।

व्यवस्थापक सभा अपने सदस्यों में से एक सभापति और एक उप-सभापति चुनेगी। इन्हें क्रमशः स्पीकर और डिप्टी स्पीकर कहा जायगा। जब ये व्यवस्थापक सभा के सदस्य न रहें तो इन्हें अपना पद छोड़ देना पड़ेगा। ये गवर्नर को लिखित सूचना देकर अपना पद छोड़ सकेंगे, और व्यवस्थापक सभा के उपस्थित सदस्यों के बहुमत से पास किए हुए प्रस्ताव द्वारा भा अपने पद से हटाए जा सकेंगे; हाँ, ऐसे प्रस्ताव की सूचना चौदह दिन पहले दी जानी चाहिए। स्पीकर और डिप्टी स्पीकर को प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल द्वारा निर्धारित वेतन दिया जायगा।

व्यवस्थापक सभा की तरह व्यवस्थापक परिषद् भी अपना सभापति और उपसभापति चुनेगी, ये क्रमशः चेयरमेन और डिप्टी चेयरमेन कहलाएंगे। इनके सम्बन्ध में नियम उसी प्रकार के हैं, जैसे स्पीकर और डिप्टी स्पीकर के विषय में ऊपर बताया गया है।

कार्य-पद्धति और कानून-निर्माण—व्यवस्थापक मंडल की कार्यपद्धति उसी प्रकार की होगी, जैसी इस समय (भारत के स्वतंत्र होने के बाद) है, और इसके द्वारा कानून उसी तरह बनाए जायेंगे जैसे अब बनाए जाते हैं। और इसके कानून बनाने तथा धनसम्बन्धी मसविदे और बजट पास करने के अधिकार वे ही होंगे, जो इस समय हैं। ये बातें विस्तार पूर्वक बारहवें परिच्छेद में बताई जा चुकी हैं। उस परिच्छेद में जहाँ गवर्नर-जनरल शब्द आया है, वहाँ, इस प्रसंग में राष्ट्रपति समझना चाहिए।

(२)

रियासतों के व्यवस्थापक मंडल

पहले कहा गया है कि भारतीय रियासतों में से बहुत-सी तो प्रान्तों

में मिल चुकी हैं, कुछ केन्द्र द्वारा शासित क्षेत्र में हैं, शेष में से तीन बड़ी-बड़ी रियासतों को छोड़ कर शेष सब के छः रियासती संघ बन गए हैं। इन रियासतों तथा रियासती संघों की शासन-व्यवस्था प्रान्तों के ही ढंग पर होगी। प्रान्तों तथा रियासतों की शासनिक इकाई को राज्य कहा जायगा। पिछले परिच्छेद में यह बताया जा चुका है कि राव-कमेटी ने रियासतों के लिए जो नमूने का विधान प्रस्तावित किया है, उसमें उनका शासन कैसा किए जाने की सिफारिश की है। यहाँ यह बताया जाता है कि रियासती व्यवस्थापक मंडलों के विषय में उसके क्या सुझाव हैं।

कमेटी द्वारा प्रस्तावित विधान में व्यवस्थापक सभा का ढाँचा प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं के अनुरूप ही रखने की सिफारिश की गई है, किन्तु दो सभाओं वाले व्यवस्थापक मंडलों का भी विचार किया है। इसलिए उसने दो सुझाव दिए हैं—(१) उन रियासतों के लिए जो दो सभाएँ रखना चाहें, (२) उन रियासतों के लिए जो एक ही सभा रखने के पक्ष में हों। जहाँ तक व्यवस्थापक परिषद की रचना का सम्बन्ध है उसका निर्णय कमेटी ने लोकसभा पर छोड़ दिया है, जिससे इस विषय में देश भर में एक ही प्रणाली रहे। यदि कोई शासक व्यवस्थापक मंडल में स्वयं उपस्थित होकर भाषण देने में असमर्थ होगा तो प्रधान मंत्री उसका भाषण पढ़ सकेगा।

कमेटी के मतानुसार व्यवस्थापक सभा (असेम्बली) का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से वॉलिंग मताधिकार के आधार पर होगा और प्रति ५० हजार की जनसंख्या के पीछे एक से अधिक सदस्य नहीं होगा। इस सभा का कार्यकाल ५ वर्ष होगा। व्यवस्थापक परिषद (कौंसिल) के सदस्यों की संख्या ३० होगी, इनमें से २४ सदस्य निर्वाचित होंगे और इनके निर्वाचन के नियम भारतीय पार्लियामेंट द्वारा बनाए जायेंगे। शेष छः सदस्य राजा द्वारा नामजद किए जायेंगे। परिषद के एक-तिहाई सदस्य प्रति दो वर्ष में चुने जायेंगे।

राजा किसी खास कानूनी विषय पर सलाह देने के लिए अधिक-

से-अधिक दो विशेषज्ञों को सलाहकार के रूप में नियुक्त कर सकेगा, जिन्हें दोनों सभाओं में बोलने का अधिकार होगा, पर मत देने का अधिकार न होगा ।

सत्ताइसवाँ परिच्छेद उपसंहार

हमारा स्वप्न पूरा हो रहा है—इस पुस्तक के पिछले (नवें) संस्करण के अन्त में (सन् १९४४ में) हमने लिखा था—“आत्म-निर्णय या स्वभाग्य-निर्माण और स्वावलम्बन इस युग की पुकार है । अब प्रत्येक देश को अपना विधान स्वयं बनाने का अधिकार होना चाहिए, वह अपनी समस्याओं को स्वयं सुलझावे; यदि ऐसा करने में उससे कुछ भूलें होगी, तो इससे उसका अनुभव बढ़ेगा । दूसरा देश उस पर कोई विधान ज़बरदस्ती न लादे ।.....भारतवर्ष के शासन-विधान की रचना के लिए भारतीयों को इंग्लैंड की राजधानी तक दौड़े जाने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए । उसके लिए उपयुक्त स्थान भारतवर्ष में ही, देहली या कोई अन्य केन्द्रीय स्थान होगा, और उसमें भारतीय प्रतिनिधि ही सर्वेसर्वा होंगे; हाँ, उसमें इंग्लैंड आदि अन्य देशों के वास्तविक हितों का ध्यान रखा जायगा । यह राजनैतिक आदर्श कब पूरा होगा ? जितनी जल्दी पूरा हो, उतना ही भारतवर्ष का, इंग्लैंड का, और हाँ, संसार का वास्तविक हित-साधन होगा ।”

हर्ष का विषय है कि इस पुस्तक के इस संस्करण की ये पंक्तियाँ लिखते समय भारतीय विधान-सभा अपना बहुत-कुछ कार्य कर चुकी है । आशा है, सन् १९५० के आरम्भ में हमारा नया विधान अन्तिम रूप में स्वीकृत होकर अमल में आना शुरू हो जायगा । इस प्रकार भारत-वासियों का, और खासकर कांग्रेस-जनों का यह स्वप्न शीघ्र पूरा होने वाला है, कि भारत लन्दन में बने हुए और प्रायः अँगरेजों द्वारा

बनाए शासन-विधान से मुक्त होकर स्वयं अपनी सन्तान द्वारा बनाए हुए विधान के अनुसार शासित हो ।

विधान की अलोचना की आवश्यकता—पिछले पृष्ठों में हम अपने नए विधान का संक्षिप्त परिचय दे चुके हैं । इस विधान की व्यौरेवार आलोचना तो अभी सम्भव नहीं है, तथापि स्थूल रूप से यह विचार किया जा सकता है कि हमने इसके द्वारा क्या प्राप्त किया और क्या अभी प्राप्त करना शेष है । राजनीति-प्रेमी पाठकों को इस विषय का विचार करते रहना बहुत आवश्यक है ; कारण, अब हमारा उत्तरदायित्व बढ़ गया है । अब शासन व्यवस्था में जो कमी या त्रुटि होगी, उसके लिए हम दूसरों को दोष नहीं दे सकेंगे । अब तो हमें यह सोचना होगा कि वह दोष कहाँ तक विधान से सम्बन्धित है, और उसका निवारण किस प्रकार हो सकता है । अस्तु, यहाँ पाठकों के विचारार्थ कुछ खास-खास बातों का उल्लेख किया जाता है ।

विधान राष्ट्र-भाषा में नहीं बना—विधान के प्रसंग में विचार करते समय पहले तो यह खटकने वाली बात हो सामने आती है कि विधान भारत की राष्ट्र-भाषा में नहीं बना । अपना विधान बनाने के लिए हमें विदेशी भाषा का उपयोग करना पड़ा, यह हमारी राष्ट्रीयता की खरी और कटु टीका है । इसका दोष किसी व्यक्ति-विशेष को देने से काम न चलेगा । यदि हमारी, राष्ट्र-भाषा सम्बन्धी धारणा असंदिग्ध और स्पष्ट होती और देश भर में उसके विषय में एक ही मत होता तो हमारी विधान सभा या कोई भी अधिकारी ख्वाहमग्नाह अंगरेजी से काम चलाने की आवश्यकता न समझता । साधारणतया यह मान्य है कि हिन्दी ही इस देश की राष्ट्र-भाषा है, पर उसकी विविध शैलियों में ऐसी खेचातानी है कि कुछ लोग उस समस्या से बचने के लिए अंगरेजी को प्राथमिकता देने की बात सोचने लगते हैं । यह समस्या का हल नहीं, वरन् उससे बच भागना है । अस्तु, आशा है, राष्ट्र-भाषा का प्रश्न जल्दी हल किया जायगा और विधान का, राष्ट्र-भाषा में हुआ अनुवाद

नियमानुसार स्वीकार किया जायगा ।

संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली—विधान में संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली को अपना कर भारत की एक बढ़ते हुए घातक रोग से रक्षा की गई है । पृथक् निर्वाचन-पद्धति जारी करके अंगरेजों ने यहाँ साम्प्रदायिकता के विष-वृक्ष को ऐसा बढ़ाया कि यहाँ विविध सम्प्रदायों, खासकर हिन्दू-मुसलमानों, में नित्य कटुता और कलह बना रहता था । यह कहा जा सकता है कि भारत की अखंडता नष्ट होने और पाकिस्तान बनने में पृथक् निर्वाचन-पद्धति एक मुख्य कारण रही है । अंगरेजों की इस कूटनीति से इस राष्ट्र को जो भयंकर क्षति पहुँची है, उसे इतिहास कभी भूल नहीं सकेगा । आगे के लिए पृथक् निर्वाचन पद्धति का अन्त करके भारतीय विधान यहाँ के नागरिकों की बंधुत्व की भावना की एक बड़ी बाधा को दूर कर रहा है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं ।

बालिग मताधिकार—विधान में व्यवस्थापक सभाओं के चुनाव के लिए बालिग मताधिकार की व्यवस्था की गई है, इससे प्रायः सभी बालिग स्त्री-पुरुष चुनाव में भाग ले सकेंगे । लोकसत्ता यह चाहती ही है कि अधिक-से-अधिक जनता को राजनैतिक विषयों की बातों को विचार करने का अवसर मिले, देश में जन-जागृति हो । परन्तु बालिग मताधिकार से सरकार का एक उत्तरदायित्व बढ़ जाता है; उसके लिए यह आवश्यक है कि वह जल्दी से देश में शिक्षा का यथेष्ट प्रचार करे । अभी तो यहाँ केवल तेरह-चौदह फीसदी जनता ही कुछ शिक्षित कही जा सकती है; इससे, सरकार को कितना कार्य करना है, यह स्पष्ट है । फिर साधारण शिक्षा ही काफी नहीं है । नागरिक अपना निर्वाचक का कर्तव्य विवेक-पूर्वक पालन करें, किसी लोभ, लालच या व्यक्तिगत अथवा साम्प्रदायिक लिहाज में न फंसे, व्यवस्थापक सभा में उभेदवार वे ही व्यक्ति बनें जो ईमानदारी और शुद्ध हृदयता से कानून-निर्माण में भाग लेने के योग्य हों, और जनता ऐसे ही सज्जनों को मत दे—इस तरह का वातावरण बनाने के लिए नागरिक शिक्षा के प्रचार की प्रचल

आवश्यकता है ।

प्रभावशाली राष्ट्रपति—हमारा राष्ट्रपति देश का सबसे बड़ा शासक होगा । उसे कई प्रकार के अधिकार होंगे—(१) वह विदेशी राजदूतों का स्वागत करेगा और विदेशों में अपने राजदूत भेजेगा । (२) वह आन्तरिक शासन में शान्ति सुव्यवस्था रखेगा । यदि संघ की किसी इकाई में ऐसी अव्यवस्था हो जाय कि विधान अच्छीतरह अमल में न आवे तो राष्ट्रपति आवश्यक हस्तक्षेप करेगा । (३) वह मंत्रिमंडल की सलाह से बड़े-बड़े राज्याधिकारियों की नियुक्ति करेगा, और उन्हें काम बाँटेगा । वह यह देखेगा कि कानूनों का पालन ठीक तरह हो रहा है या नहीं । (४) वह किसी भी न्यायालय द्वारा दी गई सज़ा को रद्द कर सकेगा । (५) वह भारतीय सेना का सर्वोच्च अधिनायक होगा (६) वह ऐसे समय में जब पार्लिमेंट का अधिवेशन न हो रहा हो, आवश्यकता प्रतीत होने पर, आर्डिनेन्स जारी कर सकेगा ।

यद्यपि राष्ट्रपति अपने अधिकारों का उपयोग वैधानिक शासक के रूप में, मंत्रिमंडल की सलाह से ही कर सकेगा, यह स्पष्ट है कि भारतीय संघ में वह कितना प्रभावशाली होगा ।

शक्तिशाली मंत्रिमण्डल—ऊपर कहा गया है कि राष्ट्रपति भारतीय संघ का सबसे बड़ा शासक होगा परन्तु वह सब कार्य मन्त्रिमण्डल की सलाह से ही कर सकेगा । दूसरे शब्दों में, मंत्रिमण्डल शक्तिशाली होगा । मन्त्रिमण्डल राष्ट्रपति के प्रति जिम्मेदार न होकर लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होगा । यद्यपि मंत्रिमण्डल के सब मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा परन्तु उसे प्रधानमंत्री को छोड़कर अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति प्रधान मंत्री के परामर्श के अनुसार करनी होगी, और वह उसी व्यक्ति को प्रधान-मंत्री बनाएगा जो लोकसभा के सबसे बड़े दल का नेता होगा । इस प्रकार मंत्रिमण्डल के निर्माण में राष्ट्रपति का अधिकार नाममात्र का है । इसी तरह मंत्रिमण्डल के सदस्यों को बरखास्त करने में भी राष्ट्रपति का अधिकार वास्तविक नहीं है । मंत्रि-

मण्डल के सदस्यों को राष्ट्रपति की प्रसन्नता या अप्रसन्नता का कोई भय नहीं है। वे लोक-सभा के विश्वासपात्र रहते हुए यथेष्ट शक्ति-शाली हैं।

सर्वोच्च सत्ताधारी पार्लिमेंट—मंत्रिमंडल के शक्तिशाली होने का अर्थ यह है कि भारतीय पार्लिमेंट ही सर्वोच्च सत्ताधारी संस्था है। पार्लिमेंट में भी वास्तव में लोक-सभा ही सर्वशक्ति सम्पन्न संस्था है। मंत्रिमण्डल इसी के प्रति उत्तरदायी होगा। वह जब चाहेगी मंत्रिमण्डल को अपदस्थ करके नया मंत्रिमण्डल बनाने का अवसर ला सकती है। लोक-सभा चाहे तो राष्ट्रपति को हटाने के लिए उस पर अभियोग चला सकती है। इस प्रकार संक्षेप में लोक-सभा भारतवर्ष की सर्वोच्च सत्ता-प्राप्त संस्था है, जिसके बनाए कानून पर कोई भी व्यक्ति या संस्था आपत्ति नहीं कर सकती, यहाँ तक कि संघ न्यायालय भी नहीं।

भारतीय पार्लिमेंट में लोकसभा के अतिरिक्त राजपरिषद् भी होगी, पर उसकी सृष्टि राजाओं और पूँजीपतियों आदि का प्रतिनिधित्व करने के लिए की गई है। धन सम्बन्धी मसविदों को लोक-सभा ही पास करेगी, राजपरिषद् नहीं; वैसे दूसरे कानून बनाने के अधिकार दोनों सभाओं को बराबर होंगे। यदि गत्यावरोध पैदा हो जाय तो उसे हल करने के लिए दोनों सभाओं की सम्मिलित बैठक करने की व्यवस्था है। परन्तु लोकसभा के सदस्यों की संख्या बहुत अधिक होने से सम्मिलित बैठक में उसकी ही बात चलने की आशा होगी। अस्तु, भारतीय संघ में भारतीय पार्लिमेंट एक सर्वोच्च सत्ताधारी संस्था है, और पार्लिमेंट में भी लोकसभा, जो जनसाधारण का प्रतिनिधित्व करती है, विशेष महत्व रखती है।

सामन्तशाही का अन्त—अंगरेजों ने भारत को छोड़ते समय रियासतों को सर्वोच्च सत्ता लौटा कर देश के एक-तिहाई भाग को राजाओं के कुचक्रों और एकतंत्री अनाचार के हवाले कर दिया था। सरदार पटेल की अध्यक्षता में रियासती विभाग ने रियासतों को सामन्त-

वादी युग से हटाकर प्रजातन्त्र के तट पर खड़ा कर दिया है। नए गण से प्रान्तों और रियासतों का भेद हटाया जाकर भारत के एकीकरण और लोकतंत्रवाद की एक महत्वपूर्ण मंजिल तय की जा रही है।

प्रजातंत्र की स्थापना शेष है—हमने बहुत कुछ किया, परन्तु यही काफी नहीं है, प्रजातन्त्र की दिशा में अभी बहुत प्रगति करनी शेष है। अभी रियासती संघों पर जो प्रजातंत्र लागू किया गया है वह कृत्रिम सा है। रियासती संघों के मंत्रिमण्डल जनता या स्थानीय संस्थाओं के प्रति उत्तरदायी न होकर रियासती विभाग के प्रति उत्तरदायी हैं। रियासती सचिवालय ने रियासती संघों में जिन व्यक्तियों को ठीक समझा, मंत्री बना दिया। उधर रियासती संघ की जनता का प्रतिनिधित्व करनेवाली कांग्रेस कमेटियों ने उन पर अविश्वास का प्रस्ताव किया। बड़ी अजीब स्थिति है। राज्य-कांग्रेस-कमेटी के प्रस्तावों के विरुद्ध जब मंत्री अपने पदों पर डटे हैं तो जनता की राज्य-कांग्रेस-कमेटी में क्या श्रद्धा रह सकती है! इससे राज्य-कांग्रेस-कमेटी का बलहीन हो जाना तथा उसका अ० भा० कांग्रेस से संघर्ष होना स्वाभाविक है। यह घर की फूट हमें कहाँ ले जायगी आवश्यकता है कि इस विषय में गम्भीरता से विचार किया जाय। इस चिन्तनीय स्थिति के मूल में एक खास बात यह है कि देश में, और विशेष रूप से रियासतों में दलबन्दी ने बुरी तरह घर कर रखा है। कुछ आदमी लोभ या स्वार्थवश ही अन्दरूनी भगड़ बढ़ा रहे हैं। जब कि नए ढंग से शासन कार्य चलाने के लिए विशेष योग्यता और साधनों की आवश्यकता है, हम आपसी वादविवाद में शक्ति नष्ट कर रहे हैं। आशा है, इसमें शीघ्र सुधार होगा।

महान भारतीय संघ—हमारा भारतीय संघ विविध क्षेत्रों का संघ है, जो गत वर्षों में प्रान्त और रियासतें कहे जाते थे। [इसमें वे क्षेत्र भी मिलकर रहेंगे, जिन्हें अभी तक फ्रांसीसी और पुर्तगाली हुकूमतें

दबाए बैठी हैं]। संघ की सब इकाइयों ने इसमें स्वेच्छा से, बिना किसी जोर-जबरदस्ती के, प्रवेश किया है। दुर्भाग्य से पाकिस्तान कहे जाने वाले राज्य के अंग भारतीय संघ से अलग हैं। अनेक हृदयों में यह आशा है कि पाकिस्तान की जनता थोड़े-बहुत समय में यह अनुभव करेगी कि पाकिस्तान का एक अलग राज्य के रूप में रहना उसके लिए घातक है, वह अपने शासकों को वाध्य करेगी कि भारतीय संघ में मिल जायें। अस्तु, यह बात न हो, तो भी बत्तीस करोड़ व्यक्ति भारतीय संघ के नागरिक होंगे। संसार भर में चीन को छोड़कर इतनी बड़ी जनसंख्या किसी राज्य की नहीं, और चीन भी अब दो भागों में विभक्त है। इस प्रकार भारतीय संघ संसार भर में सबसे बड़ा है। यह तो बाहरी दृष्टि की बात हुई। नए विधान के अनुसार यह सर्वोच्च सत्ताधारी स्वतंत्र जनतंत्र होगा। इसमें जनता को वे सब मूल अधिकार प्राप्त होंगे, जो विकास और उन्नति के लिए आवश्यक होते हैं। पिछड़ी हुई जातियों को प्रगति करने के लिए वयेष्ट सुविधाएँ दी जायेंगी। अल्पसंख्यकों के साथ ऐसा न्यायपूर्ण व्यवहार होगा कि उन्हें किसी प्रकार की आशंका या भय न होगा। जहाँ तक कानून का सम्बन्ध है, अस्पृश्यता का अन्त कर ही दिया गया है। इस प्रकार विधान ने नागरिकों में सद्भावना और भाईचारा स्थापित करके संघ को महान बनाने का मार्ग प्रशस्त किया है।

अखरनेवाली बात; वेतन की असमानता—वर्तमान शासन बहुत खर्चीला है, यह हम पिछले खंड के अन्त में बता आए हैं। क्या ही अच्छा होता यदि नया विधान उसे कम खर्चीला बनाने का प्रयत्न करता। खेद है कि इस विधान ने नागरिकों में आर्थिक समानता बढ़ाने की दिशा में भी कुछ अच्छा कदम नहीं उठाया। यहाँ 'समता' से हमारा मतलब व्यावहारिक समता से ही है, आदर्श काल्पनिक समता से नहीं। समाज में कुछ असमानता या विषमता रहने वाली ठहरी। पर विचारशीलों

का कत्तव्य है कि उसकी सीमा का भरसक नियंत्रण करें। जैसा कि श्री जवाहरलाल नेहरूवाला ने कहा है, नागरिकों में आर्थिक असमानता भले ही रहे, पर उस असमानता को न्याय-सम्मत होना चाहिए। यह असमानता इतनी ज्यादा नहीं होनी चाहिए जिससे दरजे और अवसर की समानता प्राप्त करना असम्भव हो जाय। दूसरे शब्दों में कहें तो देश के नागरिकों की ज्यादा-से-ज्यादा और कम-से-कम आय का फर्क एक उचित मर्यादा में रहना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि हम समाजवाद की नरम से नरम दृष्टि से विचार करें तो दोनों में १० या १२:१ के अनुपात से ज्यादा अन्तर न होना चाहिए, क्योंकि यदि इससे ज्यादा फर्क रहा तो नागरिकों के लिए दरजे और अवसर की समानता प्राप्त करना असम्भव हो जायगा।

स्मरण रहे कि विधान की भूमिका में देश के हर नागरिक को 'सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय दिलवाने, हर एक का दर्जा समान रखने और सब को समान अवसर दिलवाने, की प्रतिज्ञा है, और इसके साथ ही उच्च अधिकारियों का मासिक वेतन चार हजार से लेकर साढ़े पाँच हजार ६० तक ठहराया गया है। ये दोनों बातें परस्पर विरुद्ध हैं। किसी उच्च अधिकारी को पाँच हजार रुपए मासिक मिले तो साधारण नागरिक को कम-से-कम चार-सौ पाँच-सौ रुपए मासिक तो मिलें, और, जब कि यह व्यावहारिक नहीं है, उच्च अधिकारियों का इतना अधिक वेतन ठहराया जाना कैसे ठीक कहा जा सकता है। मालूम नहीं, विधान सभा के विद्वान सदस्य इन ऊँची वेतनों को निर्धारित करते समय देश और जनता की आर्थिक स्थिति को क्यों भूल गए; खासकर जब कि कितने ही सदस्य उस कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ता रहे हैं, जिसने अधिकतम मासिक वेतन की सीमा ५,००० ६० ठहराई थी।

रुपये की कीमत समय-समय पर घटती-बढ़ती रहती है। इस दृष्टि से अच्छा यही था कि उच्च अधिकारियों के वेतन का परिमाण निश्चित

न कर यही तथ किया जाता कि उनका वेतन कम-से-कम तनखाह पाने वाले कर्मचारी से इतने गुने से अधिक न होगा ।

हमारा उत्तरदायित्व—विधान बनाने वालों ने कुल मिलाकर अपनी अच्छी अध्ययनशीलता, गम्भीरता और अनुभव का परिचय दिया है । विधान दीर्घकाल के लिए बनाया जाता है, उसका आधार शिला बहुत मजबूत होनी चाहिए और उससे सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक लक्ष्य निर्धारित कर देना चाहिए । इस लक्ष्य की कानूनों द्वारा पूर्ति करने का काम व्यवस्थापक सभाओं का है । इस प्रकार इस विधान के अनुसार जो भारतीय पार्लिमेंट और राज्य-व्यवस्थापक मंडल बनेंगे, उनके सदस्यों का और उन सदस्यों के निर्वाचित करने वालों का उत्तरदायित्व कितना अधिक है, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है । स्मरण रहे कि विधान ने बालिग मताधिकार की व्यवस्था कर दी है । इसलिए निर्वाचकों के उत्तरदायित्व का अर्थ अब जनता का ही उत्तरदायित्व समझना चाहिए । अस्तु, भारत-सन्तान के सामने भारतीय संघ को वास्तव में महान और विश्व-हित के लिए अधिक-से-अधिक उपयोगी बनाने का कार्य है । परमात्मा करे प्रत्येक भारतीय नागरिक अपने-आप को इस कर्तव्य-पालन के योग्य बनाए ।

विशेष वक्तव्य—नए विधान के अनुसार भारत का शासन-तंत्र किस प्रकार का होगा, यह नक्शे में आगे दिखाया जाता है । पाठक इस नक्शे का १५ अगस्त १९४७ से पहले, और उसके बाद के शासन तंत्र से तुलना करें, जो क्रमशः पृष्ठ ५३ और ५७ में दिए हुए नक्शों में दिखाया गया है । अब सब सत्ता का श्रोत या आधार जनता पर है; भारतीय जनता अपने भाग्य की स्वयं निर्माता है ।

भारत का शासन तंत्र; नये विधान का अन्तर्ग

राष्ट्रपति

केन्द्रीय मंत्रिमंडल

राजपरिषद् लोकसभा

केन्द्रीय शासित क्षेत्र

चीफ कमिश्नर
और सलाहकार
समिति

प्रान्त
गवर्नर
मंत्रिमंडल

व्यवस्थापक मंडल

हाईकोर्ट

व्यवस्थापक मंडल

हाईकोर्ट

व्यवस्थापक मंडल

हाईकोर्ट

राज्य

रियासते

राजा

मंत्रिमंडल

रियासती संघ

राजप्रमुख

मंत्रिमंडल

सर्वोच्च न्यायालय

उपसंहार

२५७

ब्रालिंग मताधिकार (जनता)

परिशिष्ट कुछ मुख्य-मुख्य तिथियाँ

सन्

मुख्य घटना

१८५७—भारतीय स्वाधीनता का प्रथम संग्राम ।

१८५८—भारत का शासन ईस्ट इंडिया कम्पनी से ब्रिटिश पार्लिमेंट ने लिया ।

१८६१—इंडिया कौंसिल एक्ट ।

१८६६—इलाहाबाद हाईकोर्ट की स्थापना ।

१८८४—स्थानीय स्वराज्य कानून ।

१८८५—राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) की स्थापना ।

१८८२—इंडिया कौंसिल एक्ट ।

१९०५—बंग विच्छेद ।

१९०६—साम्प्रदायिक निर्वाचन की मांग स्वीकृत ।

„ —कलकत्ता कांग्रेस में अध्यक्ष-पद से भाषण देते हुए दादाभाई नौरोजी ने घोषित किया कि कांग्रेस का ध्येय स्वराज्य प्रकरना है ।

„ —बंग-भंग के विरुद्ध आन्दोलन, ब्रिटिश माल का बहिष्कार

१९०७—सूरत कांग्रेस में फूट ।

१९०६—मिन्टो-मार्ले सुधार ।

१९१२—राजधानी का कलकत्ते से देहली आना, बंगभंग रद्द ।

१९१४—प्रथम योरोपीय महायुद्ध प्रारम्भ ।

१९१६—लखनऊ का कांग्रेस-लीग सम्मेलन । होमरूल लीग की स्थापना

- १६१७—भारत-मंत्री की घोषणा कि ब्रिटिश सरकार क्रमिक रूप से भारत में उत्तरदायी शासन स्थापित करेगी ।
- १६१६—रौलट एक्ट और जलियांवाला हत्याकांड । मांट-फोर्ड सुधार ।
- १६२०—महात्मा गांधी द्वारा असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात ।
- १६२१—केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा और नरेन्द्र-मंडल की स्थापना ।
- १६२२—महात्मा गांधी की गिरफ्तारी, मुकदमा और छः साल का कारावास-दण्ड ।
- १६२४—स्वराज्य पार्टी का व्यवस्थापक सभाओं में प्रवेश ।
- १६२७—साइमन कमीशन का भारत आगमन; उसका बहिष्कार ।
- १६२८—सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में वारदोली का कर-बंदी आन्दोलन ।
- १६२९—बटलर कमेटी की देशी राज्यों सम्बन्धी रिपोर्ट । लाहौर कांग्रेस में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास । २६ जनवरी को प्रतिवर्ष स्वाधीनता दिवस मनाने का निश्चय ।
- १६३०—सत्याग्रह आन्दोलन । गांधी जी की डांडी यात्रा । प्रथम गोलमेज़ परिषद, लन्दन ।
- १६३१—गांधी-इर्विन समझौता । द्वितीय गोलमेज़ परिषद ।
- १६३२—साम्प्रदायिक निर्णय; तीसरी गोलमेज़ सभा गांधी जी का अनशन । पूना पैक्ट ।
- १६३५—भारतीय शासन विधान । संघ शासन तथा प्रान्तीय स्वराज्य की व्यवस्था ।
- ,, —उड़ीसा और सिन्ध नए प्रान्त बनाए गए । बर्मा को भारत से अलग करना ।
- १६३७—प्रान्तीय स्वराज्य का आरम्भ ।
- १६३९—द्वितीय महायुद्ध आरम्भ । संघ शासन-योजना स्थगित । कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों का पद-त्याग ।

- १९४०—मुसलिम लीग का लाहौर में पाकिस्तान-प्रस्ताव ।
- १९४२—कांग्रेस तथा लीग द्वारा क्रिप्स के प्रस्ताव अस्वीकृत ।
 „ —‘भारत छोड़ो’ प्रस्ताव ।
- १९४३—आज़ाद हिन्द आन्दोलन ।
- १९४४—बम्बई में गांधी-जिन्ना वार्ता ।
- १९४५—शिमला-सम्मेलन ।
- १९४६—(१ अप्रैल) ब्रिटिश मंत्रिमिशन की भारतीय नेताओं से वार्ता आरम्भ ।
 „ —(२ सितम्बर) अस्थाई सरकार की स्थापना ।
 „ —(१६ अक्तूबर) लीगी सदस्य अस्थाई सरकार में शामिल हुए ।
 „ —(६ दिसम्बर) विधान सम्मेलन का उद्घाटन ।
- १९४७—(२० फरवरी) ब्रिटिश सरकार की, जून १९४८ तक भारत को पूर्ण शासनाधिकार हस्तान्तरित करने की घोषणा ।
 „ —(२४ मार्च) लार्ड माउन्टबेटेन वायसराय हुए ।
 „ —(३ जून) बंटवारे के आधार पर भारत को स्वाधीनता देने की अंतिम योजना ।
 „ —(१५ अगस्त) भारतीय स्वतंत्रता विधान । भारत से ब्रिटिश सत्ता हटा ली गई ।
 „ —पाकिस्तान राज्य का निर्माण ।
- १९४८—(२१ फरवरी) भारतीय विधान का मसविदा तैयार ।

